॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

पुराणवर्म

तस्येदंपूर्वार्द्धम्

युक्तिविशारदेनकाल्रूरामशास्त्रिणारचितम्

तच्च

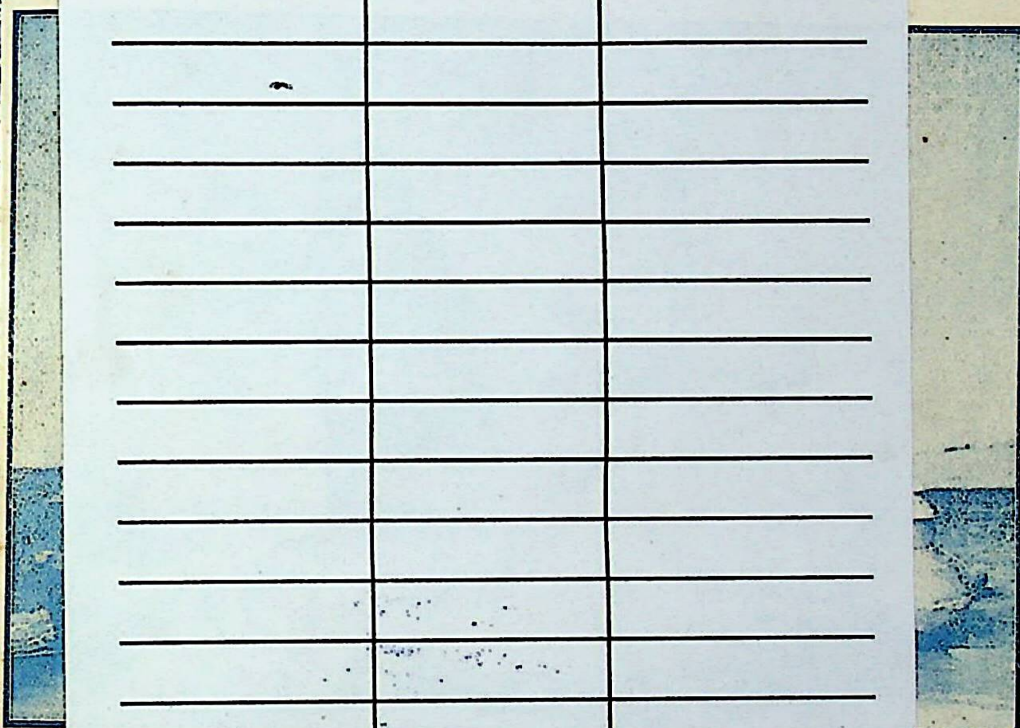
पं० कामताप्रसाददीक्षितेन
कर्णपुरनगरेमर्चेटाख्यमुद्रणागारे
मुद्रापयित्वाप्रकाश्यंनीतम्

प्रथमवारे १०००

विक्रमीय सं० १९८२

पूर्वार्द्धस्य मूल्यम् ३॥)

विद्वत्तायुक्त खंडन करनेवाले को
१०००) रुपया पारितोषिक दिया जावेगा।



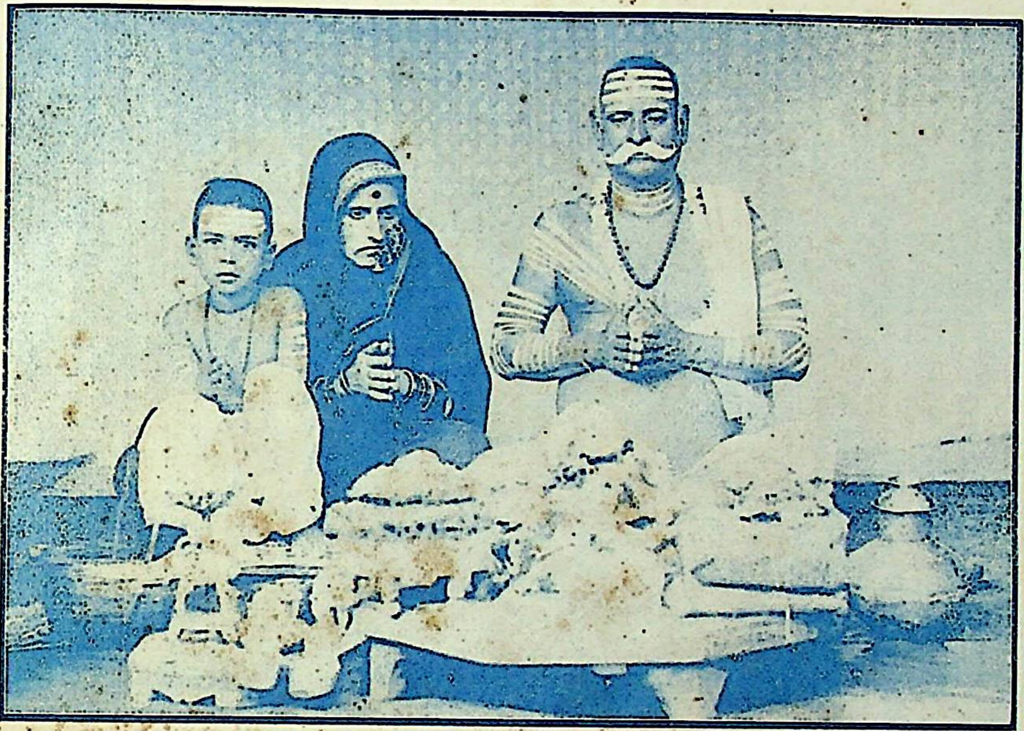
जयमङ्गलपरसाद का, मानो मित्र यह सीख ॥

संसार में यदि कोई सारवस्तु है तो वह भजन है । ईश्वर के भक्तों के पवित्र चरित्र यदि कहीं उपलब्ध होते हैं तो वे पुराणों में ही मिलते हैं । पुराणों को मिथ्या कह संसार से उड़ानेवालों को यह ध्यान रखना चाहिये कि तुम भी इस संसार से कूच करोगे उस समय भजन को छोड़ कर अन्य कोई भी सद्गतिदाता न होगा । फिर पछताओगे अतएव संसार के उद्धार के लिये प्राणी मात्र को पुराणों की रक्षा करनी चाहिये ।

श्रीसनातनधर्म्म-संरत्तक, ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकर,
श्रौत स्मार्त धर्मप्रतिपालक, शंकर-भक्त

श्री १०५ पण्डित मङ्गलीप्रसादजी द्विवेदी, सूबेदार,

ताल्लुकेदार बोर्धा, जिला होशंगाबाद (मध्यभारत)।



पुराणधर्म के लिये सहायता २०१)

दोहा।

इस असार संसार में, भजनसार एक दीख।
जयमङ्गलपरसाद की, मानो मित्र यह सीख ॥

संसार में यदि कोई सारवस्तु है तो वह भजन है । ईश्वर के भक्तों के पवित्र चरित्र यदि कहीं उपलब्ध होते हैं तो वे पुराणों में ही मिलते हैं। पुराणों को मिथ्या कह संसार से उड़ानेवालों को यह ध्यान रखना चाहिये कि तुम भी इस संसार से कूच करोगे उस समय भजन को छोड़ कर अन्य कोई भी सद्गतिदाता न होगा। फिर पछताओगे अतएव संसार के उद्धार के लिये प्राणी मात्र को पुराणों की रत्ता करनी चाहिये।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ उपोद्घात ॥

शं का कोष और पुराणतत्त्व प्रकाश प्रभृति पुस्तकों के प्रकाशित होने पर स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र की इच्छा हुई कि हम पुराणों की रक्षा में कोई ग्रंथ लिखें। दैवयोग से पूज्य पं० जी रुग्ण हो गये, उस रुग्णावस्था में मुझे मुरादाबाद बुलाकर यह कहा कि अब हमको विश्वास नहीं है कि हम अच्छे हो सकेंगे अतएव आप पुराणों की रक्षा में एक ग्रंथ अवश्य लिखना। कुछ दिन पश्चात् पण्डितजी का स्वर्गवास हो गया। उनकी आज्ञा में बँध कर हमने इस ग्रंथ के लिखने का उद्योग आरंभ किया।

इस ग्रंथ का लिखना साधारण नहीं था, कुछ अर्थ की भी आवश्यकता थी। हमने अपने इष्टमित्रों से १० सहस्र रुपये से अधिक मांगा किन्तु हमको ३५ सौ रुपया मिला जिसका हिसाब हम पुराणवर्म के उत्तरार्द्ध के अंत में देंगे। साथ ही साथ हमने पंडितों से विचार–विवेचन–समाधान की भी सहायता मांगी। हमने पुराण देखना आरंभ किया। १८ पुराण देख चुके थे कि दैवयोग से हमारी दृष्टि जाती रही। विवश अन्य कई पण्डितों को वेतन रूप से रख कर अष्टादशपुराण-उपनिषद-ब्राह्मण-दर्शन-निरुक्त प्रभृति ग्रंथों की सूचियां तैयार कराई गई। ग्रंथ के प्रत्येक विषय के लेख में बहुत अधिक विचार की आवश्यकता रहती थी अतएव ग्रंथ बहुत धीरे धीरे लिखा गया। इस ग्रंथ के लिखने में विद्यारत्न पं० गोकुलचंद्रजी शास्त्री मेरठ ने बहुत सहायता दी इस कारण पण्डितजी को हम धन्यवाद देते हैं।

विद्यावारिधिजी की आज्ञा और कृपा से आज यह ग्रंथ तैयार हो गया है। हम इस ग्रंथ को—

॥ श्रीभगवान् शंकर ॥

के चरणकमलों में समर्पित करते हुये भगवान् शंभु से यह भी प्रार्थना करते हैं कि इस ग्रंथ के प्रचार से जो शुभफल की प्राप्ति हो वह हमारे पूज्य मित्र स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र को पहुंच कर उनके आत्मा को शान्ति और सुख दे।

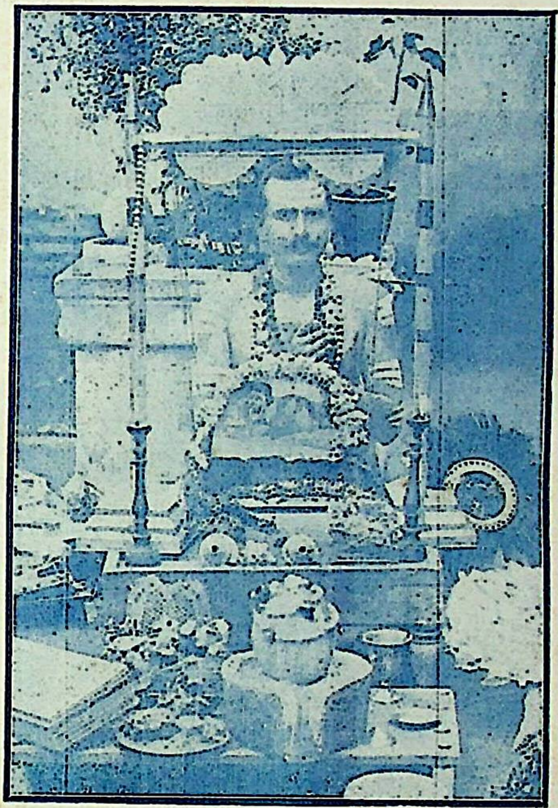
हितेच्छुः—

ग्रन्थकर्ता।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकर

श्री १०५ पंडित भगवानदीनजी शुक्ल

दीवान, ताल्लुकेदार शाहपुर (बैतूल, मध्यभारत)।



पुराणवर्म के लिये सहायता २३१)

पुराणों के मिथ्या हो जाने पर हमारे पूर्व पुरुषाओं की कीर्ति, बल, शासनप्रणाली, व्यवहारपद्धति, प्रेम और जात्यभिमान, विद्वत्ता, गुरुता, प्रभृति हिन्दुओं के समस्त गुणों का नाश होकर हिन्दूजाति बनपशु के समान हो जाती है। इस अत्याचार को हम नहीं सह सकेंगे अतएव पुराण खंडन करनेवालों को सावधान हो जाना चाहिये।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

* श्रीगणेशाय नमः *

भूमिका

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥

परस्पर के द्वेष से जब कोई जाति किंकर्तव्य विमूढ़ होकर अपने वीरत्व और प्रभुत्व को त्तय करके किसी दूसरी जाति के वश में जा पड़ती है तब उसके ऊपर भूमण्डल की समस्त जातियों का आक्रमण होता है ।

उसके धार्मिकग्रंथ दो कौड़ी के, मान्यपूर्वज जंगली, भाषा निकम्मी, वेष लज्जाकारी, व्यवहार बच्चों का खेल और आहार बुद्धिनाशक बतलाकर उस जाति के अयोग्य होने की घोषणा कर दी जाती है। इसके पश्चात् नये नये पाठ पढ़ा कर उस जाति को दूसरी जातियां खा जाया करती हैं। इस नियम के अनुसार भूमंडल की अनेक जातियां दूसरी जातियों के पंजे में पड़ कर अपने स्वरूप को खो बैठी हैं उनके अस्तित्व का केवल इतिहास सात्ती है।

भारत के पददलित होने के पश्चात् इसी नियम ने हिन्दू जाति में अपना कार्य आरंभ कर दिया। सर्व प्राचीन लोकमान्य वेदों को गड़रियों के गीतों की डिगरी दे दी। प्रबल वीर, धुरंधर विद्वान् हिन्दुओं के पूर्वजों को भेड़ बकरी चरानेवाले काश्तकार बतलाया गया। इनकी भाषा संस्कृत को मृतक भाषा तथा हिन्दी को अज्ञों की भाषा कह दिया। इनके वेष को टेसू का स्वांग बतला कर वेष से घृणा करा दी। हिन्दू जाति के सात्विक आहार को बलहीन कह कर इसके व्यवहारों को मूर्खों की प्रणाली की पदवी से विभूषित किया। इन बातों के सिद्ध करने के लिये हमारे पढ़ने की किताबों में विस्तृत लेख लिख कर हमको अपने पूर्वजों से घृणा करवाने के निमित्त प्रबल उद्योग किया गया। फल उसका यह निकला कि इस शित्ता से शित्तितसमुदाय हिन्दू रह कर भी हिन्दू धर्म का प्रबल शत्रु तैयार हुआ।

जिस समय भारतवर्ष में यह अँगरेजी की शित्तापद्धति चालू हुई उसी समय इस स्कीम को देख कर अनुभवी, बुद्धिमान लार्ड मेकाले साहब ने लिखा—

A people which takes no pride in the noble acheivements of remote ancesters will never acheive any thing worthy to be remembered with pride by remote descendants—

इस अंगरेजीशिक्षा द्वारा ऐसा एक मनुष्यदल तैयार होगा जो रक्त तथा रंग में हिन्दुस्तानी होगा किन्तु आचार, व्यवहार, चरित्रचिन्ता तथा विचार में गैरहिन्दुस्तानी होगा।

यही हुआ। अंगरेजी शिक्षित हिन्दूसमुदाय ही हिन्दुओं का शत्रु बन गया। इस दल ने योरुप की समस्त पद्धतियों को सत्य ठहरा कर भारत की पद्धतियों को बूट से ठुकराना आरंभ किया। इन्हीं के उद्योग से भारतवर्ष में आर्यसमाज का जन्म हुआ। इन्हीं के परिश्रम से देवसमाज बना। इन्हीं के सिद्धान्तों को लेकर सनातनधर्म को पूर्ण रूप से माननेवाले सिक्खों में अकालीदल का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हीं के उद्योग से हिन्दूसभा बनकर भंगी, चमार, ब्राह्मणों का एक भोजन होने लगा। इन्हीं के उद्योग से शुद्धि का नाम ले ले कर हिन्दू मुसलमानों के यहां भोजन करने लग गये। इनकी नास्तिकता का प्रभाव राजकीय संस्थाओं पर पड़ कर व्यवस्थापिका सभा से विधवा-विवाह, वर्णसंकरी विवाह, सहवास आदि अनेक बिल पास हुये।

अब यह समुदाय अनुभव करने लगा कि जब तक पुराणों का पूर्णरूप से खंडन न किया जावेगा तब तक पूर्णरूप से हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति सदा के लिये मृत्यु के मुख में नहीं जायगी। इस गंभीर गवेषणा को आगे रख इस समुदाय के मनुष्यों ने पुराणों के खंडन में लेखनियां उठा कर भांति भांति की सहस्रों पुस्तकें लिखी हैं जिनमें पुराणों की असत्यता, बनानेवालों की अनभिज्ञता, माननेवालों की मूर्खता इस प्रकार से सिद्ध कर दी गई है कि उन लेखों को पढ़ कर भारत का साधारण जनसमुदाय भ्रम में पड़ कर दिनोंदिन हिन्दूधर्म को तिलांजलि देता जा रहा है।

* पुराणनाश से हानि *

हम अनुभव कर रहे हैं कि पुराणों के नाश से ही हिन्दूधर्म का सर्वथा नाश हो जावेगा। हिन्दुओं की वीरता, हिन्दुओं की न्यायपरायणता, हिन्दुओं का प्रभुत्व, हिन्दुओं का शासन, हिन्दुओं की आस्तिकता, हिन्दुओं का त्याग, हिन्दुओं की दयालुता, हिन्दुओं की विद्वत्ता, हिन्दुओं का विजय, हिन्दुओं की भक्ति, हिन्दुओं का प्रेम, हिन्दुओं का सर्वोच्च गौरव प्रभृति असंख्यगुण जो हिन्दुओं के पूर्वजों में विद्यमान थे जिनकी आख्यायिकाओं से शिक्षा लेकर आज भी भारतवर्ष समस्त देशों का गुरु बन सकता है वे सब पुराणों में ही लिखे हैं। पुराणों के असत्य होने पर हिन्दूजाति

अपने पूर्वजों के सहस्रों गुणों को मिथ्या ठहरा कर आरंभ से ही जंगली जाति सिद्ध हो जावेगी और फिर थोड़े ही दिनों में दूसरी जातियों में मिल कर अपने स्वरूप को खो बैठेगी।

इस प्रकार से होनेवाले हिन्दुओं के सर्वनाश को हमारा आत्मा सहन नहीं कर सका। इस सर्वनाश को रोकने के लिये, पुराणों की सत्यता संसार पर दिखलाने के लिये हमारी लेखनी का उत्थान हुआ और इस लेखनी से पुराणों की रक्षा में जो कुछ लिखा गया वह आज श्रीमान् के करकमलों में आकर सुशोभित हो रहा है।

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

हितेच्छुः—

ग्रन्थकर्ता।

टिप्पणी।

पुराणवर्म के पूर्वार्द्ध में जितने विषय आये हैं उतने अंश में पुराणों पर कोई शंका नहीं रही। उत्तरार्द्ध के छप जाने पर पुराणों पर एक भी शंका नहीं रहेगी। इतिशम्।

* श्रीगणेशाय नमः *

पुराणवर्म के पूर्वार्द्ध का
* सूचीपत्र *

पुराणस्वरूपपाद ।

पुराणसंख्यापाद ।

लक्षणपाद ।

ईश्वरसत्तापाद ।

ईश्वरस्वरूपपाद ।

ईश्वरचरित्रपाद ।

ईश्वरार्चापाद ।

देवसत्तापाद ।

देवसंख्यापाद ।

देवशक्तिपाद ।

देवचरित्रपाद ।

सृष्टिपाद ।

भूभ्रमणपाद ।

भूगोलपाद ।

आयुपाद ।

* श्रीगणेशाय नमः *

पुराणवर्म

यं ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति परं प्रधानं पुरुषं तथाऽन्ये ।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥१॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥२॥

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्न इन्द्रो वृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥३॥

प्रणम्य विष्णुं शिरसा त्रिमूर्तिं साकारमाकारविवर्जितं च ।
तनोति दिव्यं सुपुराणवर्म वालप्रबोधाय च कालुरामः ॥४॥

जो हिन्दू जाति संसार की समस्त जातियों में प्राचीनता का स्वत्व रखती है । जिस हिन्दू जाति ने भूमण्डल की समस्त जातियों को पढ़ा लिखा कर आहार व्यवहार बतला कर सभ्य बनाया है । इतनाही नहीं जिसने चिरकाल तक लोक में अपनी सत्ता को बनाये रक्खा है । जिसने अपने शासनकाल में प्रेम और दीनों के पालन पोषण की पराकाष्ठा दिखलाई है । जिस जाति ने अपने स्वत्व पर स्थित होकर शान्ति का पाठ पढ़ाया है । जिस जाति के सपूतों के द्वारा संसार में व्याकरण, वैद्यक, गणित, धर्मशास्त्र, आदि आदि विद्याओं का मार्तण्ड खिला है । जिस जाति ने अपने अनुभव ज्ञान से जीव ईश्वर के भेद का पता लगाया है । जिसके करुणामय चित्त से भक्ति की भागीरथी बही है । आज कुछ सज्जन लोग उसी जाति के सिद्धान्तों को अज्ञानजनित, पोच और सड़ियल कहने लगे हैं ।

इन सज्जनों की दृष्टि में इस जाति के पुरुषरत्न कृषक, भेड़ बकरी चरानेवाले, सर्वथा ज्ञानशून्य जंगली मनुष्य थे । इस जाति के प्राणभूत सर्वविद्याओं के भंडार वेदों को इन सज्जनों ने अपने मस्तिष्क ज्ञान से गड़रियों के गीत जान लिये हैं । इन सज्जनों की दृष्टि में यह जाति भारतवर्ष की रहनेवाली ही नहीं है । किन्तु यह पवित्र जाति इनकी दृष्टि में तिब्बत के जंगल में रहनेवाली जंगली जाति है । इस जाति के जीवनाधार पुराण इन सज्जनों की दृष्टि में ढपोलसंखों के कल्पित पोथे हैं ।

ये लोग लम्बे चौड़े लेख लिख कर तथा बड़े बड़े प्लेटफार्मों पर खड़े होकर संसार को पुराणों की असत्यता का पूर्ण ज्ञान करवा रहे हैं। इनका कथन है कि हिन्दू जाति जिन पुराणों को धार्मिक ग्रन्थ कहती है, जिनको यह जातिगौरव की दृष्टि से देखती है वे ग्रन्थ विचारदृष्टि से बच्चों के खेल हैं । समस्त संसार की बुराइयां और संसार को समस्त गप्पें यदि कहीं हैं तो वे पुराणों में ही हैं।

इनका कथन है कि हम किसी के समझाये भी आज पुराणों के मानने को तैयार नहीं हैं। एक दो दोष रहने पर ग्रन्थ पर क्षमा कर सकते हैं किन्तु पुराणों में तो आरम्भ से अन्त तक दोष ही दोष भरे पड़े हैं। यदि कोई हमसे सुनना चाहे तो सुनले, पुराणों में जितने दोष हैं उतने दोष रद्दी से रद्दी पुस्तक में भो नहीं पाये जाते—

(१) पुराणों के बनने के काल का ही ठीक पता नहीं लगता। संसार के बड़े बड़े विद्वानों ने भूरि परिश्रम से यह पता लगाया है कि पुराण अधिक से अधिक काल के हैं तो तीन सौ वर्ष के भीतर के ही बने हुये हैं, (२) बड़ी खोज करने पर भी पुराणों के स्वरूप का पता नहीं लगता। कोई कोई सज्जन तो ब्राह्मणग्रन्थों को ही पुराण कहते हैं, (३) और कोई कोई व्यासकृत बतला कर अट्ठारह पुस्तकों को पुराण कहते हैं किन्तु लायब्रेरी की अलमारियां टटोलने से हमको यह ज्ञान होता है कि पुराण नाम से अट्ठारह बीस ही पुस्तकें नहीं हैं किन्तु चालीस बयालीस पुस्तकों पर पुराण लिखा मिलता है, (४) संसार के बड़े बड़े विद्वानों ने यह पता लगाया है कि पाँच लक्षणवाला ग्रन्थ पुराण कहलाता है किन्तु जिनको आजकल के लोग व्यासकृत अट्ठारह पुराण कहते हैं उनमें भी पाँच लक्षण नहीं हैं, (५) इतना ही नहीं किन्तु इन पुराणों में ईश्वर-सत्ता का बड़ा लम्बा चौड़ा वर्णन किया है। प्राचीन समय में इन बातों को चाहे कोई स्वीकार कर लेता परन्तु वर्तमान समय में जब कि संसार में साइंस का दिवाकर उदय हो गया है इन पोच सिद्धान्तों को कोई भी मानने को कटिबद्ध नहीं है, (६) ईश्वर भी एक विलक्षण ही माना गया है संसार के समस्त धर्म ईश्वर को निराकार बतला रहे हैं इन सब के विरुद्ध पुराणों में ईश्वर एक प्रतिष्ठित पुरुष की भाँति साकार बतलाया गया है, (७) इन पुराणों में ईश्वर का चरित्र इतना घृणित और भ्रष्ट दृष्टिगोचर होता है कि जिसको आजकल का कोई भी सभ्य पढ़ नहीं सकता। लज्जित होकर पुस्तक उठा कर ताक में रख देता है, (८) इन पुराणों में पाषाण काष्ठादिकों का पूजन ही ईश्वर पूजन और वही मनुष्यशरीर का मुख्य उद्देश्य है, (९) पुराणों ने देवसृष्टि मनुष्यों से भिन्न ही मान ली है इनके यहां बात बात में देवताओं का वर्णन है, (१०) देवता कितने हैं इस संख्या का पता लगाना अति कठिन है कम से कम ३३ करोड़ की संख्या में तो कोई मीन ही मेष नहीं, (११) देवशक्ति पुराणों में एक अद्भुत शक्ति है जो बात मनुष्यों की

बुद्धि में किसी प्रकार भी न आसके उसको देवशक्ति की उपाधि दे दी जाती है। इसमें बड़ी बड़ी गप्पों की रचना को छोड़ कर और कुछ भी सार नहीं प्रतीत होता, (१२) देवचरित्र पुराणों में एक अद्भुत चरित्र है। किसी भी देवता को कलंकित किये बिना नहीं छोड़ा, यह पुराणों की उच्चशिक्षा का आदर्श है, (१३) पुराणों की सृष्टिरचना बच्चों का खेल है, भिन्न २ पुराणों में भिन्न २ देवताओं से सृष्टि रची गई है, (१४) समस्त तत्ववेत्ताओं की दृष्टि में पृथिवी घूमती है किन्तु पुराणों की दृष्टि में भू अचला है और सूर्यादि ग्रह घूमते हैं, (१५) सृष्टि का प्रमाण इतना विस्तृत बतलाया गया है कि गजों के स्थान में योजनों का आयोजन किया गया है, (१६) पुराणसृष्टि में मनुष्यों की बड़ी लम्बी २ उम्र बतलाई गई है जिसको हम निरी गप्प समझते हैं, (१७) पुराणों में प्रत्येक मनुष्य को ऋषि के नाम से याद किया गया है ऋषिउपाधि का कोई लक्षण ही नहीं प्रतीत होता, (१८) ऋषियों ने भिन्न २ धर्म चला कर संसार में संग्राम खड़ा कर दिया। (१९) पुराणों के ऋषियों में बड़ी शक्ति है चाहे जिसको मार डालें, मुर्दों को जिला दें, जो चाहे कर दें ऋषि क्या हैं ईश्वर के पितामह हैं (२०) ऋषियों में परस्पर में द्वेष रहता था। (२१) पुराणों के स्थान स्थान में वेदविरोधी लेख लिखे गये हैं। जिन लेखों के लिखने का अभिप्राय वेद का गौरव नष्ट करना है, (२२) पुराणों में परस्पर में विरोध है। एक पुराण में जो लेख लिखा है तो दूसरे में उसके विरुद्ध अवश्य है। और फिर ठप्पा यह है कि समस्त पुराणों के कर्ता महर्षि वेदव्यास ही हैं। नहीं मालूम व्यासजी भंग खाते थे या चरस पीते थे जिनको इतना भी ज्ञान नहीं था कि हम प्रथम क्या लिख आये हैं और अब क्या लिखते हैं, (२३) यदि संसार में महाभारत का संग्राम खड़ा करना हो तो केवल पुराणों का पढ़ा देना ही पर्याप्त है। किसी पुराण में शैव निन्दा और वैष्णवों की स्तुति और अन्य पुराण में वैष्णवों की निन्दा और शैवों की स्तुति, इसी प्रकार कहीं शाक्तों की निन्दा और कहीं गाणपत्यों की निन्दा। पुराण क्या हैं सम्प्रदायों की निन्दाओं के भण्डार हैं, (२४) पुराणों में प्रत्यक्ष विरोध का तो कुछ मान ही नहीं। जहां देखिये वहां पर ही असम्भव कथा का समावेश मिलता है। पुराण माननेवाले इन कथाओं को अन्धपरम्परा से भले ही मानें किन्तु कोई भी विचारशील मनुष्य इनके मानने के लिये कटिवद्ध नहीं होता, (२५) पुराणों में भक्ष्याभक्ष्य का किञ्चित भी विचार नहीं है। जिस पुराण को उठाइये उस ही पुराण में दश पांच इतिहास मांसभक्षण मदिरापान के मिल जावेंगे। कोई भी पुराण इस आपत्ति से बचा नहीं, (२६) पुराणों में अस्पृश्यता का रोग भी बड़ा भयंकर है। हिन्दू जाति के लिये ही पुराणों में छूना मने है। यदि कोई भूल कर छू ले तो फिर स्नान करता फिरे, (२७) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों का ही वेद पढ़ना पुराणों में पाया जाता है। स्त्री और शूद्र के लिये

नितान्त फाटक बन्द है। जब कि सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, आदि ईश्वररचित पदार्थ समस्त जगत के लिये हैं तो फिर ईश्वरीय ज्ञान स्त्री शूद्र के लिये क्यों नहीं। इसके विज्ञान को पुराणकर्ता हो समझ सकते हैं, (२८) पुराणों में मोक्ष की भरमार है। विष्णु के नाम से मोक्ष, तीर्थों के स्नान से मोक्ष, क्षेत्रों के दर्शनों से मोक्ष, कथा के श्रवण से मोक्ष, मोक्ष की इस वृद्धि को कोई भी विचारशील मनुष्य इस प्रकार स्वीकार नहीं कर सकता, (२९) मरे हुये पितरों को पुत्रों का दिया हुआ अन्न जल इतना शीघ्र मिलता है कि जितनी शीघ्रता से रेल तार भी कार्य सिद्ध नहीं कर सकते। यह हँसी नहीं तो और क्या है, (३०) पुराणों में विधवा स्त्रियों का विवाह मिलता है जो सनातन-धर्म के विरुद्ध है। किसी किसी पुराण में स्त्री के लिये एक ही पति लिखा है किन्तु पुरुषों के लिये छुट्टी है वे चाहे जितने विवाह कर लें यह उनकी इच्छा पर निर्भर है, (३१) पुराणों में वर्ण व्यवस्था जन्म से ही ली गई है। ब्राह्मण का बालक चाहे एक अक्षर न पढ़े किन्तु उसके ब्राह्मणत्व में किञ्चित् भी न्यूनता नहीं होती और शूद्र का बालक यदि किसी प्रकार पढ़ लिख कर धुरन्धर विद्वान् भी क्यों न हो जावे किन्तु वह सर्वदा के लिये शूद्र ही रहेगा। पुराणों के इस न्याय का क्या ठिकाना है, (३२) पुराणों में शुद्धि प्रायश्चित्त के इतिहास मिलते हैं किन्तु वे सनातनधर्म के विरुद्ध हैं।

इस प्रकार पुराणों का गोरखधन्धा बड़ा ही विलक्षण है जो वेद शास्त्र और आधुनिक साइंस तथा मनुष्यों की बुद्धियों के विरुद्ध है। इस प्रकार के पुराण जो आदि से अन्त तक सर्वथा ही गपोड़ों से भरे हैं भला उनको मान कर भूमण्डल को अन्धकार के गढ़े में डालना नहीं है तो और क्या है। पुराणों के खण्डन में क्रिश्चियन् सोसाइटी की तरफ से रामचरित्र, कृष्णचरित्र, आदि अनेक छोटे छोटे ट्रेक्ट लिखे गये तथा आर्य-समाज की तरफ से शंकाकोष और पुराणतत्व आदि बड़े बड़े ग्रन्थ निर्माण हुये परन्तु किसी भी पण्डित ने किसी प्रकार का उत्तर नहीं लिखा जिससे नितान्त पुराणों की असत्यता का ज्ञान उपलब्ध होता है। अतएव पबलिक से हितभाव से हमारी यह प्रार्थना है कि समय बदल गया, विद्या का भास्कर उदय हो गया, अब पुराणों के चक्कर में और इनके विलक्षण गोरखधन्धे में पड़े रहने का समय नहीं है।

पुराणों के खण्डन करनेवालों का कथन हम ऊपर लिख चुके वे लोग गर्ज गर्ज कर व्याख्यान देते हैं तथा लेख लिखते हैं। साधारण पबलिक इस लेख और व्याख्यान से भ्रम में पड़ती है तथा पुराणों की तरफ से मनुष्यों को अरुचि हो गई है। हम आगे इस "पुराणवर्म" नामक ग्रन्थ में ऊपर के लिखे हुये कथनों पर विचार करेंगे पाठक लोग अपने आप सत्यता और असत्यता को जान जावेंगे।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक

पालीवाल गौड़ब्राह्मण-वंशभूषण

शान्तिस्वरूप, भारतप्रसिद्ध दानशील, आनरेरी मेजिस्ट्रेट

श्री १०५ सेठ नन्हेलालजी रईस,

होशंगाबाद (मध्यभारत)।



पुराणवर्म के लिये सहायता २०५)

विद्वानों की विद्वत्ता, बलशालियों के बल, धनियों के धन, शिल्पकारियों के शिल्प का मुख्य प्रयोजन यही है कि अपनी जाति की नष्ट होती हुई गौरवता को रोकें, और अपने गौरव को संसार के प्रत्येक मनुष्य के सामने खड़ा कर दें। हिन्दुओं के गौरव का सूर्य पुराण ही खिला सकते हैं, अतएव हिन्दू जाति को अपना सर्वस्व अर्पण करके पुराणों की रक्षा करनी चाहिये।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

* समयपादः *

सब से प्रथम इस "समयपाद" नामक प्रथम पाद में पुराण शब्द की व्युत्पत्ति लिखेंगे इसके पश्चात् पुराण खण्डन करनेवालों के उन लेखों को लिखेंगे जिन लेखों को यह लोग पुराणों की नवीनता में प्रमाण रखते हैं फिर इन लेखों के ऊपर विचार भी करेंगे कि वास्तव में ये लेख सत्य हैं या निःसार ही हैं।

पुराण शब्द नपुंसक लिङ्ग वाचक है। पुरा अव्यय से "पुराभवं" इस अर्थ में "ट्यु" प्रत्यय है "सायं चिरं प्राह्णे प्रगे ऽव्ययेभ्यष्ट्यु ट्युलौ तुट् च ४।३।२३" । इस सूत्र से यद्वा "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन २।१।४९"। इस सूत्र से निपातन द्वारा तुड् भाव। यद्वा "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४।३।१०५" । इस सूत्र से अथवा पुरा अव्यय पूर्वक "नी" धातु से "ड" प्रत्यय और णत्व इस प्रकार से पुराण शब्द बनता है और निरुक्तकार यास्कमुनि ने पुराण शब्द की व्युत्पत्ति "पुरानवम्" पुराणम् लिखी है जिसका अर्थ है जो कि पहिले किसी समय में नये हों उनका नाम पुराण है। इस व्युत्पत्ति मात्र से सिद्ध है कि इनमें पूर्व कल्पों तक की कथा लिखी गई है। फिर हमको नहीं मालूम इनको नूतन किस विचार से कहा जाता है। यदि पुराणों को नवीन कोई कह सकता है तो वही कह सकता है कि जिसको व्युत्पत्ति तक का भी ज्ञान न हो तथा जो पुराणज्ञान में अनभिज्ञ है। विचारशील सज्जन तो व्युत्पत्ति मात्र से ही पुराणों को प्राचीन समझते हैं।

वादी पुराणों के नवीन होने में पहली शङ्का जो दिखलाते हैं वह यह है—

(१) रामानुजाचार्य विक्रमीय सम्वत् १२ में हुए हैं उन्होंने लोगों को शंख चक्रादि चिन्हों से चक्राङ्कित किया था परन्तु लिङ्गपुराण में उस मत का खण्डन किया है। तब सिद्ध हुआ कि लिङ्गपुराण रामानुज के बाद में बना अतएव व्यासकृत नहीं है।

यूरोप का चश्मा आँख पर रख कर भारतीय पुराणों का अवलोकन किया जाता है इसी कारण से पुराण नवीन और अमान्य जान पड़ते हैं। यूरोप की यह मर्यादा है कि पहिले घटना हुई और पश्चात् वह घटना लेख में आई किन्तु भारतवर्ष में यह नियम ऋषि, योगी और अवतारों के लिये लागू नहीं है। ऋषि, योगी और अवतार तीनों ही भूत, भविष्य, वर्तमान के ज्ञाता होते हैं इस कारण वे भविष्य की बात को भी पहिले ही लिख दिया करते हैं अतएव व्यासजी

ने पहिले ही से लिख दिया तो इसमें आश्चर्य क्या हुआ। यदि वादी यह आग्रह कर बैठे कि नहीं नहीं तुम्हारी यह बातें बनावटी हैं हम नहीं मानेंगे ऐसी दशा में हम यह कहेंगे कि पुराण अभी बने ही नहीं। क्योंकि पुराणों में कल्कि अवतार का चरित्र आता है और कल्कि अवतार कलियुग के अन्त में होंगे अतएव पुराण कल्कि अवतार होने के पश्चात् लिखे जावेंगे। जिस प्रकार योगी तथा ईश्वरावतार वेदव्यासजी कल्कि अवतार का चरित्र अवतार होने से पहिले ही पुराणों में लिख सकते हैं तो फिर भगवान् रामानुजाचार्य के पश्चात् होनेवाली घटनाओं को व्यासजी पहिले ही से पुराणों में क्यों नहीं लिख सकते। घटना होने से पहिले ही लेख लिखा जाना यह वेद और शास्त्र दोनों ही में पाया जाता है। आगे चल कर वेदों का भी उदाहरण मिल जावेगा विषय भिन्न होने से इसको हम यहां पर ही छोड़ते हैं।

वास्तव में शंख चक्रों का खण्डन जो लिङ्गपुराण में पाया जाता है यह खण्डन करनेवाला श्लोक लिङ्गपुराण का असली व्यासकृत श्लोक नहीं है किन्तु क्षेपक है। प्राचीन समय में जब कि संसार में पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं उस समय में यह चाल थी कि यदि कोई श्लोक किसी पण्डित ने कहा या किसी पुस्तक में मिला तो फिर पुस्तक पढ़नेवाला जहां उसको उचित समझता था ऊपर या नीचे के पुस्तक के खाली भाग में लिख लेता था और जहां उसको कहना होता था वहां कुछ निशान बना देता था जिसका अभिप्राय यह होता था कि यह श्लोक यहां कहा जावेगा। इसी प्रकार वैष्णवों से द्वेष रखनेवाले किसी पण्डित ने यह लेख लिखा, छपते समय प्रेस की असावधानी से यह पुस्तक के श्लोक संख्या में आ गया। क्षेपक होने में हमारे पास दो प्रमाण हैं (१) वेद व्याख्याता पण्डित भीमसेनजी शर्मा तथा मेरे मित्र विद्या वारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद जी इस श्लोक को क्षेपक लिख चुके हैं और (२) पुराणोंमें किसी भी सम्प्रदाय का कहीं पर भी खण्डन नहीं होता। जब पुराण का यह सिद्धान्त ही नहीं है तो फिर शंख चक्रादि के खण्डन करनेवाला श्लोक क्षेपक नहीं तो और क्या है।

---

(२) पुराणों के व्यासकृत न होने में यह प्रमाण देते हैं कि तौज़ुक जहांगीरी नामक पुस्तक में आलू, तम्बाकू, और गोभी के लिये लिखा है कि जहांगीर बादशाह के बाप के समय एक पादरी इन चीजों को अमेरिका से लाया था जिसको २८६ वर्ष हुये परन्तु ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि (तमालं भक्षितं येन०) तथा पद्मपुराण में लिखा है कि (धूम्रपानरतंविप्रं०) इन श्लोकों में तम्बाकू पीने की निन्दा की है इससे वे पुराण २८६ वर्ष से इधर के ही हैं।

इतना अच्छा हुआ कि पादरी साहब जहांगीर बादशाह के बाप के समय में तमाखू ले आये और जो कहीं उस समय तमाखू न लाकर आजकल ले आते तो फिर यह पुराण डेढ़ ही सप्ताह के बने ठहर जाते। अमेरिका में तमाखू सस्ता होगा और भारतवर्ष में महंगा होगा इस कारण पादरी साहब ले आये और कुछ मुनाफा खा लिया। इससे पुराण नये कैसे हो गये। या अमेरिका में बढ़िया तमाखू होता होगा पादरी साहब बतौर तोफे के लाये होंगे, बादशाह की नजर किया होगा; बादशाह प्रसन्न हुये होंगे। नहीं मालूम इससे पुराण नये कैसे हो गये। क्या इस घटना से पहिले भारतवर्ष में तमाखू नहीं होता था हजारों वर्ष के बने हुये वैद्यक के ग्रन्थ चरक, सुश्रुत आदि में तमाखू के गुण दोष लिखे हैं इनमें तमाखू का उल्लेख कहां से आ गया। जिस समय में पादरी साहब भारतवर्ष में तमाखू लाये हैं उस समय में तो चरक, सुश्रुत आदि वैद्यक के ग्रन्थ यूनान में अपना प्रकाश दिखला कर यूरोप में सुशोभित हो गये थे। बुद्धि की बलिहारी है। अमेरिका के तमाखू से भारतवर्ष में तमाखू की उत्पत्ति मानना एक विलक्षण ही बात है। पादरी साहब अमेरिका से तमाखू लाये इस तमाखू शब्द से संसार में तमाखू के पत्ते का ग्रहण होता है। उक्त पादरी तमाखू का पत्ता लाये फिर क्या भारतवर्ष में वह तमाखू का पत्ता बोया गया, फिर वह जमा, बड़े बड़े पेड़ हुये, उससे भारतवर्ष में तमाखू चला। तमाखू का पत्ता नहीं बोया जाता है किन्तु बीज बोया जाता है पादरी के ज़रिये से अमेरिका के तमाखू का बीज भारतवर्ष में आना इसका इतिहास साक्षी नहीं है तो फिर क्या हम भी मानलें कि तमाखू के पत्ते से तमाखू पैदा हो गया? लिखनेवालों को तमाखू की उत्पत्ति का विचार करना चाहिये था विचार को ताक में रख कर ही अमेरिका के तमाखू से भारतवर्ष के तमाखू की उत्पत्ति बतलाई गई है जो निर्मूल है अतएव भारतवर्ष में तमाखू पहिले ही से होता था उसी का पुराणों में निषेध है।

दुर्जन तोष न्याय से हम माने लेते हैं कि पादरी के तमाखू लाने से पहिले भारतवर्ष में तमाखू नहीं होता था और हम यह भी माने लेते हैं कि आज भी भारतवर्ष में तमाखू नहीं होता फिर इतने से क्या पुराण नये हो जावेंगे? जिस सज्जन ने पुराणों पर तमाखू की शङ्का करके पुराणों को नवीन बतलाया है उसने अपनी दूसरी पुस्तक में अर्जुन का विवाह अमेरिका देश में होना लिखा है सम्भव है कि व्यासजी अर्जुन की बरात में गये हों और अमेरिका में तमाखू देख आये हों या व्यासजी बरात न गये हों तो किसी दूसरे बराती ने व्यासजी से अमेरिका के तमाखू का कुछ ज़िकर किया हो या राजा युधिष्ठिर की राजसूय यज्ञ या अश्वमेध यज्ञ में कोई अमेरिका निवासी आया हो और उसने गुड गुड मचाया हो उसी के ऊपर व्यासजी ने निषेध लिख दिया हो।

वास्तव में तो इसका ठीक उत्तर यह है कि योगी तथा अवतार को ब्रह्माण्ड भर का ज्ञान रहता है जब व्यासजी योगी तथा अवतार थे और उनको समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान था तो क्या अमेरिका ब्रह्माण्ड से बाहर है ? यदि आप यह कहें कि हम इस बात को नहीं मानेंगे कि योगी को ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है तो इसके ऊपर हम इतना ही कहेंगे कि आप मानें चाहे न मानें क्या हमने आप के मनवाने का ठेका लिया है। आप मानें या न मानें किन्तु दर्शनों से यह पूरा पता लगता है कि योगी को ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है इसकी पुष्टि में हम योगदर्शन के विभूतिपाद का एक सूत्र लिखते हैं देखिये—

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।

सूर्य में संयम करने से समस्त जगत् का यथार्थ ज्ञान होता है । जब योगी को समस्त भुवनों का ज्ञान होता है और उन भुवनों के अन्तर्गत अमेरिका भी है तो अमेरिका में रहनेवाले तमाखू का निषेध व्यासजी ने कर दिया तो इसमें शङ्का के बाप का क्या कोई दावा है ?

---

(३) शंकराचार्यजी रामानुज से पूर्व हुये क्योंकि रामानुज ने शङ्करभाष्य का खण्डन किया है मायावाद शङ्कराचार्य ने चलाया था उस मायावादी की निन्दा पद्म पुराण में की है कि—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मेव च ।

इससे सिद्ध हुआ कि बुद्ध, शङ्कर और रामानुज से पीछे पद्मपुराण बना इससे व्यासजी का बनाया नहीं हो सकता ।

क्या मज़े की बात है ऋग्वेद ४ अनुवाक् ३ सूक्त ५ में लिखा है कि "अहं मनुरभवं" ईश्वर कहता है कि "हमही ने मनु शरीरधारण कियाहै" फिर मनुस्मृति अध्याय ३ में श्राद्ध में पितरों को पुराणों का सुनाना लिखा है लेखक की समझ के अनुसार पुराणों के बाद मनुस्मृति बनी । तब ही तो मनुस्मृति में पुराणों का ज़िकर आया और मनु के बाद वेद बने क्योंकि वेदों में मनु का ज़िकर है । इतना तो लेखक को भी मानना पड़ेगा कि पुराण वेदों से पहिले बने हुये हैं यदि पुराण भगवान् रामानुज के समय में बने हैं तो फिर वेद बीरबल के समय में बने हैं । न वेदों का दोष, न पुराणों का दोष, लेखक की समझ का दोष है । जब पुराण-कर्ता भविष्य काल को जानता है तो फिर भविष्य की एक बात कह देने में सकुटुम्ब आश्चर्य कैसे आन कूदा । हम एक बार फिर दिखलाते हैं कि योगी और अवतार को भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल एक से होते हैं देखिये योग सूत्र—

परिणामत्रयसंयमादतीतानागत ज्ञानम् ।

पूर्वोक्त धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम, अवस्थापरिणाम, इन तीन प्रकार के परिणामों में ध्यान समाधि रूप संयम करने से योगी पुरुष को भूत, भविष्य का ज्ञान हो जाता है।

जब योगी को भविष्य का ज्ञान होता है तो फिर भावी मायावाद का ज्ञान हो जाना दुरुह और असम्भव कैसे ? वास्तव में "मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मेव च" यह पाठ क्षेपक है। पाठक कहेंगे कि आप अच्छा उत्तर देने लगे सब को क्षेपक ही बतलाने लगे। इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि हम करें भी क्या वादी ने क्षेपक ही आगे रक्खे हैं वादी का अभिप्राय यह है कि शंका तो कम मिलती हैं और शंकाओं का बढ़ाना अवश्य है अतएव क्षेपक ही सम्मिलित किये जावें वादी के इस अभिप्राय से शंकाओं में क्षेपक आये हैं हम इनका उत्तर और प्रकार से भी दे सकते हैं किन्तु जिनको हमसे पहिले के पण्डितों ने क्षेपक माना है फिर हम भी उनको क्षेपक क्यों न मान लें। द्वितीय पुराणों का प्रौढ़ सिद्धान्त है कि वे किसी सम्प्रदाय के सिद्धान्त का खण्डन नहीं करते अतएव प्राचीन पण्डितों का क्षेपक लिखना ठीक है और उसी को हम यहां उत्तर में देते हैं।

---

(४) सब विद्वानों की सम्मति है कि अठारह पुराण महाभारत के पीछे बनाये गये हैं क्योंकि पुराणों में महाभारत का नाम आता है परन्तु महाभारत में पुराणों का नाम नहीं है।

हमको नहीं मालूम कौन कौन विद्वान् की सम्मति है और वे सम्मतियां किस पुस्तक में लिखी हैं। महाभारत से पहिले श्रीमद्भागवत को छोड़ कर समस्त पुराण बन चुके थे पश्चात् महाभारत बना और महाभारत के पश्चात् श्रीमद्भागवत बना यह लेख देवी भागवत के प्रथम श्लोक के नीलकंठ कृत संस्कृत टीका में पाया जाता है नहीं मालूम इसके विरुद्ध समस्त पण्डित कहां लिख गये। महाभारत और पुराण दोनों ही पुस्तक व्यासजी ने लिखे हैं कोई पहिले लिखा कोई पश्चात् लिखा इसमें हानि क्या हो गई और यह आधुनिक तथा नवीन कैसे हो गये। पुराणों का नाम महाभारत में तो क्या वेदों में पाया जाता है क्या पुराणों का नाम आ जाने से वेद नवीन हो जावेंगे और महाभारत में भी तो पुराणों का नाम आता है नीचे देखिये—

पुराणं मानवोधर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् ।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ।

महाभारत।

पुराण, मानवधर्मशास्त्र, साङ्गवेद, और चिकित्सा ये चारो आज्ञा सिद्ध हैं इनको दलीलों से नहीं काटना।

फिर नहीं मालूम शङ्काकर्ता के मत में महाभारत में पुराण का नाम क्यों नहीं आया और यदि नाम है तो फिर यह आधुनिक काल के बने हुये कैसे हो गये पाठक इस पर विचार करें।

---

(५) महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २३२ वा २३३ से विदित है कि व्यासपुत्र शुकदेवजी राजा परोक्षित के गर्भ में आने से भी बहुत पहिले मर चुके थे फिर महाभारत के ९६ वर्ष पीछे शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को भागवत कैसे सुनाई?

शान्ति पर्व अ० २३२ और २३३ में शुकदेवजी की आश्चर्यजनक योगशक्तियां दिखलाई गई हैं यहाँ पर शुकदेवजी का मुक्त होना लिखा है मुक्तपुरुष मरते नहीं किन्तु अमर हो जाते हैं इसको "तमेव विदित्वाति मृत्यु मेति" "अमृतास्ते भवन्ति" इत्यादि वेद प्रमाणों से मोक्ष में मृत्यु का निषेध किया है। व्यासजी ने स्वर्गारोहणिक पर्व में लिखा है कि राजा युधिष्ठिरजी का मृत्यु नहीं हुआ किन्तु धर्मावतार राजा युधिष्ठिरजी इसी भौतिक शरीर सहित स्वर्ग को गये इससे उनको मर गये लिखना व्यासजी के लेख इतिहास से ही विरुद्ध है। तथा शुकदेवजी मुक्त हो गये वा अमर भाव को प्राप्त हो गये इससे उनको मर गये कहना लिखना भी सर्वथा असत्य है। "य आत्माऽपहत पाप्मा" इत्यादि छान्दोग्योपनिषद्ध में लिखा है कि वह मुक्तपुरुष सत्यकाम सत्यसंकल्प हो जाता है उस मुक्त जीव के शुद्ध दिव्यनेत्र शुद्ध मन आदि इन्द्रियां भी सङ्कल्पसिद्ध हो जाती हैं। छान्दोग्य० प्रपा० ८ खण्ड २ कं० १०

यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत।

कठो० नि०

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि मुक्तपुरुष जिस जिस लोक तथा देश कालादि में जैसे जैसे नाम रूपादि द्वारा जो कुछ काम करना चाहता है सो सब कर सकता है। यह भी सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जो देवयोनिस्थ प्राणी मनुष्यों को अब नहीं दीखते उन देवों के साथ भी पूर्व काल में उत्तम प्रबल धर्मात्माओं का मेल वार्तालापादि हुआ करता था। तब मानना होगा कि देवों के तुल्य मुक्त हुये शुकदेवजी ने भी सिद्ध होकर प्रबल धर्मात्मा राजा परीक्षित को भागवत सुनाई सो ठीक है। यह पूर्वोक्त समाधान शास्त्र मर्यादा के

सर्वथा अनुकूल है तथापि हम इसकी पुष्टि के लिये प्रमाण भी दिखलाते हैं देखिये—महाभारत में शुकदेवजी की अवस्था मोक्ष होने से पहिले पच्चीस वर्ष की लिखी है और श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय १६ श्लोक २६ "तं द्व्यष्ट वर्ष सुकुमारपादकरोरुबाहुं सकपोलगात्रम्" जब राजा परीक्षित गंगा तट पर आसन लगाकर मृत्यु आने से पूर्व में बैठे तब बहुत से देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि लोग राजा के पास मिलने को आये जिनमें वसिष्ठ विश्वामित्रादि सभी सिद्ध तथा मुक्त लोग एकत्र हुये। उसके पश्चात् सोलह वर्ष की अवस्था वाले जिनके हाथ पांव आदि शरीरांग अति कोमल सुकुमार थे ऐसे फैले केशों वाले जटाधारी दिगम्बर नाम नग्न परमहंस रूपधारी शुकदेवजी भी आये उनको देख कर सब ऋषि, मुनि अपने अपने आसनों से उठे तथा राजा ने शुकदेवजी का पूजन करके उत्तम आसन पर बैठाया और कहा कि मालूम होता है कि कृष्ण भगवान ही मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं क्योंकि "अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम्" ३६। यदि ऐसा न होता तो जिनकी गति नाम चलना फिरना अव्यक्त नाम प्रत्यक्ष नहीं उन आप जैसे मुक्तपुरुष का दर्शन हम मनुष्यों को क्यों कर हो सकता था। यहां राजा ने अपने को मनुष्य कहते हुये शुकदेवजी को मनुष्यत्व से पृथक् दिखाया तथा अव्यक्त गति कहने से दिखाया है कि स्थूल पंचमहाभूतजन्य देहधारियों की सी गति उनको नहीं है। इत्यादि श्रीमद्भागवत के लेख से ही साफ साफ सिद्ध है कि यहां राजा परीक्षित को भागवत सुनानेवाले यथेच्छाचारी मुक्त शुकदेव हैं किन्तु मोक्ष से पहिले मानुषदेहधारी शुकदेव ने भागवत नहीं सुनाई महाभारत और श्रीमद्भागवत दोनों में ही शुकदेवजी को मुक्त लिखा है मर जाना नहीं लिखा।

---

(६) नारदजी व्याकुल होकर बद्रिकाश्रम में विष्णु के पास गये वह वहां तप करते थे उन्होंने नारद से समाचार पूछा नारदजी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया कि म्लेच्छों ने महादेवजी का मंदिर तोड़ डाला महादेवजी ज्ञानवापी अर्थात् कुवे में डूब गये अब इस बात को सब विद्वान् जानते हैं कि यह वृत्तान्त जो नारद ने विष्णु को सुनाया औरंगज़ेब के समय में हुआ था जिस औरङ्गज़ेब ने विक्रम के संवत् १७१३ से १७६४ तक राज्य किया था अतएव भागवत को बने केवल १८७ वर्ष हुये।

भागवत के किसी स्कन्ध के किसी अध्याय में भी यह कथा नहीं है और न इस कथा का भागवत में कहीं इशारा है फिर नहीं मालूम किस कारण से यह शङ्का उठाई गई। प्रतीत होता है कि शङ्का करनेवाले ने भागवत को नहीं देखा और लोगों के कथन रूपी कथा को सुनकर शङ्का लिख मारी पाठक इसके ऊपर विचार करें कि ऐसे ऐसे मिथ्या कलङ्क लगाकर पुराणों

को अयोग्य और असत्य बतलाया जाता है। हमारी समझ में तो यह इन लोगों को आग्रह ही हो गया है कि किसी प्रकार पुराणों से तिलाञ्जलि हो जावे तो अच्छा है यह स्वतः चाहे तिलाञ्जलि दे दें किन्तु इन मिथ्या लेखों से विचारवान् मनुष्य तो तिलाञ्जलि नहीं देसकता।

---

(७) अट्ठारह पुराणों में सब ऋषि मुनियों और देवताओं की निन्दा लिखी है और उन पर मिथ्या कलङ्क लगाये गये हैं। यथा ब्रह्माजी को बेटी से व्यभिचार का कलङ्क, कृष्णजी को कुब्जा और राधा से, महादेवजी को ऋषिपत्नी से, इत्यादि, पर बुद्धदेव को कोई दोष नहीं लगाया इससे पुराणों के कर्त्ता बौद्धमत वाले हैं।

इसका विस्तार से उत्तर ईश्वरचरित्रपाद में लिखा जावेगा कुछ सूक्ष्म यहां भी लिखे देते हैं किसी पुराण में यह कथा नहीं आई कि महादेव ने ऋषियों की पत्नियों के साथ व्यभिचार किया हो। राधा का नाम श्रीमद्भागवत के किसी श्लोक में नहीं आया। कुब्जा के साथ कृष्ण का भोग बतलाते हैं परन्तु भगवान कृष्ण जिस समय कुब्जा के यहाँ गये उस समय श्रीकृष्णचन्द्र की आयु ग्यारह वर्ष की थी ग्यारह वर्ष के बच्चे में भोग की शक्ति आजाना नहीं मालूम किस वैद्य, हकीम, या किस डाक्टर ने सिद्ध कर दिया है। ब्रह्मा का सरस्वती के साथ में जो चरित्र पुराण में है उससे अधिक वेद में है। वेद में यह कथा तीन स्थानों में आई है और तीनों स्थानों में सायण भाष्य है। सब को तो हम आगे लिखेंगे और विस्तार से उत्तर भी आगे ही लिखेंगे यहां पर केवल ऋग्वेद का एक मंत्र दिये देते हैं वह यह है-

पिता यत्स्वां दुहितर मधिष्कन्।

पिता ब्रह्मा अपनी लड़की के साथ में भागा। यदि ब्रह्मा के कलङ्क के कारण ही पुराण बौद्धों के बनाये हैं तो इसी नियम से वेद भी बौद्धों के बनाये हुये हैं क्योंकि वेदों में भी ईश्वरावतार और देवों के लिये वेही कथा लिखी गई हैं। पाठक लोग इस पर विचार करें कि जब पुराणों में वे कथा आ जावें तब तो पुराण बौद्धों के बनाये हो जावें और वे ही कथा यदि वेदों में आ जावें तो वेद ईश्वरकृत हो जावें।

---

(८) व्यास के बनाये हुये वेदान्त सूत्र मीमांसा की व्याख्या योगभाष्य जगत्प्रसिद्ध है उनका धर्म भी विद्वानों पर प्रकट है परन्तु यह अट्ठारह पुराण उनसे अत्यन्त विरुद्ध हैं। इनका कोई सिद्धान्त पूर्वोक्त शास्त्रों से नहीं मिलता जिससे अच्छी प्रकार ज्ञान हो जाता है कि यह ग्रंथ उन के बनाये हुये नहीं हैं।

वादी ने विरोध होने का कोई प्रमाण नहीं दिया पुराणों का उत्तरायण मार्ग, दक्षिणायण मार्ग, याम्यागति आदि आदि सवही विषय वेदान्त सूत्र के अनुकूल हैं और पुराणों का याज्ञिक विभाग सोलह आने मीमांसा से मिल कर चलता है वेदान्तसूत्र और योगदर्शन में विग्रहवतीदेवता, मूर्तिपूजा, अवतार, यह सब बातें पुराणों के तुल्य लिखी गई हैं (भुवन ज्ञानं सूर्य्ये संयमात्) इस योगसूत्र पर व्यासभाष्य में चतुर्दश भुवनों का विचार सर्वथा पुराणों के अनुकूल लिखा है "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्" योगसूत्र के व्यासभाष्य में ईश्वर का अवतार लिखा है इत्यादि सैकड़ों बातें पुराणानुकूल योग भाष्यादि में लिखी हैं। वादी का लेख मिथ्या है।

---

(९) देवीभागवत में लिखा है कि आर्यावर्त के एक राजा का लड़का म्लेच्छ वेश्या पर आसक्त होकर धर्म से पतित हो गया। यह प्रत्यक्ष है कि जब मुसलमान नहीं आये थे तब मुसलमान रण्डियाँ भी न थीं तब उन पर कोई आसक्त भी नहीं होता था। इससे निश्चय है कि देवीभागवत मुसलमानों के समय में बनी है व्यासकृत नहीं।

म्लेच्छ शब्द का मुसलमान अर्थ करना भूल है जो अक्षरों का उच्चारण शुद्ध न कर सके उसका नाम म्लेच्छ है देखिये व्याकरण का महाभाष्य— "तेऽसुराहेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुस्तस्माद्ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छो हवाएवयदपशब्दः म्लेच्छामा भूमेत्यध्येयंव्याकरणम्" "विवरणम्—निन्दार्थवाहेन न म्लेच्छतवा इति म्लेच्छनं निषिध्यते तत्रकेचिदाहुः हैहे प्रयोगे हैहयोरिति प्लुतेप्रकृतिभावे च कर्तव्ये तद करणं म्लेच्छनमिति पद द्विर्वचन कार्ये वाक्य द्विर्वचनंलत्वंच म्लेच्छनमित्यपरे नम्लेच्छितवा इत्यस्य पर्यायो नापभाषित वा इति कृत्यार्थे तवेप्रत्ययः म्लेच्छ इति कर्मणिघञ्"। इस महाभाष्य और विवरण से सिद्ध है कि मुसलमान को म्लेच्छ नहीं कहते किन्तु जो शब्द का स्पष्ट उच्चारण न कर सके वह ही म्लेच्छ है।

---

(१०) एक अत्रि स्मृति का श्लोक लिख यह सिद्ध किया है कि मूर्ख लोग भागवत पढ़ा करते हैं। श्लोक यह है—

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥

इस श्लोक के (वेदैर्विहीनाश्च०) में चकार खा गया तथा (कृपिणो०) को कृपणो लिखा ये दो अशुद्धियां बोध न होने से हुई हैं श्लोकमें हमने ठीक कर दीं। वेद के पढ़ने पढ़ानेको सभी सनातनधर्मी सब से उत्तम काम मानते हैं इसी कारण वेदपाठी ब्राह्मणों का विशेष आदर भी करते हैं। यह एक साधारण बात है कि जो जो काम कठिन हैं उन उन को जो जो लोग नहीं कर पाते वा नहीं कर सक्ते वे लोग उन कठिनों से कुछ कम कठिन कामों को करते हैं तथा कोई उन से भी सुगम वा रोचक कामों को करते वा करना चाहते हैं। पठन पाठन के ग्रन्थों में, इतिहास, उपाख्यान, नाविल, उपन्यास वा किस्सा कहानी पढ़ने देखने में अनेक लोगों का चित्त लगता है। तदनुसार वेद का पढ़ना पढ़ाना सब से कठिन है, शास्त्र उनसे कुछ सुगम हैं। पुराण उन शास्त्रों से भी सुगम हैं उनमें उपाख्यान आदि के कारण भी चित्त लगता है। यह एक संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति दिखाई है किन्तु इसमें किसी की निन्दा स्तुति नहीं है। यह भी ठीक है कि जो कुछ भी नहीं पढ़ते वे लोग प्रायः खेती करते हैं परन्तु "भ्रष्टा-स्ततो भागवताभवन्ति" वाक्य का जो अर्थ वादी ने लिखा है कि "सब से पतित भागवत पुराण बांचते हैं" सो यह लिखना प्रत्यक्ष प्रमाण से ही विरुद्ध है क्योंकि भागवत पुराण बांचनेवाले सैकड़ों कहीं कहीं सहस्रों रुपये पुजाते बड़े आनंद में रहते हैं। वे लोग खेती आदि को नीच काम समझ के कदापि करना स्वीकार नहीं करते। यदि वादी न माने तो एक किसी भागवती पंडित और एक किसान को एकत्र करके निश्चय कर लेवे। वास्तव में प्रत्यक्ष प्रमाणानुकूल "भ्रष्टास्ततो भागवताभवन्ति" वाक्य का सत्य सत्य अर्थ यह है कि धर्मशास्त्र बनानेवाले महर्षियों ने अपनी सर्वज्ञता से जान लिया था कि जब भारतवर्ष में किसी वेद मतानुयायी किसी धार्मिक राजा का राज्य न रहेगा तब पाखण्ड बहुत बढ़ेगा। तदनुसार पाखण्ड बढ़ रहा है अनेक पाखण्डी पूजे भी जाते हैं। इसी से अनेक निकम्मे लोग जो मिहनत करके भोजनादि नहीं करना चाहते किन्तु पाखण्ड बना के पुजाना चाहते हैं ऐसे लोग शिर में अन्य जानवरों के बाल जोड़ कर बड़ी बींड़ लपेट कर शरीर में मिट्टी लगा हाथ में चिमटा लेकर कहीं तपस्वियों का भेष बना कर दिखावटी तप करते हुये भगवान् के आश्रय बनने के कारण उनको भागवत कहा गया (भगवत उपासका एव भागवता) वास्तव में ऐसे वैरागी आदि नामों वाले कई निकम्मे मूर्ख ढोंगी पाखंडी खेती आदि से भी भ्रष्ट राम नाम आदि कह कर अपने को भगवद्भक्त जतानेवालों को अत्रि स्मृति में दिखाया है पर यह भी ध्यान रहे कि उन वैरागी आदियों में विना पढ़े वा कुछ पढ़े कोई कोई सच्चे भगवद्भक्त भी होते हैं कि जो काम क्रोध लोभ से बच केवल भगवद्भक्ति में लगे हैं उनकी निन्दा यहां नहीं है।

(११) विलसन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने वर्तमान ब्रह्मपुराण के विषय में लिखा है कि यह पुस्तक तेरहवीं शताब्दी में बना है क्योंकि इसमें जगन्नाथ माहात्म्य और प्रासाद (जगन्नाथ के मंदिर) का वर्णन है। (२) मत्स्योक्त ब्रह्मपुराण में मरीचि श्रोता और ब्रह्मा वक्ता और प्रचलित ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा वक्ता और दक्षादिक मुनिगण श्रोता हैं इस कारण वर्तमान ब्रह्मपुराण मत्स्योक्त ब्रह्मपुराण नहीं है।

पाश्चात्य विद्वानों के इन दो सिद्धान्तों का ठीक विचार करने के समय हम इस फल पर पहुंचते हैं कि निस्सन्देह पाश्चात्य विद्वानों ने ब्रह्मपुराण का विचार करते हुये गलती खाई है। इस पुराण के १७६ अध्याय में अनन्त वासुदेव का माहात्म्य वर्णित है उत्कल के प्रसिद्ध भुवनेश्वर क्षेत्र में अनन्त वासुदेव का मंदिर विद्यमान है उस देश के सामवेदिगण के पद्धतिकार अद्वितीय पंडित भवदेव भट्ट ने इन पूर्व से विद्यमान अनन्त वासुदेव का मंदिर ११ शताब्दी में निर्माण किया था ब्रह्मपुराण में अनन्त वासुदेव की मूर्ति की उत्पत्ति और माहात्म्य वर्णित होने पर मंदिर का कुछ प्रसंग नहीं है यदि उस मंदिर के निर्माण समय माहात्म्य बनता तो मंदिर का भी प्रसंग होता इस प्रमाण से पाश्चात्य पंडितों का मत असंगत प्रतीत होता है। पुरुषोत्तम माहात्म्य में जो प्रासाद का वर्णन है वह वर्तमान प्रासाद नहीं है वहां गांगेय पद है वर्तमान पुरुषोत्तम मंदिर गंगेश्वर चौड़ द्वारा निर्मित हुआ है चौड़गंग १०७७ खृष्टाब्द में कलिंग देश के सिंहासन पर आरूढ़ थे इसके ३०। ३५ वर्ष पीछे उन्होंने उत्कल आक्रमण किया तो ११०७ से १११२ तक पुरुषोत्तम प्रासाद निर्मित हुआ होगा यह चौड़गंग और बल्लालसेन दोनों एक ही समय के हैं। बल्लालसेन ने दानसागर में प्रचलित ब्रह्मपुराण से श्लोक उद्धृत किये हैं अतएव अब यह निश्चय ही हो गया कि वर्तमान प्रासाद से ब्रह्मपुराण बहुत प्रथम का है। सेनराज लक्ष्मण की शिलालिपि में भी पुरुषोत्तम क्षेत्र का उल्लेख है। ईस्वी सप्तम शताब्दी में चीन परिव्राजक हिडयन-सियाने आकर चि, लि, ति, लो, चित्रोत्पल वर्तमानपुरी में आकर पाँच प्रासाद का उच्च चूड़ादर्शन किया था यह भी कोई पुरुषोत्तम प्रासाद होगा इसमें सन्देह ही क्या है यह बात सिद्ध है कि देवपूर्ति क्षेत्र माहात्म्य प्राचीन समय के हैं मंदिर नित नये बनते ही रहते हैं।

---

११ शताब्दी के रचित दानसागरमें तथा उसी समय के हलायुध कृत ब्राह्मण सर्वस्व में और हेमाद्रि परिशेष खण्ड में जो उससे कुछ समय पहले का है ब्रह्मपुराण के श्लोक पाये जाते हैं तब उनका यह कथन कैसे प्रमाण हो सकता है कि १३ शताब्दी में बना है।

देशीय और विदेशीय प्रायः सब पण्डित ही कहते हैं कि इस समय जो विष्णु पुराण प्रचलित है वह ब्रह्म आदि सब पुराणों की अपेक्षा ही प्राचीन है प्रमाण को ब्रह्मपुराण का कृष्णचरित और विष्णुपुराण का कृष्णचरित दोनों का पाठ मिला कर देखो। इसी प्रकार ब्रह्मपुराण का पुरुषोत्तम माहात्म्य और नारदीय महापुराण का पुरुषोत्तम माहात्म्य मिलाकर देखने से ज्ञात होगा कि ब्रह्मपुराण के श्लोक ही अविकल परिवर्धित आकार में विष्णु और नारदपुराण में गृहीत हुये हैं, ऐसे स्थल में ब्रह्म, विष्णु और नारद इन तीन पुराणों में ब्रह्मपुराण को ही आदि और सब से प्राचीन कह कर स्वीकार कर सकते हैं, ब्रह्मपुराण अठारह पुराणों में से सब से पहिला है सो विष्णु पुराण में ही वर्णित है, ब्रह्मपुराण देख कर विष्णुपुराण में कृष्णचरित्र और नारदपुराण में पुरुषोत्तम माहात्म्य वर्णित हुआ है।

नारदपुराण के पूर्वभाग में ब्रह्मपुराण का जो विषयानुक्रम दिया गया है उसके पाठ करने से प्राचीन ब्रह्मपुराण और प्रचलित ब्रह्मपुराण का सादृश्य प्राप्त होता है।

ब्राह्मंपुराणं तत्रादौ सर्वलोक हिताय च ।
व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना ॥
तद्वै सर्व पुराणाग्र्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्रमुच्यते ॥

(तत्पूर्वभागे)

देवानामसुराणाञ्च यत्रोत्पत्तिः प्रकीर्त्तिता ।
प्रजापतीनाञ्च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर ॥
ततो लोकेश्वरस्यात्र सूर्यस्य परमात्मनः ।
वंशानुकीर्तनं ब्रह्मन्महापातकनाशनम् ॥
यत्रावतारः कथितः परमानन्द रूपिणः ।
श्रीमतोरामचन्द्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः ॥
ततश्च सोमवंशस्य कीर्त्तनं यत्र वर्णितम् ।
कृष्णस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम् ॥
द्वीपानां चैव सिन्धूनां वर्षाणां वाप्य शेषतः ।
वर्णनं यत्र पाताल स्वर्गाणाञ्च प्रदृश्यते ॥

नरकानां समाख्यानं सूर्य्यस्तुतिकथानकम् ।
पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ॥
दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम् ।
पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणस्यास्य मानद ॥

(तदुत्तरभागे)

अस्योत्तरविभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम् ।
योगानां च समाख्यानं सांख्यानाञ्चापिवर्णनम् ॥
ब्रह्मवादसमुद्देशः पुराणस्य च शासनम् ।
एतद्ब्रह्मपुराणन्तु भागद्वयसमर्चितम् ॥
वर्णितं सर्वपापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥

नारद पु॰ ४ । २

महात्मा वेदवित् व्यास द्वारा प्रथमतः सर्वलोक के हित के निमित्त (यह) पवित्र पुराण समाख्यात हुआ है। यह सब पुराणों से श्रेष्ठ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अनेक प्रकारके आख्यान और इतिहासयुक्त तथा दशसहस्र श्लोक पूर्ण है। हे मुनीश्वर ! आगे जिसमें देवासुरगण, प्रजापतिगण और दक्षादि की उत्पत्ति हुई है और पश्चात् लोकेश्वर परमात्मा सूर्य्यदेव का महापातकनाशन वंशानुकीर्तन हुआ है। जिसमें परमानन्द रूपी चतुर्व्यूहावतार श्रीमान् रामचन्द्रजी का अवतार कहा है, पश्चात् सोमवंश का कीर्तन और जगदीश्वर श्रीकृष्ण का पापहरचरित्र वर्णित हुआ है, जिसमें सम्पूर्ण प्रकार से समस्त द्वीप, सिन्धु, वर्ष, पाताल और स्वर्ग का वर्णन पाया जाता है, तथा सम्पूर्ण नरकों के नाम, सूर्य्य की स्तुति, पार्वती का जन्म और विवाह कहा गया है। पश्चात् दक्ष का आख्यान और एकाम्रक्षेत्र वर्णित है। हे मानद ! इस पुराण का यह पूर्व भाग वर्णित हुआ। इसके उत्तर भाग में विस्तृत रूप से तीर्थयात्राविधानक्रम में पुरुषोत्तम वर्णना कही है। पश्चात् यमलोक वर्णन, पितृश्राद्धविधि और वर्णकाम धर्म विस्तार से कहे हैं। और विष्णुधर्म, युगाख्यान, प्रलय-वर्णन, ब्रह्मवाद समुद्देश और पुराणशासन कथित हुआ है। यह ब्रह्मपुराण दो भागों में विभक्त, सर्वपापहर और सर्वसौख्यदायक है।

नारदपुराण में ब्रह्मपुराण की जो सूची दी गई है, प्रचलित ब्रह्मपुराण में उसके किसी विषय का भी अभाव नहीं है, ऐसे स्थल में वर्तमान आकार का ब्रह्मपुराण नार-

दीय पुराण सङ्कलित होने से पहिले प्रचलित हुआ था, यह सहज में ही स्वीकार किया जा सकता है।

इस ब्रह्मपुराण के अनेक प्रसङ्ग महाभारत के अनुशासन पर्व में अविकल उद्धृत हुये हैं। इस ब्रह्मपुराण के २२३ से २२५ अध्याय और अनुशासन पर्व के १४३ से १४५ अध्याय के साथ और ब्राह्म के २२६ अध्याय तथा अनुशासन पर्व के १४६ अध्याय में श्लोक श्लोक में अविकल मेल है। इन उद्धृत श्लोकों को देखकर कोई कोई कह सकते हैं कि महाभारत से ही ब्रह्मपुराण में ये श्लोक सन्निवेशित हुये हैं। किन्तु अनुशासनोक्त "इदं चैत्रा परं देवि ब्रह्मण्यं समुदाहृतम्" (१४३।१६)। और "पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः" (१४३।१८)। इत्यादि महाभारतीय श्लोक देखने से ब्रह्म का वचन महाभारत में उद्धृत हुआ है, इस विषय में कुछ सन्देह नहीं रहता। प्रथम सन्देह का निराकरण हो चुका, अब द्वितीय सन्देह पर दृष्टि डालेंगे। मत्स्यपुराण में लिखा है कि—

ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते। ५३।१२

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने मरीचि से यह पुराण कहा था, वही यह ब्राह्म नाम से कीर्तित है इसकी श्लोक संख्या १३००० है।

विलसन साहब मत्स्यपुराण के इस श्लोक को आगे रख कर वर्तमान ब्रह्मपुराण देखने लगे, जब उसका अवलोकन किया तो ब्रह्मपुराण में नीचे लिखा श्लोक मिला—

कथयामि यथा पूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः।
पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः॥ ९१।२२

दक्षादिक मुनियों ने पितामह ब्रह्मा से जो पूछा था वह मैं तुम से कहता हूं। विलसन साहब ने इस श्लोक को पढ़ कर समझा कि यह पुराण तो ब्रह्मा ने दक्षादि मुनियों से कहा है यह वह नहीं है जो ब्रह्मा ने मरीचि से कहा था इस कारण प्रचलित ब्रह्मपुराण मत्स्योक्त ब्रह्मपुराण नहीं है यदि विलसन साहब कुछ और श्लोक देखते तो उनका यह सन्देह अपने आप दूर हो जाता किन्तु उन्होंने इतने पर ही फैसला कर दिया और इसके आगे पुराण का पाठ अवलोकन नहीं किया किन्तु जब हम प्रचलित ब्रह्मपुराण को देखते हैं तो हम को पता लगता है कि यह पुराण जो ब्रह्मा ने सुनाया है इसके

श्रोता मरीचि भी थे और दत्तादि भी थे नीचे लिखा श्लोक देखने पर ये सब पता चल जाता है और विलसन साहब का उठाया हुआ सन्देह भी दूर हो जाता है, देखिये—

"मरीच्याद्यास्तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् ।
इममर्थमृषिवराः पप्रच्छुः पितरं द्विजाः" ॥ २६।३६

उक्त श्लोक से जाना जाता है कि मरीचि आदि ने ब्रह्मा के निकट पुराणाख्यान सुना था। आगे का श्लोक देखने से फिर कुछ इस विषय में सन्देह नहीं रहता—

ब्रह्मोवाच—"शृणुध्वं मुनयः सर्वे यद्वोवक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
पुराणं वेदसंवद्धं भक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्" ॥

वास्तव में प्रचलित ब्राह्मपुराण के २७ अध्याय से शेष पर्य्यन्त ब्रह्मा वक्ता और मरीच्यादि मुनिगण श्रोता हैं इस कारण मत्स्य वर्णित ब्राह्म के साथ प्रचलित ब्रह्मपुराण की सम्पूर्ण ऐक्यता ज्ञात होती है।

पुराणों के ऊपर जो शङ्कायें उठा कर कई एक सज्जन यह सिद्ध करना चाहते हैं कि पुराण नवीन हैं और थोड़े दिन के बने हैं उन समस्त शङ्काओं का उत्तर हमने यहाँ पर दिखला दिया किन्तु जो शङ्का हमारी दृष्टि में नहीं आई या हमारे प्रमाद से रह गई हैं उनमें भी कुछ सार न समझो उनका भी उत्तर दिया जा सकता है और हमारे आगे के लेख में समस्त शङ्काओं का उत्तर हो जावेगा। कई एक सज्जनों की दृष्टि में यह समाया है कि पुराण द्वापर के समय के वेदव्यास के निर्माण किये हुये हैं वेदव्यासजी से पहिले कोई पुराण नहीं था ऐसी समझवाले सज्जनों ने भी भूल अवश्य खाई है। वेदव्यास के समय से ही पुराण नहीं चले किन्तु पुराणों का प्रादुर्भाव वेद के साथ सृष्टि के आरम्भ में हुआ है इस विषय में हम कुछ पुराणों के नाम लेकर पाठकों के आगे रखते हैं कि ये ये पुराण संसार में किस के मुख से आये और उन उन पुराणों के श्रोता कौन कौन थे।

* ब्रह्मपुराण *

मरीच्याद्यास्तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् ।
इममर्थमृषिवराः पप्रच्छुः पितरं द्विजाः ॥

ब्रह्म० पु० अध्या० २६ श्लो० ३६

उक्त श्लोक से जाना जाता है कि मरीचि आदि ने ब्रह्मा के निकट पुराणाख्यान सुना था, आगे का श्लोक देखने से फिर कुछ इस विषय में सन्देह नहीं रहता—

ब्रह्मोवाच—शृणुध्वं मुनयः सर्वे यद्वोवक्ष्यामि साम्प्रतम्।
पुराणं वेदसम्बद्धं भक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥

वास्तव में प्रचलित ब्राह्मपुराण के २७ अध्याय से शेष पर्यन्त ब्रह्मा वक्ता और मरीच्यादि मुनिगण श्रोता हैं।

* पद्मपुराण *

एतदेव च वै ब्रह्मा पाद्मंलोके जगादवै।
सर्वभूताश्रयं तच्च पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥

पद्म० पु० (सृष्टि खण्ड)

इस पुराण को पद्म कल्प में ब्रह्मा ने कहा था इसी कारण इसका नाम पद्म पुराण है।

* शिवपुराण *

तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम्।
ग्रन्थ लक्षप्रमाणं तद्व्यास्तं द्वादशसंहितम् ॥
निर्मितं तच्छिवेनैव तत्रधर्मः प्रतिष्ठितः।
तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नरा ॥

वायु० संहि० अ० १

चतुर्थ शिव पुराण है समस्त अर्थों का देनेवाला है एक लक्ष इसका प्रमाण है द्वादश संहिता हैं यह पुराण शिव निर्मित है इस पुराण में धर्म प्रधान है उस धर्म के उपदेश से मनुष्यों को धार्मिक बनाया है।

* श्रीमद्भागवत *

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम्।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८

श्रीमद्भा० द्वि० स्कं० अ० ९

तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ।
देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनु पृच्छति ॥४२॥
तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ।
प्रोक्तं भगवताप्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥४३॥
नारदप्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ।
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥४४॥
यदुताऽहं त्वया पृष्टो वैशजात्पुरुषादिदम् ।
यथासीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नसः ॥४५॥

श्रीमद्भा० द्वि० स्कं० अ० ९

जब ब्रह्मकल्प का आरम्भ हुआ तब वेद के तुल्य भागवतपुराण को ब्रह्मा से भगवान् विष्णु ने कहा। सूत कहते हैं कि हे शौनक जो प्रश्न तुमने हमसे किया है एक दिन सब लोकों के पितामह अपने पिता ब्रह्मा को प्रसन्न देख यही प्रश्न नारद ने ब्रह्मा से किया था। प्रसन्न हुये ब्रह्मा ने ईश्वर का कहा हुआ भागवतपुराण अपने पुत्र नारद से कहा। हे राजन् सरस्वती के तट पर अमित तेजवाले वेदव्यासजी जिस समय परब्रह्म का ध्यान कर रहे थे उस समय नारद आये और नारद ने यह भागवतपुराण वेदव्यास जी से कहा, तुमने हम से पूछा था कि यह पुराण आदिपुरुष ईश्वर से किस प्रकार प्रकट हुआ, वह मैंने आप से कह दिया अब अन्य समस्त प्रश्नों को सुनिये।

हमने पुष्टि के लिये दो तीन पुराणों का सृष्टि के आरम्भ में प्रकट होना दिखलाया है इसी प्रकार समस्त पुराण सृष्टि के आरम्भ में प्रकट हुये हैं इनके प्रमाणों की ग्रन्थों में कोई कमी नहीं है देखनेवालों को कमी है। जिस प्रकार वेद को सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर प्रकट करता है उसी प्रकार वही ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में पुराणों को प्रकट करता है पुराण वेद की भांति ईश्वर का ज्ञान हैं एक कल्प का ज्ञान नहीं किन्तु कल्प कल्पान्तरों का ज्ञान है। इस समय जो पुराण विद्यमान हैं उन से सिद्ध है कि वर्तमान कल्प "श्वेत वाराहकल्प" है किन्तु पुराणों में ब्राह्मकल्प और पाद्मकल्प आदि आदि समस्त कल्पों की कथा लिखी हैं कल्प के बाद प्रलय होने पर फिर दूसरा कल्प बनता है बने हुये कल्प में प्राचीन कल्प की कथा कहना यह मनुष्य का काम नहीं है यह जगदीश्वर का ही काम है। इत्यादि प्रमाण और युक्ति से निरन्तर सिद्ध है कि पुराण सृष्टि के आरम्भ में प्रकट होते हैं और इनका प्रकट करनेवाला कोई मनुष्य नहीं है किन्तु ईश्वर है।

अब सिद्ध हो गया कि जो लोग पुराणों को नवीन बतलाते थे वे गल्ती पर थे रही बात यह कि पुराण वेदव्यासजी ने बनाये हैं इसका उत्तर यह है।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में चार वेद संसार में आये थे उस समय लेखन प्रणाली नहीं थी वेद सुन सुन कर कंठ किये जाते थे इस कारण वेद का नाम श्रुति पड़ गया। ब्रह्मा के द्वारा जो वेद प्रकट हुये थे वे चार थे। द्वापर में वेदव्यासजी ने उन चार वेदों को विभाजित किया--यजुर्वेद के एकसौएक भाग बनाये, सामवेद के एक सहस्र भाग बनाये, ऋग्वेद के इक्कीस भाग बनाये और अथर्ववेद के नव। ये भाग वेद की शाखा या संहिता के नाम से प्रसिद्ध हैं इन शाखाओं को छोड़ कर इनसे पृथक् एक भी मंत्र वेद का नहीं है। जिस प्रकार व्यासजी ने वेदों की शाखा बना कर लेखन प्रणाली चलाई है इसी प्रकार पुराणों की समझो।

पुराण ब्रह्मा के द्वारा संसार में आये, लेखन प्रणाली न होने के कारण लोगों को इनका स्मरण रखना पड़ता था इसी से पुराणों का नाम स्मृति होगया। द्वापर में वेदव्यास जी ने पुराणों को श्लोकबद्ध बना दिया–उनके विभाग पृथक् पृथक् कर दिये–इस विषय में प्रमाण नीचे देखिये—

पुराणमेकमेवासीदस्मिन्कल्पान्तरे नृप।
त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
स्मृत्वा जगाद च मुनीन्प्रतिदेवश्चतुर्मुखः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
व्यासरूपं विभुं कृत्वा संहरेत्स युगेयुगे ॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन्प्रभाषते ॥
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम्।
तदर्थोत्र चतुर्लक्षसंक्षेपेन निवेशितः ॥
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥

रेवा माहात्म्य १। २३। ३०

हे राजन् कल्पान्तर में पहले एक पुराण था और अर्थ, धर्म, काम का साधक वह

सौ कोटि श्लोकों में विस्तारवाला था। उसको स्मरण करके ब्रह्माजी ने मुनियों के प्रति कथन किया, तब सब शास्त्र और पुराणों की प्रवृत्ति हुई। जब समय पर पुराणों का अग्रहण देख कर कि इतना बड़ा ग्रन्थ सब कैसे ग्रहण कर सकेंगे तब व्यासरूप धारण कर प्रभु प्रत्येक द्वापर युग में उसको संक्षेप करते हैं। प्रति द्वापर युग में वह चार लाख प्रमाण के पुराण करके उनके अठारह भेद करते हैं। देवलोक में अब भी सौ कोटि श्लोकों में इनका विस्तार है सो इसी निमित्त चार लाख श्लोक वाले अठारह पुराण इस समय कहे जाते हैं तथा च रेवाखण्ड से स्पष्ट है कि पुराणों का प्रादुर्भाव ईश्वर से हुआ है—

प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा ।
कलिना ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुम् ॥
व्यासरूपी तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगेयुगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे प्रभुः ॥
तदृष्टा दशधा कृत्वा भूर्लोकेस्मिन्प्रकाश्यते"

सृष्टिखण्ड० अध्याय १

अर्थात् पहले पुराणों से ही सब शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई है, और समयानुसार समस्त पुराण के ग्रहण में असमर्थ देख कर वह व्यासरूपी भगवान्ब्रह्मा युग युग में संग्रह के निमित्त चार लक्ष श्लोक के पुराण प्रत्येक द्वापर युग में करते हैं वह अठारह प्रकार के करके इस भूलोक में प्रकाशित होते हैं।

हमने इस बात का पूर्ण प्रमाण दिया है कि पुराण सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से प्रादुर्भाव होते हैं। और हमने पिछले लेख में यही दिखलाया है कि ब्राह्मपुराण आदि पुराण ब्रह्मा से प्रकट हुये तथा शिवपुराण शंकर महादेव से। ब्रह्मा और शङ्कर ये दोनों ईश्वर के साकार रूप हैं इस विषय में जिसको पुष्टि देखनी हो वह ईश्वर रूप पाद में देखे वहां हम वेद से सिद्ध करेंगे कि ब्रह्मा और शङ्कर दोनों ही ईश्वरावतार हैं यहां पर तो केवल इतना ही दिखलाना है कि पुराण व्यास के समय के ही नहीं हैं किन्तु ब्रह्मा से ही प्रकट हुये हैं यदि हम ऐसा न मानें तो दोष यह आवेगा कि समस्त ही पुराण तो इस वर्तमान श्वेतवाराहकल्प के नहीं हैं किन्तु प्रलय के पहिले जो और कल्प गत हुये हैं उनकी कथाओं का द्वापर में ही कहने का कौन प्रयोजन था। यदि उस ज्ञान की संसार को आवश्यकता थी तो सृष्टि के आरम्भ से थी और यदि नहीं आवश्यकता थी तो फिर द्वापर में भी नहीं थी। (२) यदि सृष्टि के आरम्भ में पुराणज्ञान न होता तो फिर सतयुग और त्रेता के मनुष्य पुराणज्ञान से वंचित ही रह जाते। पुराणज्ञान भी एक

ऐसा ज्ञान है कि जिस ज्ञान के आगे संसार के धार्मिक पुस्तक और आज तक के विज्ञानी तत्ववेत्ता भूगर्भविद्या के पण्डित नीचे को मस्तक करके मौन रह जाते हैं, और अपनी खोज के समस्त अभिमान को त्याग कर पुराणों के बालविद्यार्थी बनते हैं उस विज्ञान में से किञ्चित् मधुविन्दु हम पाठकों के सन्मुख रख कर उनकी एक दृष्टि पुराण विज्ञान पर आकर्षित करते हैं हमको पूर्ण आशा है कि पाठक हमारे लेख के पढ़ने का कष्ट उठावेंगे।

आजकल के साइंसवेत्ता जब पृथ्वी की उत्पत्ति का विवेचन करने लगे तो इस फल पर पहुंचे कि यह पृथ्वी प्रथम अग्नि के गोला रूप में थी फिर धीरे धीरे उसी अग्नि से जल बना और उस जल से यह पृथ्वी बनी। आग के गोला से लेकर पृथ्वी रूप धारण करने तक यदि न्यून से न्यून काल लगा है तो कई करोड़ वर्ष लगे हैं। "सेक्रेट डाक्टरन" नामी पुस्तक जो लन्दन में छपी है उसके द्वितीय भाग में प्रोफेसर लिचाफ साहब लिखते हैं कि जमीन को दो हजार डिगरी गर्मी से दो सौ डिगरी गर्मी तक पहुंचने के वास्ते किसी तरह से ३५ करोड़ वर्ष से कम नहीं हो सकते। इस विषय में एक ही लेख नहीं है किन्तु डाक्टर "हैक्सले" आदि कई एक तत्ववेत्ताओं के लेख हैं जो समस्त लेख लिचाफ साहब के लेख से समीपता रखते हैं। यह ज्ञान किसी भी धर्म के किसी धर्म पुस्तक में नहीं है किन्तु श्रीमद्भागवत में इस प्रकार का लेख है—

"वर्ष पूगसहस्रान्ते तदण्डमुदके शयन्"

देवताओं के सहस्रों वर्ष तक वह अण्ड जल में रहा।

जिसको तत्त्वज्ञाताओं ने परिश्रम से सिद्ध किया है पुराण ने उसको पहिले ही से बतला दिया। साइंसवेत्ताओं ने यह भी सिद्ध किया है कि जब पृथ्वी बन गई तब प्रथम झाड़ी, बेल, वृक्ष उगे पश्चात् पक्षी उपजे इसके पश्चात् पशु और पशुओं के पश्चात् मनुष्य उत्पन्न हुये यह भी लेख किसी धर्मपुस्तक में नहीं मिलता किन्तु पुराण इस विषय के ज्ञान को आरम्भ से ही उपदेश कर रहा है अधः अवलोकन कीजिये—

पञ्चधा वस्थिते सर्गं ध्यायतोप्रति बोधवान्।
वहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ॥१॥
मुख्या नगायतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततः स्वयम्।
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गं यथान्यच्च परं पुनः ॥२॥

तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक्‌ श्रोतोभ्यवर्तत ।
यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तः स्यात्तिर्यच्छ्रोतस्ततः स्मृतः ॥३॥
पश्वादयोऽत्रविख्यातास्तमः प्रायाह्यवेदिनः ।
उत्पथग्राहिणश्चैव ते ज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥४॥
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ।
अन्तःप्रकाशास्ते सर्वे ह्यवृताश्च परस्परम्‌ ॥५॥
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत्‌ ।
ऊर्ध्वस्त्रोतस्तृतीयस्तु सात्विकोर्द्धमवर्तत ॥६॥
ते सुखप्रीतिवहुला वहिरन्तस्त्वनावृताः ।
प्रकाशा वहिरन्तश्च ह्यूर्द्धस्त्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥७॥
तुष्टात्मनस्तुरीयस्तु देवसर्गस्तु संस्मृतः ।
यस्मिन्सर्गे भवप्रीतिर्निष्पन्ना ब्रह्मणस्तथा ॥८॥
ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम्‌ ।
असाधकांस्तु ताञ्ज्ञात्वा मुख्य सर्गादिसम्भवान्‌ ॥९॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्वभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्त्रोतस्तु साधकः ॥१०॥
यस्मादर्वाक्प्रवर्तन्ते ततोऽर्वाक्‌ स्त्रोत सस्तुते ।
ते च प्रकाशवहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ॥११॥
तस्मात्ते दुःखवहुला भूयोभूयश्च कारिणः ।
प्रकाशा वहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्चते ॥१२॥

विष्णुपुराण प्र० अं० श्लोक ६—१७

अर्थ—जब आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इनका सर्ग हो चुका तब ब्रह्मा ने ध्यान करके बाहर भीतर अज्ञानवाले वृक्ष उत्पन्न किये । यह मुख्य सर्ग है इससे कार्य-सिद्धि न देखकर फिर ब्रह्मा ने ध्यान किया । इसके पश्चात्‌ तिर्यक्‌सर्ग पश्वादि उत्पन्न किये ये सब तमप्राय और अज्ञानी थे मार्ग को छोड़ कर चलते थे और बड़े अभिमानी थे । इसको असाधक देख कर ब्रह्मा ने फिर ध्यान किया । ध्यान के पश्चात्‌ सात्विक सर्ग

ऊर्ध्वस्रोत देवताओं को उत्पन्न किया। ये देवता सुख और प्रीति के चाहनेवाले अन्तः-करण में ज्ञान रखनेवाले हुये इनको देखकर ब्रह्मा को कुछ आनन्द हुआ ब्रह्मा की प्रीति संसार रचने में हुई किन्तु सृष्टिसाधन में उपयोगी न हुये। ब्रह्मा ने फिर ध्यान किया पश्चात् अर्वाक्स्रोत मनुष्य उत्पन्न किये। ये मनुष्य ज्ञानवाले थे इनमें रजोगुण की बहुत वृद्धि थी अतएव दुःख के सहनेवाले थे ये सृष्टि के साधक हुये।

अब इस प्रमाण से सिद्ध हो गया कि जो साइंसवेत्ताओं ने बड़े परिश्रम से खोज की थी वह पुराणों ने पहिले ही से लिख रक्खी थी। आज साइंस की खोज से कोई बात छिपी नहीं है। इसने यह भी पता लगा लिया कि पृथ्वी को बने कितने दिन हुये इस विषय में "पापोलर इस्ट्रानोमी" नामक पुस्तक में प्रोफेसर "एस. न्यूकोम्ब साहब" फरमाते हैं कि जब जमीन सर्द होकर नबातात उगाने के योग्य हुई उस समय से अब तक १ करोड़ वर्ष से कम नहीं हुआ। साइंस की खोज से यह भी सिद्ध है कि पृथ्वी इस समय ठीक युवा अवस्था में है। जो खोज साइंस ने की है उस खोज को किसी भी धर्म पुस्तक ने नहीं लिखा किन्तु पुराणों ने इसका भी उपदेश कर दिया कि इस श्वेत वाराह कल्प में पूर्व के कल्पों के अनुसार चौदह मनु होंगे जिनमें से ६ भोग गये और सप्तम वैवस्वत मनु भोग रहा है सात भोगने शेष हैं। पुराणों के इस लेख से साइंस की खोज के वर्षों के समीप ही वर्ष आते हैं और पृथ्वी की अवस्था भी युवा अवस्था के लगभग ही है। पुराणों में ऐसे ऐसे विविध ज्ञान भरे पड़े हैं प्रकरणान्तर के भय से यहां समस्त नहीं दिखलाये गये। किन्तु पुष्टि के लिये दो चार प्रमाण दे दिये हैं मैं इन्हीं को तोषदायक समझता हूं।

अब इसके आगे पुराणों का प्राचीनत्व सिद्ध करके व्यास के समय से पुराणों के माननेवाले लोगों के पक्ष में मिथ्यात्व की सिद्धि दिखलाई जावेगी।

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
श्रूयतां तत्पुरा वृत्तं पुराणे च मयाश्रुतम् ॥१॥
ऋत्विग्भि रुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मयाश्रुतः।
सनत्कुमारो भगवान्पूर्वं कथितवान्कथाम् ॥२॥

वाल० कां० सर्ग ९

अर्थ—दशरथ ने अपने यहां पुत्र के न होने की आशा दिखलाई यह सुन कर सूत राजा से बोला कि सुनिये मैंने पुराणों में यह सुना है ऋत्विकों से उपदेश किया हुआ सनत्कुमार ने कथा को कहा उसमें आपके चार पुत्रों का होना लिखा है।

वाल्मीकि ऋषि त्रेता में हुये हैं और वेदव्यासजी द्वापर में। यदि हम व्यास के समय से पुराणों का होना मान लें तो फिर वाल्मीकि ऋषि के समय में पुराणों का होना और उनकी वनाई हुई रामायण में पुराणों का लेख आना किस प्रकार सिद्ध होगा। महर्षि वाल्मीकि ने जो स्वकीय "वाल्मीकि रामायण" में पुराणों की कथा लिखी हैं इससे पुराणों की प्राचीनता निःसन्देह सिद्ध है। अब आगे और देखिये महर्षि पतञ्जलि व्याकरण का "महाभाष्य" करते हुये पशु पशान्हिक में लिखते हैं कि—

सप्तद्वीपा वसुमती त्रयोलोकाश्चत्वारोवेदाः सांगाः सरहस्या वहुधा भिन्ना एक शतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा वह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यक मित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोग विषय इति।

अर्थ—सप्तद्वीपवाली पृथ्वी तीनोलोक शिक्षा कल्पादि अङ्ग सहित चारो वेद उनके रहस्य एकसौएक शाखा यजुर्वेद की सहस्र शाखा सामवेद की इकीस शाखा ऋग्वेद की नौ शाखा अथर्ववेद की वाकोवाक्यतर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक ये शब्द का विषय हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने भी महाभाष्य में पुराणों का उल्लेख किया है अतएव पुराण प्राचीन हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य के लेख को देखिये—

पुराणंन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

याज्ञ० स्मृति० अ० १ श्लो० ३

अर्थ—पुराण शब्द से अष्टादश पुराण। और न्याय शब्द से वैशेषिक और गौतम सूत्र। मीमांसा से पूर्व मीमांसा कर्मकाण्ड और उत्तर मीमांसा वेदान्त। धर्मशास्त्र से समस्त स्मृतियां। और छहों अङ्गों सहित चारो वेद। ये चौदह विद्या धर्म के स्थान हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्य आज के नहीं हैं वहुत प्राचीन हैं, वेदों के मन्त्रों के द्रष्टा हैं, जब ये महात्मा धर्म के निर्णय में प्रथम संख्या पुराणों को दे रहे हैं तो फिर वेदव्यास के समय ही से पुराण बने इस सिद्धान्त को किस प्रकार मान लें। महर्षि मनु के लेख को भी देखिये—

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्रे धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानमितिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च॥

अर्थ—श्राद्ध में पितरों को स्वाध्याय सुनावे, धर्मशास्त्र सुनावे, आख्यान और इतिहास सुनावे और समस्त पुराण सुनावे।

महर्षि मनु सृष्टि के आरम्भ में हुये हैं उन्होंने भी तो अपने निर्माण किये हुये धर्म शास्त्र मनुस्मृति में पुराणों का पितरों को श्रवण कराना लिखा है यदि सृष्टि के आरम्भ में पुराण नहीं थे तो फिर मनु ने उनका सुनाना कैसे लिख दिया। इसी विषय की पुष्टि में हम छान्दोग्य उपनिषद्ध का एक प्रमाण पाठकों के आगे रखते हैं--

सहोवाचऋग्वेदं भगवोध्येमियजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वण चतुर्थमितिहास पुराण पञ्चमंवेदानांवेदं पित्र्य ꣳ राशिंदैवंनिधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यांꣳसर्पदेवयजनविद्या मेतद्भगवोध्येमि ।

छां० प्र० ७ खण्ड १

नारद बोले ऋग्वेद को स्मरण करता हूं तथा साम, यजु, अथर्ववेद को स्मरण करता हूं (इतिहास पुराणपंचमंवेदानांवेदं) और इतिहास पुराण पांचवां वेद पढ़ा है। (पित्र्यं) श्राद्ध कल्प (राशिं) गणित (दैवम्) उत्पात ज्ञानम् (जिससे देवताओं के किये हुये उत्पात ज्ञान होता है) (निधिं) महाकालादि निधिशास्त्र (वाकोवाक्यं) तर्कशास्त्र (एकायनं) नीतिशास्त्र (देवविद्यां) निरुक्तम् (ब्रह्मविद्यां) ब्रह्म सम्बन्धी उपनिषद्ध विद्या को (भूतविद्यां) भूत तंत्र को (क्षत्रविद्यां) धनुर्वेद को (नक्षत्रविद्यां) ज्योतिष (सर्प देवयजनविद्यां) सर्पविद्या गारुड़ि गन्धयुक्त नृत्य गीतादि वाद्य शिल्प ज्ञान को भी मैं स्मरण करता हूं।

छान्दोग्य उपनिषद्ध जो कि वेद विद्या का पुस्तक है जिसमें उत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान है वह भी तो उपरोक्त लेख में पुराण शब्द को उल्लेख में लाया है। छान्दोग्य उपनिषद्ध के आरम्भिक समय में यदि पुराण नहीं थे तो फिर इसने पुराण शब्द को विद्यावाचक मान कर कहां से लिखा और यदि इसके समय में पुराण अस्तित्त्व रखते थे तो फिर पुराण नवीन कैसे ? अब हम बृहदारण्यक उपनिषद्ध से भी पुराणों की प्राचीनता लिखते हैं—

अरेस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोका सूत्राण्यनु व्याख्यानानि व्याख्यानानीष्ट ꣳ हुतमाशितं पायित गयञ्च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यै वैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।

बृह० अ० ४—११ कं० ब्रा० ५

उस परमेश्वर के निश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण विद्या, उपनिषद्, श्लोकसूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान हैं जिसमें कोई कथाप्रसंग होता है सो इतिहास, १ जिसमें सर्गादि जगत् की पूर्व अवस्था का निरूपण सो पुराण, २ उपासना और आत्मविद्या का प्रतिपादक वाक्य है सो विद्या, ३ उपास्य देव के रहस्य का नाम है उपनिषद्, ४ जो श्लोक नाम से मंत्र कहे जाते हैं वे श्लोक हैं, ५ जो संक्षिप्त अर्थ का प्रतिपादक वाक्य सो सूत्र है, ६ जिस वाक्य में जिसका विस्तार होता है सो व्याख्यान है और जिस वाक्य में व्याख्यान को भी स्पष्ट किया जाय सो अनु व्याख्यान है।

वृहदारण्यक उपनिषद् ने भी तो पुराणों का स्मरण किया है क्या इसके आरम्भ काल में पुराणसत्ता थी यदि नहीं थी तो अभाव में स्मरण कैसे होगया यदि पुराण थे तो फिर ये आधुनिक समय के बने हुये नवीन किस प्रकार हो जावेंगे क्या पुराणों को नवीन कहनेवालों ने उपनिषदों को नहीं देखा था। इस विषय में वेद भगवान का लेख भी देखिये--

सबृहतीं दिशि मनु व्यचलन् तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराश ॐ सीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्य च वैसपुराणस्य गाथानां च नाराश ॐ सीनां च प्रियंधाम भवति य एवं वेद।

अथर्व० का० १५ प्र० ६ अनु० १ मं० १२

वह बड़ी दिशा को गया और उसके पीछे इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसियों का प्यारा घर बनता है।

द्वितीय प्रमाण—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवादिविश्रिता॥

अथर्व० ११–७। १ (२४)

इसका अर्थ यह है कि सब के अन्त में शेष रहनेवाले परमात्मा से ऋक्, साम, छन्द और पुराण—यजु के साथ उत्पन्न हुये हैं।

हमने दो वेद मन्त्र दिये हैं दोनों में ही पुराणों का प्रादुर्भाव लिखा है इससे अधिक पुराणों के अनादि और प्राचीन होने में पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। अतएव पुराण आधुनिक या व्यास के समय के निर्माण किये नहीं हैं किन्तु सृष्टि के आरम्भ में वेदों के साथ में इनका प्रादुर्भाव हुआ है।

इतिश्रीकालूरामरचितपुराणवर्मणिसमयपादःप्रथमः।

श्रीगणेशाय नमः।

* स्वरूपपादः *

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो योगविदः सुमङ्गलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्हणं
तस्मै सुभद्र श्रवसे नमो नमः ॥१॥

पूर्वोक्त वैदिक साहित्य के अवलोकन मात्र से पुराणों की महत्व उत्कृष्टता इस प्रकार उत्तम रीति से अन्तःकरण में स्थायी हो जाती है कि कोटि कोटि खण्डन से भी पुराणों की आस्तिकता में धक्का नहीं पहुंचने देती। वादियों ने अपने अन्तःकरण में इसका पूर्ण अनुभव किया कि अब पुराणों का खण्डन ख पुष्प, और वन्ध्यापुत्र दृष्टवत् ही पुराणों का खण्डन है। अतएव उन महानुभावों ने पुराण नवीन हैं इस सिद्धान्त को छोड़ कर द्वितीय सिद्धान्त उठाया। इनका कथन है कि निःसन्देह स्मृति, दर्शन, वेद, पुराणों के महत्व को कह रहे हैं किन्तु ब्राह्मादि अष्टादश व्यासकृत संहिता पुराण नहीं हैं। वेद के द्वितीय भाग ब्राह्मण ग्रन्थों का ही नाम पुराण है और उन्हीं के महत्व को वेदादि सच्छास्त्र गा रहे हैं। ये सज्जन ब्राह्मणों के पुराण होने में अधःलिखित पुष्टियों को सन्मुख रख कर अपने सिद्धान्त को दृढ़ बनाते हैं।

(१) ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं ये ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि उनके नाम इतिहास पुराण कल्पगाथा और नाराशंसी हैं, (२) ब्राह्मण ग्रन्थ ईश्वरोक्त नहीं हैं किन्तु महर्षि लोगों ने बनाये हैं, (३) वे वेद नहीं हैं क्योंकि ये वेदों का व्याख्यान हैं, (४) एक कात्यायनि ऋषि को छोड़ कर अन्य किसी ऋषि ने इनके वेद होने की साक्षी नहीं दी है, (५) ब्राह्मणों में इतिहास हैं इस कारण भी वे वेद नहीं हो सकते अतएव पुराण हैं।

वादी के इस लेख पर गूढ़ विचार करना और विचार द्वारा फल निकालना यह प्रत्येक वैदिकधर्मी मनुष्य का कर्तव्य है। इस कर्तव्य को आगे रख कर अपनी बुद्धि के अनुसार हम भी कुछ विचार रूप में यहां लिखते हैं आशा है कि जिज्ञासुजन समुदाय इससे यथेच्छ लाभ उठावेगा। प्रथम पुष्टि में वादी ने यह दिखलाया है कि ब्राह्मणों की पुराण की कल्पगाथा नाराशंसी संज्ञा है इस कारण से इनकी वेद संज्ञा नहीं हो सकती। इसकी

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक

पालीवाल गौड़ब्राह्मण-वंश-भूषण, दानशील, धर्ममूर्ति

श्री १०५ सेठ घासीरामजी रईस,

होशंगाबाद (मध्यभारत)।



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

जो लोग रातदिन पुराणों का खंडन करते हैं वे ही अपने व्याख्यानों में पुराणों के इतिहास सुनाते हैं। पुराणों के नष्ट होने पर यह भी पता न लगेगा कि हिन्दू किसकी संतान हैं। पुराणों को पढ़ कर ही मृतक हिन्दूजाति पुनः वीर बन सकती है। जो लोग इस बात को नहीं समझते वे ही पुराणों का खंडन करते हैं।

मरचैंट प्रेस, कानपुर।

पुष्टि में वादी ने प्रमाण कुछ भी नहीं दिया केवल लेख लिख कर आज्ञा मात्र दी है। क्या लेखक यह तो नहीं समझा कि जब एक वस्तु की एक संज्ञा हो गई तो फिर द्वितीय संज्ञा कैसे होगी। यदि यही बात है तब तो निश्चय वादी भूम में पड़ गया। कोई भी संज्ञा अन्य संज्ञा का निषेध नहीं कर सकती। यदि हम निषेध करना मान लें तो क्षति यह होगी कि ब्राह्मणों की पुराण संज्ञा ही कल्प संज्ञा का विरोध कर बैठेगी। यदि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा का विरोध करती है तो इसी नियम के अनुसार प्रथम प्राप्त पुराण संज्ञा किसी प्रकार भी कल्प संज्ञा न होने देगी। दुर्जनतोषन्याय से यदि हम यह भी मान लें कि किसी प्रकार बलात्कार हम कल्प संज्ञा कर ही लेंगे तो फिर पुराण और कल्प ये दोनों संज्ञा तृतीय गाथा संज्ञा का निश्चय निषेध कर देंगी। इसमें कोई भी "ननु" "नच" "किन्तु" "किम्वा" कर नहीं सकता क्योंकि सर्व तन्त्र सिद्धान्त हो गया कि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा की वाधा करती है। सिद्धान्त के विपरीत कदापि हो नहीं सकेगा। यदि हम यह भी मान लें कि पुराण कल्प संज्ञा रहते हुये भी किसी रीति से गाथा संज्ञा कर लेंगे तो फिर पुराण कल्प गाथा ये तीन संज्ञा नाराशंसी संज्ञा न होने देंगी। किन्तु यहां पर इन तीन संज्ञाओं के रहते हुये भी चतुर्थ नाराशंसी संज्ञा हो जाती है। तो फिर हम किस प्रकार मान लें कि पुराण कल्प गाथा नाराशंसी इन चार संज्ञाओं के रहते हुये वेद संज्ञा नहीं हो सकती। वादी ने जो संज्ञा रहते हुये द्वितीय संज्ञा के निषेध का नियम स्थापित किया था वह तो इन्हीं परस्पर चार संज्ञाओं के होने में कपूर की भांति गगनारोहण कर गया फिर इन चार संज्ञाओं के रहते हुये पञ्चम संज्ञा का अवरोध किस नियम से कर सकते हैं। वह नियम वादी के लेख में आया नहीं। अतएव यह सुतरां सिद्ध है कि ब्राह्मणों की पुराण कल्प गाथा नाराशंसी संज्ञा रहते हुये भी वेद संज्ञा अवश्य है।

संज्ञा संज्ञा का वाधा नहीं कर सकती। इस विषय में हम एक उदाहरण व्याकरण का देते हैं। "हरि" इसकी प्रथम शब्द संज्ञा है। शब्द संज्ञा रहने पर भी वैयाकरण मनुष्य इसकी प्रातिपदिक संज्ञा करते हैं। प्रातिपदिक संज्ञा होने में शब्द संज्ञा किञ्चिन्मात्र भी छेड़ नहीं करती। किन्तु द्वितीय संज्ञा को स्वीकार कर लेती है। विद्वान् लोगों को दो संज्ञा होने पर भी तो सन्तोष नहीं होता वे लोग तृतीय "भ" संज्ञा कर बैठते हैं। यहां पर भी शब्द संज्ञा और प्रातिपदिक संज्ञा "भ" संज्ञा से शत्रुता नहीं करती। फिर चतुर्थी के एकवचन में इसी "हरि" की कि जिसकी शब्द संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा, भ संज्ञा, हो चुकी हैं, "घि" संज्ञा करते हैं। यहां पर भी शब्द संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा, भ संज्ञा ने घि संज्ञा का निषेध नहीं किया। फिर हम कैसे मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी, वेद संज्ञा का निषेध कर देंगी।

अब एक लौकिक उदाहरण ले लीजिये। कल्पना कीजिये कि कानपुर में कोई रघुनन्दन शुक्ल नामक व्यक्ति है। वह पाठशाला में संस्कृत पढ़ने लगा परिश्रम के फल से वह कुछ दिन में शास्त्री परीक्षा दे आया और उत्तीर्ण भी हो गया। अब उसकी तीन संज्ञा हो गईं। रघुनन्दन, शुक्ल, शास्त्री, यहां पर रघुनन्दन और शुक्ल इन दो संज्ञाओं ने शास्त्री संज्ञा के आने पर उसकी कुछ भी रोक टोक नहीं की। अब यह सज्जन अंग्रेज़ी भाषा में परिश्रम करने लगा। कुछ दिन के पश्चात् बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। अब यह अपने को रघुनन्दन शुक्ल, शास्त्री, बी. ए. लिखने लगा। रघुनन्दन, शुक्ल, शास्त्री, इन तीन संज्ञाओं ने बी. ए. संज्ञा का कुछ भी विरोध नहीं किया। यही पुरुष राज्याधिकार में प्रवेश कर गया और शनैः शनैः जज हो गया। अब एक संज्ञा और आगई। प्रथम की संज्ञाओं ने जज संज्ञा का विरोध नहीं किया। फिर हम कैसे मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी, संज्ञा ब्राह्मणों की वेद संज्ञा होने में घोर युद्ध मचावेंगी।

अब हम यह सिद्ध करेंगे कि मंत्र भाग में जिस मंत्र की पुराण इतिहास संज्ञा है उसी मंत्र की वेद संज्ञा भी है। मंत्र नीचे देखिये—

यस्या वै मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।
वैन्यो धोक तां कृषिं च सस्यं चा धोक ॥ सोद क्रामत्सा
सुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त एहीति तस्या विरोचनः ।
प्राह्लादिवत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ॥

अ० का० ८ अ० ५ सू० १३

अर्थ—उस गो रूप पृथ्वी का वैवस्वत मनु वत्स (बछड़ा) हुआ, पृथ्वी का पात्र बनाया, वेन के पुत्र महाराज पृथु ने उस गो से कृषि और सस्य (तृण) को दुहा। फिर वह गो रूप पृथ्वी असुरों के पास पहुंची। असुरों ने उसका आह्वान किया। आह्वान के पश्चात् जब वह गो असुरों के पास ठहर गई तब असुरों ने प्रह्लाद के पौत्र विरोचन को वत्स बना कर पृथ्वी पात्र में अपने भोजन को दुहा।

इस मंत्र की पुराण इतिहास संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा सिद्ध है। अतएव इसके वेद होने में कोई भी पुरुष मस्तक नहीं कंपाता। यदि इसी उदाहरण को सन्मुख रख लें तो फिर वह कौन न्याय है जिसका आश्रय लेकर हम यह कहने को उद्यत हों कि ब्राह्मण की वेद संज्ञा नहीं होती। वादी ने किञ्चित् भी विचार नहीं किया। हास्यास्पद लेख लिखने का ही उद्योग किया है। अब हम यह भी सिद्ध करेंगे कि कल्प की वेद

संज्ञा होती है "चत्वारिश्रृङ्गा" इस वेद मंत्र में कल्प की वेद संज्ञा वेद ने ही मानी है और इसके ऊपर यास्क मुनि ने निरुक्त भी किया है। जब कि कल्प की वेद संज्ञा स्वतः प्रमाण भगवान् वेद ही कह रहा है और उसके साक्षी वेदज्ञाता मुनि यास्क हैं फिर हम किसी के कहने से किस प्रकार मान लें कि कल्प संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती। विचारशील सज्जनों की दृष्टि में वादी का भाषण बालभाषण की तुल्यता से अधिक बिन्दु मात्र भी गौरव नहीं रखता। "चत्वारिश्रृङ्गा" यह मन्त्र इसी पाद में निरुक्त के सहित हम आगे लिखेंगे अतएव हमने यहां नहीं लिखा। आगे यह भी दृष्टिगोचर कराने का उद्योग करते हैं कि नाराशंसी की भी वेद संज्ञा होती है। अधःलिखित मन्त्र के अवलोकन मात्र से निरन्तर सिद्ध हो जावेगा--

इदं जना उपश्रुत नराः शंसस्त विष्यते।
षष्टिंसहस्रा नवतिं च कौरम आरु शमेषु दद्महे॥

अथर्व० कां० २०

हे मनुष्यो! इस बात को सुनो, मनुष्य स्तुत किये जाते हैं साठ सहस्र और नब्बे कौरव्य राजा ने दान दिये हैं।

इस मंत्र की नराशंसी संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती। फिर हम किस आधार का अवलम्बन करके कह सकते हैं कि नराशंसी संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती। ब्राह्मणों के वेद न होने में जो प्रथम हेतु लिखा गया था उसका सारांश पाठक अवलोकन कर चुके। अब द्वितीय हेतु पर विचार का आरम्भ करते हैं। द्वितीय हेतु में यह दिखलाया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं हैं किन्तु महर्षि लोगों के बनाये हुये हैं।

वादी के मत में वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक जैसा है। वादी का मन्तव्य है कि अग्नि, वायु, रवि, अङ्गिरा, इन चार ऋषियों के द्वारा वेद संसार में आया अर्थात् ये चार ऋषि समाधि में बैठे और उस समाधि समय में ईश्वर ने अपना अलौकिक वेद ज्ञान इनके अन्तःकरण में प्रकाशित किया उसी को इन्होंने संसार में फैलाया इसी ज्ञान का नाम वेद ज्ञान है। ब्राह्मणों के प्रादुर्होने में वादी का मत है कि अनेक ऋषि समाधिस्थ हुये और उसी समय में परमात्मा ने उनके अन्तःकरण में वेदार्थ ज्ञान प्रकाशित किया उस ज्ञान का नाम ब्राह्मण ग्रन्थ है।

वादी के मत में वेद और ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव में किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं है ऋषि समाधि में एक दशा में बैठे। ज्ञान की उपलब्धि एक ही प्रकार से और एकही

ईश्वर से हुई। फिर हमको यह ज्ञान नहीं होता कि वादी ने वेदों का ईश्वरप्रणीत और ब्राह्मणों को ऋषिप्रणीत किस हेतु से माना। यदि वास्तव में दोनों में ही ज्ञान ईश्वर का है तब तो दोनों में ही ईश्वरज्ञान है। ईश्वरज्ञान रहने पर भी एक ईश्वरप्रणीत और द्वितीय ऋषिप्रणीत लिखना प्रमाद है। अतएव सिद्ध हुआ कि वेद और ब्राह्मण इन दोनों का प्रादुर्भाव वादी के मत में एक जैसा है और ब्राह्मणा को ऋषिप्रणीत लिखना बड़ी भारी भूल है।

इस प्रकार से जो वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव वादी ने माना है वह कल्पित है न कोई अग्नि ऋषि था न कोई वायु ऋषि, न कोई रवि ऋषि था। अङ्गिरा ऋषि अवश्य थे किन्तु उनके द्वारा वेद का प्रादुर्भाव होना यह वैदिक साहित्य में कहीं पर भी सिद्ध नहीं है। अतएव यह समस्त मानसिक कल्पनायें हैं। मानसिक कल्पना रहने पर भी वादी इनको सत्य मानता है और उसके मत में मंत्र और ब्राह्मण दोनों ईश्वरीय ज्ञान हैं फिर ब्राह्मण भाग ऋषिप्रणीत किस प्रकार हुआ इस पर पाठकवर्ग विचार करे।

वैदिक सिद्धान्त में भी मंत्र और ब्राह्मण दोनों का प्रादुर्भाव तुल्य है। शतपथ ने लिखा है कि—

स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदोऽथयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनु व्याख्यानानि।

श० १४ प्र० ब्रा० ४ कं० १०

अर्थ—जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूम्र उठता है और वह धूम्र चारो दिशाओं में फैलता है इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में ईश्वरीय ज्ञान वेद जो कि ईश्वर का श्वास भूत है वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्द श्लोक, सूत्र और व्याख्यान रूप होकर चारो तरफ फैला।

इस वैदिक सिद्धान्त को जब हम आगे रखते हैं तब मंत्र ब्राह्मण, पुराण, आदि समस्त ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव एक जैसा है फिर हम एक को ईश्वरप्रणीत और द्वितीय को ऋषिप्रणीत किस न्याय को आगे रख कर कहने का साहस कर सकते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण ऋषिप्रणीत नहीं हैं किन्तु ईश्वरप्रणीत हैं। अतएव द्वितीय हेतु निःसन्देह सारशन्य व्याधिग्रस्तपुरुष के कथन की तुल्यता को छोड़ कर शेष कुछ भी फलदायक नहीं है।

तृतीय हेतु यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं क्योंकि वे वेद का व्याख्यान हैं अतएव वे पुराण हैं। क्या आनन्द का लेख है अवलोकन मात्र से चित्त आनन्दाब्धि में निमग्न हो जाता है जो पुस्तक जिस विषय का व्याख्यान रखता हो वह पुस्तक उस विषय का तो न रहे किन्तु अन्य विषय का हो जावे यह लेख हमारी बुद्धि में तो समावेश नहीं करता। हमने तो आज तक यही पढ़ा और यही सुना है कि जिस पुस्तक में जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उसी विषय का रहता है। उदाहरण अवलोकन कीजिये। महर्षि पाणिनि ने व्याकरण के नियम रूप सूत्रों का निर्माण करके अष्टाध्यायी रची। उस अष्टाध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पतञ्जलि ने विस्तृत व्याख्यान किया उस विस्तृत व्याख्यान का नाम महाभाष्य है। आज तक भारत के गौरव रखनेवाले महाभाष्य को सभी विद्वान् व्याकरण का सर्वोपरि आदरणीय पुस्तक मानते हैं। फिर वह कौन नियम है जिस नियम से पुस्तक अपने विषय को छोड़ कर अन्य विषय का हो जाता है। यदि पुस्तक का अन्य विषयक होना सिद्ध है तब तो अनर्थ हो जावेगा आगे को इसी नियम के अनुकूल महाभाष्य भी व्याकरण का ग्रन्थ नहीं रहेगा। कल्पना करो किसी मनुष्य ने एक मनुष्य से पूछा कि महाभाष्य किस विषय का पुस्तक है उसने उत्तर दिया कि "महाभाष्य" तो ज्योतिष का ग्रन्थ है। प्रश्नकर्ता ने कहा कि हम तो आज तक व्याकरण का सुनते थे। उत्तरदाता कहेगा कि महाभाष्य व्याकरण का ग्रन्थ नहीं क्योंकि उसमें व्याकरण का व्याख्यान है अतएव वह ज्योतिष का ग्रन्थ है।

द्वितीय उदाहरण देखिये—महर्षि गौतम ने "न्याय दर्शन" का निर्माण किया उस न्याय दर्शन के ऊपर महर्षि वात्स्यायन ने भाष्य किया आज तक सभी विद्वान् वात्स्यायन भाष्य को न्याय का ग्रन्थ बतलाते हैं। तथा न्याय दर्शन के व्याख्यान रूप "रामरुद्री" "दिनकरी" आदि २ बड़े बड़े पुस्तक न्याय के ग्रन्थ कहलाते हैं। किन्तु अब वे न्याय के ग्रन्थ न रहेंगे। कल्पना करो एक मनुष्य ने किसी से पूछा कि "वात्स्यायन भाष्य" और "रामरुद्री" तथा "दिनकरी" किस विषय के ग्रन्थ हैं उत्तर मिला कि वैद्यक के। प्रश्नकर्ता ने कहा कि हम तो आज तक उनको न्याय के पुस्तक ही सुनते आये हैं। उत्तरदाता ने कहा कि यह कहनेवालों की भूल है "वात्स्यायन भाष्य" और "रामरुद्री" तथा "दिनकरी" में न्याय का व्याख्यान है इस कारण वे वैद्यक के ग्रन्थ हैं।

इस सिद्धान्त को आगे रखलें तब तो कुछ का कुछ ही हो जावेगा। वादी का यह हेतु शास्त्रविरुद्ध, बुद्धिविरुद्ध और प्रत्यक्षविरुद्ध है। जब व्याकरण का व्याख्यान रूप महाभाष्य व्याकरण है और न्याय के व्याख्यान रूप "वात्स्यायन भाष्य" तथा "रामरुद्री" "दिनकरी" न्याय के ग्रन्थ हैं तो फिर वेदों के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थ

वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार हो जावेंगे। इसके ऊपर पाठक ही विचार कर लें कि इस तृतीय हेतु में कितना गौरव है।

चतुर्थ हेतु में दिखलाया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि एक कात्यायनि ऋषि को छोड़ कर अन्य किसी ऋषि ने भी उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी अतएव वे पुराण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं इस को एक नहीं समस्त ऋषियों ने माना है। उन समस्त ऋषियों में से कुछ ऋषियों के लेख नीचे लिखे जाते हैं—

* महर्षि जैमिनि *

तच्चोदकेषु मंत्राख्या मीमांसा० अ० २ सू० ३२

शेषे ब्राह्मणशब्दः मीमांसा० अ० २ सू० ३३

ऊपर के सूत्र का अर्थ है कि प्रेरणा लक्षण श्रुति ही मंत्र है। मंत्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है।

कहिये महर्षि जैमिनि ने दो सूत्रों में वेद और ब्राह्मण दोनों को ही वेद माना या नहीं। पहले सूत्र में मंत्रभाग को वेद बतलाया, और दूसरे में शेष वेद को ब्राह्मण शब्द से याद किया। आप कहते थे कि केवल कात्यायन ऋषि ने ही ब्राह्मणों को वेद माना है यदि ऐसा है तो फिर ये दूसरे महर्षि जैमिनि कहां से कूद बैठे जो ब्राह्मणों को वेद कह रहे हैं, और देखिये --

* महर्षि गौतम *

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः

न्याय द० अ० २ आ० १ सू० ५७

अर्थात् (तद प्रामाण्यम्) उस वेद का प्रमाण नहीं हो सक्ता क्योंकि (अनृतव्याघात पुनरुक्तदोषेभ्यः) उसके वाक्यों में असत्, पूर्वापरविरोध, दो वार कहना, इत्यादि दोष हैं। असत्य का उदाहरण यथा "पुत्र कामः पुत्रेष्ट्यायजेत" जिसे पुत्र की इच्छा हो पुत्रेष्टी यज्ञ करे परन्तु कहीं पुत्रेष्टि करने से भी पुत्र नहीं होता। जब कि इस प्रत्यक्ष वाक्य का प्रमाण नहीं तो "अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्ग कामः" स्वर्ग की कामना से

अग्निहोत्र करै। ऐसा जो वेद में अदृष्टार्थ वाक्य है उसको (प्रामाण्यं) सत्यता में कैसे विश्वास होवै। यहां (तद प्रामाण्यम्) इस सूत्र में तत्पद से वेद ही का परामर्श है इस रीति से वेद के अप्रमाण की आशंका करके (अग्निहोत्रं) इस ब्राह्मण वाक्य का अप्रमाण दिखलाते हैं।

यज्ञ का करना ब्राह्मणों में लिखा है। और पुत्रेष्टि करने से पुत्र नहीं होता इस बात को लेकर वेद पर मिथ्या कथन का कलंक लगाया गया है। यदि ब्राह्मणों को वेद न माना जाता तो मिथ्या बोलने का कलंक केवल ब्राह्मणों पर ही लगता क्योंकि मंत्र भाग में कहीं पर भी पुत्रेष्टि आदि यज्ञों की विधि नहीं लिखी। यहां वेद पर कलंक लगाया गया है इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं। महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन से ब्राह्मणों का वेद होना सिद्ध हो गया, अब किञ्चित आगे चलिये—

❋ महर्षि कणाद ❋

दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां, दृष्टाऽभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय।

वैशे० द० अ० १० आ० २ सू० ८

(दृष्टानाम्) [वेद में] देखे हुये (दृष्टप्रयोजनानाम्) जिनका प्रयोजन इस लोक में ही दीखता है, उनका तथा (दृष्टाभावे) जब दृष्ट ऐहिकफल न मिले तब भी (प्रयोगः) अनुष्ठान करना (अभ्युदयाय) पारलौकिक फल के लिये [माननीय] है।

दृष्टफल और अदृष्टफल दोनों का ही विधान ब्राह्मण ग्रन्थों में है और इस सूत्र में दृष्टादृष्ट फल वेद में बतलाया गया है। अब मानना पड़ेगा कि महर्षि कणाद ब्राह्मणों को वेद मानते हैं।

❋ महर्षि वात्स्यायन ❋

वात्स्यायन भाष्यम्—पुत्रकामः पुत्रेष्टया यजेतेति नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृष्यते। दृष्टार्थस्य वाक्यस्य अनृतत्वाद दृष्टार्थमपि वाक्यं अग्निहोत्रं जुहुयात स्वर्गकामः इत्याद्यनृतमिति ज्ञायते।

वेद में लिखा है कि जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करे, परन्तु उक्त यज्ञ करने पर भी बहुत मनुष्यों के पुत्र नहीं होता है। अतः सिद्ध हुआ कि जब प्रत्यक्ष फल में मिथ्यात्व है तो अदृष्ट फल जैसा कि अग्निहोत्र करने से स्वर्ग होता है, यह भी मिथ्या है।

जिस प्रकार न्याय दर्शन के कर्ता महर्षि गौतम ने न्याय सूत्र में ब्राह्मणों को वेद माना है उसी प्रकार न्याय दर्शन के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन ने उसी सूत्र के उपरोक्त भाष्य में ब्राह्मणों को वेद माना है।

❁ महर्षि व्यास ❁

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्   वेदान्त० द० अ० २ पा० १ सू० २७

ब्रह्म जो प्रत्यक्ष व अनुमान का विषय नहीं है। केवल शब्द मूल है अर्थात् शब्द ही प्रमाणक (प्रमाणवान्) है मूलशब्द यहां प्रमाण वाचक है शब्द ही प्रमाण में साध्य होने से श्रुति से ब्रह्म का निरवयव होना, व कारण होना सिद्ध है। जब श्रुति (शब्द प्रमाण से) सिद्ध है तो अन्य प्रत्यक्ष आदि के विरुद्ध होने से उसके कारण व कर्ता होने में शङ्का व दोष आरोपण करना युक्त नहीं है।

ब्रह्मसूत्र के आरम्भ से अन्त तक उपनिषदों की व्याख्या है। यहां पर उपनिषद्‌ जो ब्राह्मणों का भाग है उसको वेद मान कर भगवान् व्यासजी ने इस सूत्र को रचा है। इससे सिद्ध है कि उपनिषद्‌ जो ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग है वह वेद है। वेदान्त के भाष्यकार भगवान् रामानुजाचार्य, भगवान् वल्लभ, प्रभु निम्बार्क, तथा माध्व और जगद्गुरु शंकराचार्य हैं इन सभी आचार्यों ने उपनिषदों को वेद माना है।

अब कौन विवेकी पुरुष कह सकता है कि ब्राह्मण भाग वेद नहीं हैं। और न मानने का कोई यत्न नहीं "मेरे घोड़े के तीन टाँग" इसका कोई उपाय भी नहीं। और देखिये—

❁ महर्षि बौधायन ❁

मंत्रब्राह्मणमित्याहुः   बौधायन० सूत्र

मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं। नहीं मालूम कात्यायनी सूत्र ब्राह्मणों को वेद कहता है उसको क्यों प्रकट किया गया और बौधायन सूत्र क्यों छिपाया गया।

* महर्षि आपस्तम्भ *

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्

मंत्र और ब्राह्मण दोनों का ही नाम वेद है।

ऊपर लिखे थोड़े से ऋषि हमने गिनवा दिये। इतने ही ऋषि ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते किन्तु जितने ऋषि आज तक हुये हैं वे सब ही ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। एक ऋषि का प्रमाण और देकर हम इस लेख को बन्द करेंगे।

❀ महर्षि मनु ❀

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्व्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

मनुजी का कथन है कि वेद में वचन मिलता है कि सूर्य के उदयकाल में हवन करना चाहिये, फिर अनुदयकाल में हवन करना चाहिये, और सूर्य तथा नक्षत्र अदृष्य काल में भी हवन करना चाहिये।

"उदितेजुहोति" "अनुदितेजुहोति"

ये सब श्रुतियां ब्राह्मण भाग की हैं और मनुजी ने इनको वैदिकी श्रुति कहा है, अब पाठक ही बतलावें कि मनु ने ब्राह्मणों को वेद माना या नहीं। क्या आनन्द की बात है कि समस्त ऋषियों ने ब्राह्मणों को जो वेद माना है वह तो तुम मानो मत, किन्तु किसी एक भी ऋषि ने जिन ब्राह्मणों को पुराण नहीं माना वह तुम मान लो। धन्य है इस उपदेश को!

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं इसमें (५) पांचवां कारण यह बतलाया गया है कि ब्राह्मणों में इतिहास है। इस कारण वे वेद नहीं। इसके ऊपर हमारा कथन यह है कि मंत्रभाग में भी इतिहास है। तब तो मंत्रभाग भी इनकी दृष्टि में वद न ठहरेगा। मंत्रभाग का इतिहास देखिये--

संमात पन्त्यभितेः सपत्नीरिव पर्शवः। मूषो न शिश्नाव्यदन्ति
माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी।

ऋग्वेद० अष्टक० १ अ० ७ सू० १०५ मं० ८

त्रितं कूपेऽवहित मेतत्सूक्तं प्रति वभौ तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्र मृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति त्रितस्तीर्ण तमो भेधया बभूवापिवा संख्याना मैवाभि प्रेतं स्यादेकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो वभू वुः ।

यह निरुक्तकार का लेख है अर्थात् मुझ को सौतों की समान चारों ओर से कुएं की ईंटें दुःख देती हैं और जैसे मूसे अन्नलिपित सूत्रों को काटते व खाते हैं तैसे ही हे इन्द्र! तेरी स्तुति करनेवाले मुझको कामनाएं भक्षण कर रही हैं अर्थात् दुःख दे रही हैं। हे पृथ्वी आकाशाभिमानी देवताओ! मेरे इस वचन का प्रयोजन जानो, अर्थात् जिस कारण से मैं रो रहा हूं इस अति भयानक कूप से मेरा उद्धार करो। यह सूक्त कुएं में गिरे हुए त्रित को प्रकाशित हुआ। इस सूक्त में जो वाक्य हैं वह इतिहासमिश्र हैं जैसे "त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत् ऊतये इत्येवमादि" अर्थात् जैसे कुएं में पड़ा हुआ त्रित देवताओं की स्तुतियां करके आह्वान करता हुआ, फिर वह इतिहास ऋग्बद्ध और गाथाबद्ध होता है, उसका नाम त्रित क्यों हुआ बुद्धि करके तीर्णतम अर्थात् अत्यन्त तरनेवाला हुआ। अथवा ये तीन भाई थे—एकत, द्वित, तित्र, तीसरा होने से इसको त्रित कहते हैं।

मंत्रसंहिता का एक इतिहास हमने पाठकों के आगे रख दिया, जो लोग इसके पक्षपाती हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ इस कारण वेद नहीं कि उनमें इतिहास है, अब वे क्या कहते होंगे, क्या इतिहास बीच में पड़ने से पुस्तक वेद नहीं रहता, यदि ऐसा है तब तो मंत्रभाग भी वेद नहीं रहेगा क्योंकि मंत्रभाग में इतिहास विद्यमान है। और उसके ऊपर 'निरुक्त' है, फिर पूर्व न्याय से मंत्रभाग वेद कैसे हो सक्ता है। हमने यहां पर एक इतिहास दिखला दिया है, आगे मंत्रभाग के सैकड़ों इतिहास दिखलावेंगे। और बीच बीच में जहां जिस वैदिक इतिहास की आवश्यकता होगी वहां पर भी दिखलाया जावेगा। यदि इतिहास होने से ब्राह्मण वेद नहीं तो मंत्रभाग भी वेद नहीं। ब्राह्मण-ग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते, पुराण तो ब्रह्मपुराण आदि अठारह ही पुस्तक पुराण रहेंगे। ब्राह्मण पुराण नहीं हैं इसके कारण नीचे दिखलाये जाते हैं देखिये—

(१) किसी भी ब्राह्मण के आरम्भ या अन्त में पुराण शब्द नहीं है और न किसी काण्ड की समाप्ति पर ही पुराण शब्द है। जब उनमें पुराण का प्रयोग ही नहीं फिर उनको पुराण कैसे माना जावे। इसके विरुद्ध अठारह पुराणों के प्रति स्कन्ध पर इति श्रीमहापुराणे लिखा है, आरम्भ में पुराण, अन्त में पुराण प्रत्येक अध्याय में पुराण।

(२) ब्राह्मणों में प्रायः याज्ञिक कर्मों का वर्णन है, और याज्ञिक कर्म वेद का प्रधान अङ्ग है। वेद का प्रधान अङ्ग ब्राह्मणों में वर्णित है, इस कारण ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं।

ब्राह्मणों का सम्बन्ध यज्ञ से है, इसका प्रमाण नीचे देखिये—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥

चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयो दयनीये सप्त हस्तासः सप्तछन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मंत्र ब्राह्मण कल्पै वृषभो रोरवीति । रोरवण मस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुभिः सामभिर्यदेन मृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति । महोदेव इत्येषहि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशे त्येषहि मनुष्याना विशति यजनाय । तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ।

चार वेद चार सींग हैं तीन सवन ही तीन पाद हैं प्रायणीय और उदयणीय ये दो शिर हैं सात छन्द हाथ हैं मंत्र ब्राह्मण कल्प इन तीन से बंधा हुआ शब्द करता हुआ बैल महादेव नाम यज्ञ यजमान के लिये मनुष्यों में प्रवेश करता है ।

ऊपर के मंत्र से और निरुक्त से सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में यज्ञ कर्म का वर्णन है अतएव वे पुराण नहीं किन्तु वेद हैं क्योंकि यज्ञ की विधि वेदों में ही है ।

(३) वैदिक लोगों के यहां श्रौत और स्मार्त दो प्रकार के कर्म होते हैं, जिस में वेद के मंत्र बोले जावें और वेद ही में जिस की विधि मिलै उस कर्म का नाम श्रौतकर्म है, मंत्र "मंत्रसंहिता" से लिये जाते हैं और विधि "ब्राह्मण" तथा "श्रौतसूत्रों" से ली जाती है, ऐसे कर्म का नाम श्रौतकर्म है । श्रौत का अर्थ है, श्रुति नाम वेद का बतलाया कर्म, ब्राह्मणों के बतलाए हुये कर्म का नाम श्रौतकर्म है । इसका अर्थ यह हुआ कि वेद का बतलाया कर्म, जब इनका बतलाया हुआ कर्म वैदिक कर्म कहलाता है, तब ये पुराण नहीं किन्तु वेद हैं ।

(४) जितने ब्राह्मण हैं वे सब किसी न किसी वेद की शाखा के ब्राह्मण हैं । जैसे यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा का ब्राह्मण शतपथ है । जब ये शाखाओं के ब्राह्मण हैं तो वे फिर पुराण कैसे हो जावेंगे तब तो वेद ही रहेंगे ।

(५) ब्राह्मणग्रन्थ ब्राह्मणभाग कहलाते हैं भाग नाम एक हिस्से का है जहां पर हिस्सा अर्थात् जुज़ होता है वहां पर हिस्सेवाला भी होता है । तो वह ग्रन्थ कौन है कि ब्राह्मणग्रन्थ जिसके भाग हैं, ब्राह्मण समुदाय पुराण का भाग नहीं किन्तु वद का भाग है अतएव ये पुराण नहीं हैं ।

(६) जहां जहां पर पुराण का पाठ उद्धृत किया गया है वहां पर 'अमुक पुराण में है' ऐसा लिखा गया है, और जहां पर ब्राह्मणों का पाठ उद्धृत किया गया है वहां श्रुति के नाम से याद किया गया है। यदि ये पुराण होते तो लिखा जाता कि ये शतपथ पुराण का वचन है किन्तु ऐसा कहीं नहीं मिलता, अतएव ये पुराण नहीं।

(७) किसी भी ऋषि ने इनके विषय में पुराण होने की सम्मति नहीं दी अतएव ये पुराण नहीं हैं।

(८) वेद के प्रादुर्भाव के साथ इनका प्रादुर्भाव हुआ है और प्रादुर्भाव विधायक प्रमाणों में ब्राह्मण पृथक्, और पुराण पृथक् हैं। अतएव ये पुराण नहीं हैं जिन प्रमाणों से पुराण पृथक् और वेद पृथक् हैं उनको हम नीचे लिखते हैं--

अथस्वाध्याय मधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरितिहासः पुराणानीत्यमृताहुतिभिर्यदृचोऽधीते पयसः कुल्या अस्य पितॄन् स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या यत्सामानि मध्वः कुल्या यदथर्वांगिरसः सोमस्य कुल्यायद्ब्राह्मणानि कुल्यान् गाथा नाराशंसीरितिहास पुराणानीत्यमृतस्य कुल्याः स यावन्मन्येत तावदधीत्यैतया परिदधाति नमो ब्रह्मणे नमो स्त्वग्नयेनमः पृथिव्यैनम ओषधीभ्यो नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमीति।

आश्वला० सू० अ० ३

आशय यह है कि जो ऋगादि चारो वेदों को और ब्राह्मणादि ग्रन्थों को कल्प गाथादि सहित पढ़ते हैं उनके पितरों का स्वधा से अभिषेक होता है। ऋग्वेद के पढ़ने वाले के पितरों को दूध की कुल्या, यजुर्वेद के पढ़नेवालों के पितरों को घृत की कुल्या, साम के पढ़नेवालों के पितरों को मधु की कुल्या, अथर्वांगिरस के पढ़नेहारे के पितरों को सोम की कुल्या, और ब्राह्मण कल्प नाराशंसी इतिहास पुराण के पाठ करनेवाले के पितरों को अमृत की कुल्या प्राप्त होती है, इस कारण इनका पाठ करना। ईश्वर अग्नि पृथ्वी वाक्पति विष्णुदेव को नमस्कार है।

द्वितीय प्रमाण देखिये--

एवमिमे सर्ववेदा निर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः

सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः स संस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभि पद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येव माचक्षते ।

गोपथपूर्वभागः द्वितीय प्रपाठकः

यदि ब्राह्मण ग्रन्थों ही में इतिहास पुराण का अन्तर्भाव होता तो गोपथ में और "आश्वलायन" में इस प्रकार कल्प ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास पुराणादि पृथक् पृथक् कैसे लिखता इससे भी ब्राह्मण से अतिरिक्त ही पुराण इतिहास जाना जाता है इस कारण जो पुराण को इतिहास का विशेषण कहते हैं सो प्रमादी हैं क्योंकि "सेतिहासाः सपुराणाः" ऐसा पृथक् कहना ही इनमें भेद प्रतीत कराता है। जब इतिहाससहित और पुराणसहित ऐसे दो शब्द कहे तो निःसन्देह यह दोनों पृथक् ही हैं और सूत्रकार ने भी तो अश्वमेध प्रकरण में आठवें दिन इतिहास और नवमे दिन पुराण पाठ लिखा है। अब यह तो निश्चय हो गया कि पुराण इतिहास आदि ब्राह्मणों से अतिरिक्त ही कोई ग्रन्थ हैं, यदि हम ब्राह्मण शब्द से पुराणों का ग्रहण कर लें तो फिर पुराण शब्द से किसका ग्रहण करें इसका कोई उत्तर नहीं। ब्राह्मण और पुराण दोनों पृथक् पृथक् गिनाये हैं इस कारण ब्राह्मण पुराण नहीं हो सकते।

(९) ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराण इन दोनों के विषय में बड़ा अन्तर है महर्षि वात्स्यायन ने "समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः" न्यायदर्शन के इस सूत्र पर भाष्य करते हुये लिखा है, कि "यज्ञो मंत्र ब्राह्मणस्य लोकवृत्त मितिहास पुराणस्य" अर्थात् मंत्र ब्राह्मण का विषय यज्ञ है, और पुराण इतिहास का विषय लोकवृत्त है जो बात महर्षि वात्स्यायन ने लिखी है वास्तव में पुराणों में लोकवृत्त अधिक होता है जो ब्राह्मणों में बिलकुल नहीं है। पुराणों का लक्षण लिखते हुये महर्षि व्यासजी ने वायुपुराण में एक श्लोक लिखा है वह यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

अर्थ—सर्ग (तत्वों की रचना) विसर्ग (प्राणियों की रचना) वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों की कथा, वंशों के चरित्र, (कैरेक्टर) यह पांच बातें जिसमें हों उसको पुराण कहते हैं।

वंश और मन्वन्तर तथा वंशानुचरित जो पुराणों का वर्णनीय विषय है, ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका सर्वथा ही अभाव है, फिर हम उनको पुराण कैसे मानलें। प्रोफेसर

विलसन तथा बेवर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जो पुराणों पर विचार किया है वह पांच लक्षणों को लेकर किया है, जो इसी ग्रन्थ में दिखलाया गया है। जब पुराणों में पांच लक्षण प्रधान हैं और वेही पांच लक्षण ब्राह्मणों में नहीं हैं तो फिर हम ब्राह्मणों को पुराण कैसे मानलें।

कुछ दिन हुये स्वामी दयानंद और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इन दो प्रसिद्ध पुरुषों में वेदों पर विवाद उठा, स्वामी दयानंद कहते थे कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं और राजा साहब कहते थे कि ब्राह्मण वेद हैं। इन दोनों का लेखबद्ध शास्त्रार्थ हुआ, वह लेखबद्ध शास्त्रार्थ विचार के लिये संस्कृत के विद्वान् यूरोप निवासी विद्वन्मण्डलीभूषण काशिक राजकीय पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब के आगे रक्खा गया, टीबो साहब ने अपने फैसले में लिखा है —

वह चिट्ठी यह है :—"The question at issue between Raja Sivaprasad and Dayanand is the authoritativeness of the several parts of what is commonly comprised under the name "Veda." Dayanand Sarasvati rejects the Brahmans and Upnishads (with one exception) and acknowledges the authority of the Sanhitas only. As this procedure is not in agreement with the religious belief of the Hindus of the present day as well as of past ages of which we have records. Dayanand Sarasvati is bound to produce convincing proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are "ईश्वरोक्त" while the Brahmansland Upnishads are nearly "जीवोक्त" but how does he prove this assertion ? (For as it stands it cannot be called anything but a mere assertion). The assertion of Sanhitas being स्वतः प्रमाण while the Brahmans and Upnishads are merely परतः प्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Sarasvati has brought forward up to the present. Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both the स्वतः प्रमाण if one is so ?" or again "why should not both be परतः प्रमाण if one is so ?" And this reasoning could certainly not be employed by any one for proving that other non-vedic books as well are to be considered equal to the Veda; for the Veda alone (including Brahmans and Upnishads) enjoys the privilege of having since immemorial times been acknowledged by Hindus as sacred and revealed books.

With regard to the passage quoted by Dayanand Sarasvati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyak Upnishad) it must be

admitted that the objection of Raja Sivaprasad is well founded; if one part of the passage is authoritative, the other part is so likewise. The assertation whether the whole passage is a वाक्य or a वाक्य समूह is wholly irrelevant to the point at issue

Dayanand Sarasvati has certainly no right to declare the passage from Katyayana according to which the Veda consists of Mantra and Brahmana an interpolation. Acting in this way any body might declare any passage contrary to this preconceived opinions an interpolation.

Dayanand Sarasvati rejects the authority of the Brahmans. How then does he prepare to deal with Brahmana portions of the Taittiria Sanhita, which in character nowise differ from other Barhmans like the Satapatha, Panchavinsa, etc., and on the other hand does he reject all the mantras contained in the Taittiriya Brahmana ?

G. THIBAUT.

इस द्वितीय पाद में उत्तम रीति से स्पष्ट हो गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम पुराण नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थ तो वेद हैं। और पुराण नामक पुस्तक वे हैं कि जिनमें सर्गादि पांच लक्षण हों। सर्गादि पांच लक्षण व्यासकृत ब्राह्मय आदि अष्टादश पुराणों में ही पाये जाते हैं। इस कारण इन्हीं अष्टादश पुस्तकों का नाम पुराण है।

जितनी शङ्का थी उनका उत्तर हमने क्रम से दे दिया अब "ननु" "नच" करनेवाली कोई भी शङ्का नहीं रही अतएव यहां पर ही इस द्वितीय पाद की समाप्ति करते हैं।

इतिश्री कालूरामरचितपुराणवर्मणिस्वरूपपादोद्वितीयः।

श्रीगणेशाय नमः

❀ संख्यापादः ❀

दोर्घोतद्दन्तखण्डः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचण्डः ।
सिन्दूराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः ॥
गण्डस्थानन्तघण्डः स्मरहरतनयः कुण्डलीभूतशुण्डो ।
विघ्नानां कालदण्डः स भवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः ॥१॥

कई एक मनुष्यों का कथन है कि संसार की लायब्रेरियों से पता लगता है कि पुराण अठारह ही नहीं हैं किन्तु चालीस, बयालीस के लगभग हैं ।

उत्तर—(क) पुराणों की संख्या चालीस बयालीस कहना सिद्ध करता है कि इनको यह ज्ञान नहीं है कि कौन कौन ग्रन्थ पुराण हैं। पुराण जितने हैं उनकी संख्या नीचे देखिये—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुड़म् ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम् ॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥

श्रीमद्भा० स्कं० १२ अ० ७ श्लो० २३

(१) ब्रह्म (२) पद्म (३) विष्णु (४) शिव (५) लिंग (६) गरुड़ (७) नारद (८) भागवत (९) अग्नि (१०) स्कन्द (११) भविष्य (१२) ब्रह्मवैवर्त (१३) मारकण्डेय (१४) वामन (१५) वाराह (१६) मत्स्य (१७) कूर्म और (१८) ब्रह्माण्ड ।

ऊपर लिखे हुये श्लोक में पुराणों की संख्या अट्ठारह है इसी प्रकार प्रत्येक पुराण में पुराणों की संख्या लिखी है वह संख्या सर्वत्र ही अट्ठारह है किसी भी पुराण में पुराणों की संख्या अट्ठारह से न्यून या अट्ठारह से अधिक नहीं है फिर नहीं मालूम पुराणों की संख्या चालीस या बयालीस कैसे बतलाई जाती है। हम यही कह सकते हैं कि पुराणों की चालीस या बयालीस संख्या बतलानेवालों ने इस विषय में विचार नहीं किया और उनके मन में जो आता है सन्निपातग्रस्त मनुष्य की भांति कह डालते हैं।

(ख) जिस प्रकार पुराणों की संख्या अट्ठारह है इसी प्रकार उपपुराणों की संख्या भी अट्ठारह है उपपुराण संख्या आगे लिखते हैं।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, जातिभूषण, ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकर

स्वर्गीय श्री १०५ पं० बद्रीलालजी खजाञ्ची, तत्पुत्र श्री १०५ पं० नाथूलालजी खजाञ्ची, आनरेरी मेजिस्ट्रेट, तत्पुत्र चिरंजीव श्री १०५ भगवान वल्लभदासजी

खिलचीपुर स्टेट (सेन्ट्रल इण्डिया)।



पुराण धर्म के लिये सहायता २००)

महाभारत में लिखा है कि—

पुराणं मानवो धर्मः सांगोवेदचिकित्सकः।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः॥

ऋषि, ज्ञानी, तपस्वी, योगियों ने समाधिस्थ होकर जिस पुराणज्ञान की उपलब्धि की है उस ज्ञान में मूर्खों की दलीलें कितना काम कर सकेंगी। चिकित्सा न पढ़ने पर औषधि में दखल देने का कोई स्वत्व नहीं। इसी प्रकार जब तक योगी बन कर परा अपरा विद्या में पारंगत न हो तब तक पुराणों के विषय में दलील उठाने का कोई मनुष्य स्वत्व नहीं रखता।

 मरचेंट प्रेस, कानपुर।

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् ॥१॥
चतुर्थं शिवधर्म्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम् ।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम् ॥२॥
कपिलं वामनं चैव तथैवोशनसेवितम् ।
ब्रह्माण्डं वारुणंचाथ कालिकाह्वयमेव च ॥३॥
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थमंचयम् ।
पाराशरोक्तमपरं मारीचं भास्कराह्वयम् ॥४॥

गरुड़पुराण अ० २२७

(१) आदिपुराण-सनत्कुमार का बनाया (२) नरसिंहपुराण (३) स्कन्दपुराण-कुमार का बनाया (४) शिवधर्मपुराण (५) दुर्वासापुराण (६) नारदपुराण (७) कपिलपुराण (८) वामनपुराण (९) औशनसपुराण (१०) ब्रह्माण्डपुराण (११) कालिकापुराण (१२) वारुणपुराण (१३) माहेश्वरपुराण (१४) साम्बपुराण (१५) सौरपुराण (१६) पाराशरपुराण (१७) मारीचपुराण (१८) भास्करपुराण ये अट्ठारह उपपुराण हैं।

कोई कोई सज्जन कहते हैं कि उपपुराण नामक पुस्तकों की रचना नवीन है किन्तु यह उनका कथन सर्वथा ही मिथ्या है क्योंकि खृष्टीय ११ शताब्दी के शेषभाग में षड्गुरु शिष्य ने अपनी बनाई वेदार्थदीपिका में नृसिंह उपपुराण के श्लोकों को उद्धृत किया है और उससे भी पहिले मुसलमान जाति के पंडित अल्वेरुणी ने नन्दा, आदित्य, सोम, साम्ब और नरसिंह इत्यादि उपपुराणों का उल्लेख किया है तब फिर हम इनको किस न्याय से नवीन कहने का साहस करें। प्रायः इनके निर्माता भी अति प्राचीनकाल के महानुभाव हैं अतएव इनको प्राचीन कहना न्यायसंगत बात है।

इनसे भिन्न अट्ठारह ग्रन्थ औपपुराण संज्ञक हैं उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं वृहच्च यत् ।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च ॥३७॥
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वाशिष्ठं भार्गवं तथा ।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः ॥३८॥

वृहद्धर्मं परानंदं वह्निं पशुपतिं तथा।
हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम् ॥३१॥

वृहद्विवेक अ० ३ श्लो० ३७-३८-३९

(१) सनत्कुमारपुराण (२) वृहन्नारदीयपुराण (३) आदित्यपुराण (४) मानवपुराण (५) नंदिकेश्वरपुराण (६) कौर्मपुराण (७) भागवतपुराण (८) वाशिष्ठपुराण (९) भार्गवपुराण (१०) मुद्गलपुराण (११) कल्किपुराण (१२) देवीपुराण (१३) महाभागवतपुराण (१४) वृहद्धर्मपुराण (१५) परानंदपुराण (१६) पशुपतिपुराण (१७) वह्निपुराण (१८) हरिवंश ये अट्ठारह औपपुराण हैं।

जो लोग पुराण, उपपुराणादि भेद से शून्य हैं वे लोग सभी को पुराण समझ लेते हैं इसी कारण अट्ठारह पुराणों के स्थान में चालीस, बयालीस कहते हैं। शास्त्रकारों ने पुराण का लक्षण और लिखा है और उपपुराण का दूसरा लिखा है इसको लक्षणपाद में कहेंगे यहां पर केवल इतना दिखलाये देते हैं कि पुराण अट्ठारह ही हैं।

❀ भागवत ❀

कोई कोई सज्जन को इसका बड़ा सन्देह है कि अट्ठारह पुराणों में जो भागवत पुराण लिया गया है उस भागवत नाम से श्रीमद्भागवत लें या देवीभागवत लें। इसका उत्तर यह है कि भागवत नाम से पुराणों में देवीभागवत भी लिया जाता है और श्रीमद्भागवत भी लिया जाता है इसका कारण यह है कि पुराणों की गणना में केवल भागवत इतना ही नाम आया है न तो देवीभागवत ही नाम है और न श्रीमद्भागवत ही नाम है जबकि "देवी" और "श्रीमद्" ये दोनों ही अनुबन्ध नहीं लगाये गये तब तो (त्यक्तानुबन्धे सामान्य ग्रहणम्) इसका अर्थ यह है कि अनुबन्ध त्याग देने से समस्त का ग्रहण होना है। पुराण संख्या गिनवाते हुए "देवी" और "श्रीमद्" ये दोनों अनुबन्ध त्याग कर केवल भागवत नाम का ग्रहण हुआ है इस कारण देवीभागवत और श्रीमद्भागवत दोनों का ही ग्रहण होगा और दोनों ही पुराण हैं, इसका प्रमाण अब आगे लिखेंगे पहिले इतना कह देना है कि देवीभागवत पुराण है या श्रीमद्भागवत पुराण है इसमें कल्पभेद भी है। श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव पाद्मकल्प और ब्राह्मकल्प में हुआ है और देवीभागवत का प्रादुर्भाव सारस्वतकल्प में हुआ है। इन दो पुराणों में से जब एक हो का प्रादुर्भाव हुआ था तब वही पुराण था।

कोई कोई यह कहता है कि श्रीमद्भागवत न तो पुराण है और न प्राचीन ग्रन्थ है किन्तु वोपदेव निर्मित एक नवीन ग्रन्थ है व्यासजी इसके निर्माता नहीं। किन्तु पुराणों के देखने से यह कथन निर्मूल हो जाता है पुराणों ने श्रीमद्भागवत को पुराण माना है और व्यासकृत माना है देखिये—

पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ।
यत्र प्रतिपदं कृष्णो गीयते बहुधर्षिभिः ॥३॥
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कृष्णेन भाषितम् ।
परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥१५॥

पद्मपुराण उत्तरखण्ड १८९ अ०

अर्थ—सब पुराणों में श्रीमद्भागवत ही श्रेष्ठ है जिस ग्रन्थ के प्रति पद में ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से कृष्णमाहात्म्य कीर्तित हुआ है। कलिकाल में कृष्णद्वैपायन भाषित यह भागवत शास्त्र है। यह शास्त्र शुकदेव ने परीक्षित को कहा है।

और भी प्रमाण देखिये—

मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम् ।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम् ।
सुरपादपरूपोयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः ॥
भगवानेव विप्रेन्द्र विश्वरूपीक्षमीरितः ।
तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः ॥
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ।
परीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ॥
परीक्षिच्छुकसम्वादे सृतिद्वय निरूपणम् ।
ब्रह्मनारदसम्वादेऽवतारचरितामृतम् ॥
पुराणलक्षणञ्चैव सृष्टिकारणसम्भवः ।
द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ॥

चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य संगमः ।
सृष्टिप्रकरणं पश्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
कापिलं सांख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ।
सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ॥
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनवर्हिषः ।
इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तम ॥
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम् ।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ॥
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमो मतः ।
अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ॥
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम् ।
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे ॥
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् ।
सप्तमो गदितो वत्स वासना कर्मकीर्त्तने ॥
गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ।
समुद्रमथनं चैव वलिवैभववन्धनम् ॥
मत्स्यावतारचरितं अष्टमोऽयं प्रकीर्तितः ।
सूर्य्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ॥
वंशानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ।
कृष्णस्य वालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः ॥
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः ।
भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ॥
नारदेन तु सम्वादो वसुदेवस्य कीर्त्तितः ।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥

यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः ।
भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ॥
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम् ।
सौरीविभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम् ॥
पुराणसंख्याकथन माश्रये द्वादशो ह्ययम् ।
इत्येव कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ॥

नारदपुराण ।

हे मरीचे ! सुनो, मैं तुम्हारे निकट वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत नामक ब्रह्म सम्मित पुराण कहता हूं यह अट्ठारह सहस्र श्लोकों में पूर्ण और पापनाशक है। यह बारह स्कन्ध युक्त और कल्पवृक्ष स्वरूप है। हे विप्रेन्द्र इस पुराण में विश्वरूपी भगवान् का ही कीर्तन किया गया है। उसके प्रथम स्कन्ध में सूत और ऋषियों का समागम। पुण्यजनक व्यास और पाण्डवों का चरित तथा परीक्षित का उपाख्यान। परीक्षित और शुक सम्वाद, स्रुतिद्वय निरूपण ब्रह्म और नारद सम्वाद में अवतार चरित, पुराण लक्षण और सृष्टिकारण सम्भव यह संपूर्ण व्यास द्वारा दूसरे स्कन्ध में कहे हैं। विदुरचरित और विदुर का मैत्रेय के साथ समागम तत्पश्चात् परमात्मा ब्रह्म का सृष्टि प्रकरण और कपिल का सांख्य योग कीर्तित हुआ है। प्रथम सतीचरित पश्चात् ध्रुवचरित और पृथु का तथा प्राचीन बर्हि का पुण्याख्यान, चौथे स्कन्ध में यह चार बातें कही गई हैं। प्रियव्रत और तद्वंशोत्पन्न दूसरों का पुण्यप्रद चरित ब्रह्माण्डान्तर्गत लोकों का वर्णन और नरकस्थिति आदि पांचवें में वर्णित हुये हैं। अजामिलचरित, दक्षसृष्टि निरूपण, वृत्राख्यान और पुण्यप्रद मरुद्गणों का जन्म, छठे स्कन्ध में कीर्तित हुआ है। सप्तमस्कन्ध में पुण्यमय प्रह्लादचरित और वर्णाश्रम निरूपित हुए हैं। गजेन्द्र का मोक्षणाख्यान, मन्वन्तर निरूपण, समुद्रमंथन, बलिबंधन, मत्स्यावतार चरित आदि सम्पूर्ण कथा अष्टम में कही हैं। नवमस्कन्ध में सूर्य वंशाख्यान और सोमवंशनिरूपण और वंशानुचरित आदि कहे गये हैं। कृष्ण का बाल्य और कौमारचरित, ब्रज में स्थिति, कैशोर में मथुरावास, यौवन में द्वारकावास और भूभारहरण यह सब विषय दशम में वर्णित हुये हैं। वसुदेव नारद संवाद, दत्तात्रेय के साथ यदु का और उद्धव के साथ श्रीकृष्ण का सम्वाद तथा यदुगणों का परस्पर विनाश एकादश में कीर्तित हुये हैं। भविष्य काल निर्देश, राजा परीक्षित को मोक्ष, वेद शाखा प्रणयन, मार्कण्डेय की तपस्या, गौरी और सात्वती विभूति तथा पुराण

संख्या कथन बारहें स्कंध में कहे गये हैं। हे वत्स! यह द्वादश स्कन्धात्मक श्रीमद्भागवत तुम्हारे निकट कही।

और भी प्रमाण देखिये---

पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम्।
अष्टादशसहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संस्कृताः॥
स्कन्धा द्वादश एवात्र कृष्णेन विहिताशुभाः।
त्रिशतं पूर्णमध्याया अष्टादशयुता स्मृताः॥ १२॥

देवीभागवत् अ० २

यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण सर्वोत्तम और पुण्यप्रद है यह अष्टादशसहस्र संख्यक विशुद्धश्लोकमालासंवलित ३१८ अध्याय पूर्ण और मंगलमय १२ स्कंधयुक्त है।

पुराणों में ऐसे ऐसे सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं जो श्रीमद्भागवत को पुराण सिद्ध करते हैं फिर हम किस प्रकार से मान लें कि श्रीमद्भागवत पुराण नहीं है, व्यासकृत नहीं है, प्राचीन नहीं है। कुमारिलभट्ट जगद्गुरु शंकराचार्य से कुछ दिन पहिले हुए हैं और वोपदेव शंकराचार्य के बहुत दिन बाद हुए हैं। कुमारिलभट्ट ने अपने बनाये "तंत्रवार्तिक" नामक पुस्तक में श्रीमद्भागवत के ऊपर की हुई बौद्धों की शंकाओं का उत्तर लिखा है। सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवत कुमारिलभट्ट के समय में भी था और उससे पहिले श्रीमद्भागवत के होने में पुराण ही प्रमाण हैं अब हम कैसे कहें कि श्रीमद्भागवत नवीन है और वोपदेव कृत है। श्रीमद्भागवत को नवीन वही कहेंगे कि जिन्होंने संस्कृतसाहित्य नहीं देखा या जिन्होंने इस के नवीन सिद्ध करने में पान का बीड़ा चबा लिया है।

कई एक सज्जनों का कथन है कि श्रीमद्भागवत तो पुराण है किन्तु देवीभागवत पुराण नहीं है अब इसका विवेचन करते हुये नीचे के लेखों को दिखलाने का उद्योग करते हैं---

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते॥
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः।

तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ॥
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।

मत्स्यपुराण ।

जिस ग्रन्थ में गायत्री का अवलम्बन पूर्वक विस्तार से धर्मतत्व वर्णित हुआ है, और जो वृत्रासुरवध वृत्तान्तपूर्ण है वही भागवत नाम से प्रसिद्ध है । सारस्वत कल्प में जिन समस्त मनुष्य देवताओं की कथा है उस बृत्तान्त से युक्त ग्रन्थ ही मनुष्य समाज में भागवत नाम से विख्यात है । इसकी श्लोक संख्या १८००० है ।

स्पष्ट सिद्ध है कि सारस्वतकल्प की कथा देवीभागवत में ही है और श्रीमद्भागवत में नहीं अतएव देवीभागवत पुराण है । इन श्लोकों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि देवीभागवत के पुराण होने में कोई सन्देह नहीं ।

और भी प्रमाण देखिये—

भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते ।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं नतु देवीपुराणकम् ॥

शिवपुराण उत्तरखण्ड ।

जिस ग्रन्थ में भगवती दुर्गा का चरित वर्णित है वही देवीभागवत नाम से प्रसिद्ध है परन्तु देवीपुराण पुराण नहीं है ।

और भी प्रमाण देखिये—

यदिदं कालिकाख्यं तन्मूलं भागवतं स्मृतम् ।

शैव नीलकण्ठधृत कालिकापुराण का हेमाद्रि प्रस्ताव ।

कालिका नामक जो उपपुराण है उसका मूल भागवत है । कालिका उपपुराण देवीभागवत से बना है ।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से देवी भागवत का पुराण होना सिद्ध है अब मानना पड़ेगा कि देवी भागवत भी पुराण है और श्रीमद्भागवत भी पुराण है इन दोनों में से कोई भी उपपुराण नहीं है दोनों ही पुराण हैं ।

शंका केवल इतनी रह गई कि पुराण उन्नीस हो गये इसके ऊपर उत्तर ये है कि जब आप श्रीमद्भागवत एक, देवीभागवत एक ऐसे गिनोगे तो उन्नीस हो ही जांयगे किन्तु पुराणों में श्रीमद्भागवत एक और देवीभागवत एक न गिन कर भागवत एक

देसे गिना है उसी तरह से गिनने पर अट्ठारह ही रहते हैं। आप लोग अपनी नई गणना उठाकर क्यों गिनते हैं? जिस प्रकार पुराणों ने पुराणों की गणना लिख कर अट्ठारह सिद्ध किये हैं उसी गणना से आप चलिये। पुराणों ने जो प्रत्येक पुराण का नाम लिखा है वह व्यक्तिवाचक है किन्तु भागवत जो शब्द लिखा है वह जातिवाचक है भागवत शब्द से दोनों ही आ गये दोनों को एक ही गिना तब तो अट्ठारह ही हुये॥ तुम अपनी नई गणना से उन्नीस बतलाते हो इससे तुम इतना ही तो कहोगे कि पुराणों का अट्ठारह बतलाना मिथ्या है। पुराण तो उन्नीस हैं इसके ऊपर हम भी यह कहेंगे कि जिस गणना से पुराणों ने पुराणों को अट्ठारह लिखा है उस गणना से तो वे अट्ठारह ही हैं तुम्हारी गणना से यदि वे बाईस बन जावें तो हमें कोई प्रयोजन नहीं। पुराणों ने भागवत इस गणना में देवीभागवत और श्रीमद्भागवत इन दोनों को एक पुराण गिन कर अट्ठारह किये हैं इस प्रकार गिनने से न उन्नीस हो सकते हैं और न सत्रह हो सकते हैं अतएव पुराण अट्ठारह हैं। भागवत नाम का एक तीसरा भी ग्रन्थ है उसकी गणना औपपुराणों में है। देवीभागवत तथा श्रीमद्भागवत दोनों ही अपने स्वरूप में स्थित हैं इनमें न्यूनाधिकता नहीं हुई।

---

* शिवपुराण *

और और पुराणों में शिवपुराण को गणना में लिया है किन्तु देवीभागवत, कूर्म और अग्निपुराण में वायुपुराण का नाम आया है। किसी पुराण में शिव और किसी पुराण में वायु इस प्रकार की गणना से अट्ठारह नहीं रहते किन्तु १९ हो जाते हैं इस शंका को लेकर बहुत से लोग उछला कूदा करते हैं और पुराणों की संख्या अठारह को मिथ्या सिद्ध करने का उद्योग करते हैं इसके ऊपर जो कुछ शास्त्रीयविचार है उसको हम नीचे लिखते हैं देखने की कृपा करें --

श्वेतकल्पप्रसंगेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्।
यत्र तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम्॥
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते।

मत्स्यपुराण ५३। १८

जिसमें श्वेतकल्प प्रसंग में वायु ने धर्मकथा और रुद्रमाहात्म्य वर्णन किया है वही वायुपुराण है इसकी श्लोक संख्या २४००८ है।

मत्स्यपुराण के इन श्लोकों से यह सिद्ध हुआ कि शंकर का माहात्म्य जिस पुराण में है ऐसा शिवपुराण वायु ऋषि ने कहा है इससे इसका नाम वायवीय या वायुपुराण भी है। यदि कोई यह कहे कि नहीं वायुपुराण इस शिवपुराण से भिन्न अलग एक स्वतंत्र पुस्तक है वही वायुपुराण देवीभागवत, कूर्म और अग्निके मत से पुराण है। इसका उत्तर यह है कि मत्स्यपुराण में जो वायवीय पुराण का लक्षण बतलाया है कि श्वेतकल्प प्रसंग और रुद्रमाहात्म्य वर्णित है यह कथा शिवपुराण में वायुसंहिता में ही वर्णित है अतएव हम शिवपुराण को ही अट्ठारह पुराणों के अन्तर्गत कह सकते हैं और इसी के दूसरे नाम वायवीय या वायुपुराण हैं जिसका वायुपुराण नाम रख कर देवीभागवत, कूर्म और अग्निपुराण ने अट्ठारह पुराणों में गिनाया है वही यह शिवपुराण है। जो शिवपुराण वर्तमान समय में उपलब्ध होता है उसकी श्लोक संख्या १८००० है किन्तु और और पुराणों में शिवपुराणकी संख्या २४००० बतलाई गई है इसका उत्तर यह है कि उपलब्ध शिवपुराण की वायुसंहिता में शिवपुराण की जितनी संहितायें लिखी हैं वे समस्त उपलब्ध नहीं होतीं यदि समस्त मिल जावें तो सम्भव है कि २४००० संख्या पूरी हो जावे या इससे अधिक हो जावे। और बारह संहितायुक्त शिवपुराण की श्लोक संख्या जो एकलक्ष कही है इससे यह सिद्ध है कि शिवपुराण के आरम्भकाल में इसकी संख्या एकलक्ष थी किन्तु श्लोकबद्ध और क्रमबद्ध करने के समयमें शिवपुराण की संख्या एकलक्ष के स्थान में २४००० चौवीस सहस्र रह गई।

❋ ब्राह्मय ❋

कई एक सज्जन ब्राह्मयपुराण की श्लोक संख्या में भी अन्तर बतलाते हैं इनका कथन है कि ब्राह्मयपुराण की संख्या किसी पुराण में १० सहस्र लिखी है और किसी पुराण में १३ सहस्र लिखी है। इसका उत्तर यह है कि जिस समय यह पुराण ब्रह्मा ने मरीचि, दक्षादि ऋषियों को सुनाया था उस समय इसकी संख्या १३ सहस्र थी और जिस समय इसको व्यासजी ने श्लोकबद्ध और पुस्तकबद्ध बनाया उस समय इसकी संख्या १० सहस्र होगई—

ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते॥

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने मरीचि से यह पुराण कहा था वही यह ब्राह्मय नाम से कीर्तित है इसकी श्लोक संख्या १३००० है। जब ब्रह्मा ने मरीचि से कहा था तब १३ सहस्र

था इसका प्रमाण तो हम ऊपर दे चुके। व्यास के श्लोकवद्ध में यह १० हजार रहा इसको नीचे पढ़िये--

चतुर्दशसहस्रं च मात्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम् ।
तथा ग्रहसहस्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम् ॥
चतुर्दशसहस्राणि तथा पंचशतानि च ।
भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥
अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल ।
तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्राह्मसंज्ञकम् ॥
द्वादशैवसहस्राणि ब्रह्माण्डं च शताधिकम् ।
तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च ।
चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक ॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम् ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम् ॥
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञकम् ।
पंचविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम् ॥
पंचपंचाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम् ।
एकादशसहस्राणि लिंगाख्यं चातिविस्तृतम् ॥
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम् ।
सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम् ॥
एकाशीतिसहस्राणि स्कंदाख्यं परमाद्भुतम् ।
पुराणाख्या च संख्या च विस्तरेण मयानघाः ॥

देवीभागवत स्कं० १ अ० ३

इन श्लोकों में ब्राह्मपुराण की संख्या अयुत अर्थात् १०००० कही है यह संख्या उस समय की है जब कि व्यास ने पुराणों को श्रृंखलाबद्ध, संहिताबद्ध, श्लोकबद्ध किया था। उपलब्ध ब्राह्मपुराण में श्लोक संख्या दससहस्रसातसौ है इसमें सातसौ श्लोक क्षेपक हैं।

पाद्म

एतदेव यदा पद्मं ह्यभूद्धैरण्मयं जगत् ।
तद्वृत्तान्तादयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह पठ्यते ॥

इस पद्म की श्लोक संख्या ५५००० है इसमें हिरण्मय पद्म में जगदुत्पत्ति वर्णित है इस कारण इस पुराण को पण्डित लोग "पाद्म" कहते हैं। उपलब्ध पद्मपुराण में श्लोक संख्या पचपनसहस्र से कुछ अधिक बैठती है।

विष्णु

वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
यत्प्राह धर्म्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ॥

मत्स्यपुराण ।

वराह कल्प के वृत्तान्त को लक्ष्य कर जो वैष्णव धर्मों को महर्षि पराशर ने कहा है उसका नाम "विष्णुपुराण" है। इसकी श्लोक संख्या विद्वानों ने २३००० कही है।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत् ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं सर्वपातकनाशनम् ॥

नारदपुराण ।

हे वत्स ! श्रवण करो, मैं तुम्हारे निकट यह सर्वपापहर तेईससहस्र श्लोकपूर्ण वैष्णव महापुराण कीर्तन करता हूं। डाक्टर विलसन साहब को विष्णुपुराण में कुल सात सहस्र श्लोक मिले हैं। इस गणना में डाक्टर साहब एक गलती खा गये हैं वह यह है कि विष्णुधर्मोत्तर को विष्णुपुराण की गणना में नहीं लिया नारदीयपुराण के वचनानुसार अथवा मुसलमानों के विद्वान् अलबेरूणी का लेख पढ़ने से यह ज्ञान हो जाता है कि विष्णुधर्मोत्तर विष्णुपुराण के अन्तर्गत तेईससहस्र श्लोक संख्या में शामिल हैं। विष्णुधर्मोत्तर विष्णुपुराण का उत्तरभाग है, प्रचलित विष्णुपुराण और विष्णधर्मोत्तर

इन दोनों की श्लोक संख्या लगभग सोलहहजार के है। इतने पर भी सातसहस्र की न्यूनता है। सातहजार श्लोक कहां गये इसको हम नहीं जान सकते तथापि इतना तो कह सकते हैं कि प्रचलित विष्णुधर्मोत्तर जो मुद्रित हुआ है वह पूर्ण नहीं है अधूरा ही मिला है, नारदीय पुराण में जितने लक्षण लिखे गये हैं वे समस्त लक्षण विष्णुधर्मोत्तर में नहीं हैं अर्थात् बहुत से लक्षण उसमें विद्यमान् हैं और बहुतों का अभाव है। जिस विष्णुधर्म का ज्योतिषांश लेकर ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मसिद्धान्त रचना की, नारदपुराण में उसका परिचय होने पर भी प्रचलित धर्मोत्तर में उसके अधिकांश का अभाव है किन्तु काश्मीर से प्राप्त विष्णुधर्मोत्तर में इसका अधिक परिचय पाया जाता है।

पुराणों में बौद्ध, जैन और भविष्य राजवंश वर्णन होने से उनकी पश्चात् समय की रचना पुराण ग्रन्थ है ऐसा न जानना चाहिये किन्तु व्यासजी त्रिकालज्ञ थे समाधि में स्थित होकर यदि कहीं कहीं भविष्य राजवंशों का संकेत और विधर्मीजनों का निरूपण तथा अन्य जैन, बौद्धों का निरूप भूतकाल के शब्दों में अपनी योगशक्ति से किया हो तो इसमें आश्चर्य नहीं मानना। इस विषय में संस्कृतसाहित्य का यह सिद्धान्त है-

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति ॥

साधारण सज्जनों की वाणी इतिहास के पीछे जाती है और प्राचीनकाल के जो ऋषि हैं उन ऋषियों की वाणी के पीछे पीछे इतिहास दौड़ता है।

❋ नारद ❋

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम्।
पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहत्कल्पकथाश्रयम् ॥

हे विप्र! सुनो, तुम्हारे निकट नारदीयपुराण कहता हूं, यह पुराण पचीससहस्र श्लोकों में पूर्ण और बृहत्कल्प की कथायुक्त है। विलसन साहब ने नारदपुराण के केवल ३००० हजार श्लोक पाये थे, किन्तु आजकल जो पुस्तक है उसमें अनुमानन २२००० श्लोक हैं। सम्भव है कि मुद्रित होने के समय इतने ही श्लोक मिले हों, और किसी स्थान में हस्तलिखित पूर्ण पुस्तक भी रक्खी हो।

मार्कण्डेय

यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्म्मान् धर्मविचारणा ।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्म्मचारिभिः ॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥

मत्स्यपुराण ।

जो ग्रन्थ धर्माधर्म विचारज्ञ पक्षियों के प्रसंग में आरंभ होकर धार्मिक मुनिगण द्वारा कहा गया है और सब विषय मुनि प्रश्नानुसार में मार्कण्डेय द्वारा कहे गये हैं, वही ९००० ग्रन्थ युक्त मार्कण्डेयपुराण है ।

इस समय जो मार्कण्डेयपुराण उपलब्ध होता है उसकी श्लोक संख्या ६९०० है । नारदपुराण के विषयानुक्रम से जाना जाता है कि नरिष्यन्तचरित के पीछे इक्ष्वाकुचरित, तुलसीचरित, रामचन्द्रकथा, कुशवंश, सोमवंश, पुरूरवा, नहुष और ययातिचरित, यदुवंश, श्रीकृष्ण की बाल्य और माथुरलीला, द्वारिकाचरित, सांख्यकथा, प्रपञ्चसत्व और मार्कण्डेयचरित वर्णित था । किन्तु प्रचलित मार्कण्डेयपुराण में नरिष्यन्तचरित के परवर्त्ती विषय समूह है ही नहीं । इन समस्त विषयों के एकत्र करने पर मार्कण्डेयपुराण की श्लोक संख्या पूर्ण होगी इसमें सन्देह नहीं ।

आग्नेय

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते ॥
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ।

मत्स्यपुराण ।

ईशान कल्प के वृत्तान्त प्रसंग में अग्नि ने वशिष्ठ के निकट जो पुराण कहा है वही आग्नेय नाम से विख्यात है वह १६००० श्लोक युक्त और सर्वयज्ञों का फल देने वाला है ।

वर्त्तमान अग्निपुराण में श्लोक संख्या ठीक है लक्षण कहीं कहीं पर नहीं मिलते उसका विचार लक्षणपाद में किया जावेगा।

❀ भविष्य ❀

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम् ॥
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्।
चतुर्दशसहस्राणि तथा पंचशतानि च ॥
भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते ।

मत्स्यपुराण।

जिस ग्रन्थ में चतुर्मुख ब्रह्मा ने सूर्य का माहात्म्य वर्णन करके अघोरकल्प वृत्तान्त के प्रसंग में जगत् की स्थिति और भूतग्राम के लक्षण वर्णन किये हैं जिसमें अधिकांश ही भविष्य चरित वर्णित और १४५०० श्लोक युक्त है वह भविष्यपुराण के नाम से विख्यात है।

❀ ब्रह्मवैवर्त ❀

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥

मत्स्यपुराण।

रथन्तर कल्प के वृत्तान्त प्रसंग में जिस ग्रन्थ में सावर्णि ने नारद को कृष्णमाहात्म्य और ब्रह्मवराह का चरित विस्तृत भाव से वर्णन किया है वही अठारह सहस्र ब्रह्मवैवर्त पुराण है।

* लिङ्ग *

यत्राग्निलिंगमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थमाग्न्येयमधिकृत्य च ॥
कल्पान्तं लिंगमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम् ।
तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति ॥

मत्स्यपुराण ।

जिस ग्रन्थ में देव महेश्वर ने अग्निलिंग मध्यस्थ होकर अग्निकल्पान्त में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षार्थ कथा प्रकाश की थी एकादशसहस्र श्लोक युक्त वह पुराण ही ब्रह्मा द्वारा लिंग नाम से वर्णित हुआ है। उपलब्ध लिंगपुराण अपने स्वरूप को ज्यों का त्यों धारण किये है।

* वराह *

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वराहं वै पुराणकम् ।
भागद्वययुतं शश्वद् विष्णुमाहात्म्यसूचकम् ॥
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसंगं मत्कृतं पुरा ।
निवबन्ध पुराणेस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके ॥

नारदपुराण ।

हे वत्स ! सुनो, मैं वाराहपुराण कीर्तन करता हूं। यह पुराण दो भागों में विभक्त और सदा विष्णुमाहात्म्यसूचक है। मानवकल्प का जो कुछ प्रसंग पूर्व में मेरे द्वारा वर्णित हुआ है साक्षात् नारायणस्वरूप विद्याप्रवर व्यास ने वह सब इस चौबीस सहस्र श्लोक पूर्ण पुराण में ग्रथित किया है। वाराहपुराण इस संख्या में नहीं मिलता।

* स्कन्द *

यत्र माहेश्वरान् धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः ।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं चरिते रूपबृंहितम् ॥

स्कान्दं नाम पुराणं वै तदेकाशीति निगद्यते ।
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ॥

मत्स्यपुराण ।

जिस पुराण में षडानन (स्कन्द) ने तत्पुरुष कल्पप्रसंग में अनेक चरित और उपाख्यान तथा माहेश्वर निर्दिष्ट धर्म प्रकाश किये हैं वही मर्त्यलोकमें ८११०० स्कन्द-पुराण नाम से विख्यात हुआ है। इस समय इसमें कुछ श्लोक अधिक पाये जाते हैं परन्तु इसके श्लोकों की शैली प्राचीन है और आर्ष है सम्भव है कि जो पाठ अधिक है वह किसी पुराण या उपपुराण से लिया गया हो।

❀ वामन ❀

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम् ।
त्रिविक्रमचरित्राढयं दशसाहस्रसंख्यकम् ॥
कूर्मकल्पसमाख्यानं वर्गत्रयकथानकम् ।
भागत्रयसमायुक्तं वक्तृश्रोतृशुभावहम् ॥

नारदपुराण ।

हे वत्स ! सुनो, मैं तुम्हारे निकट वामन नामक पुराण वर्णन करता हूं यह पुराण त्रिविक्रमचरित सम्वलित और दशसहस्र श्लोक परिपूर्ण है यह दो भागों में विभक्त है और इसमें कूर्मकल्प का समाख्यान और तीन वर्ग की कथा निरूपित हुई है इसके सुनने से वक्ता और श्रोता का मंगल होता है किन्तु उपलब्ध वामनपुराण दशसहस्र पूर्ण नहीं है न्यून है।

❀ कूर्म ❀

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपीजनार्दनः ॥
इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन ऋषिभ्यः शक्रसंनिधौ ।
अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ॥

मत्स्यपुराण ।

जिस पुराण में कूर्म रूपी जनार्दन ने रसातल में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का माहात्म्य इन्द्रद्युम्न के प्रसंग में इन्द्र के निकट, ऋषियों के निकट वर्णन किया था और जिसमें लक्ष्मीकल्प का विषय वर्णित हुआ है वही अट्ठारहसहस्र श्लोक युक्त कूर्म पुराण है।

शृणु वत्स मरीचेऽद्य पुराणं कूर्मसंज्ञितम् ।
लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्मवपुर्हरिः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यं च पृथक् पृथक् ।
इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन प्राहर्षिभ्यो दयान्तिकम् ॥
तत्सप्तदशसाहस्रं सुचतुः संहितं शुभम् ।

नारदपुराण।

हे वत्स मरीचे, लक्ष्मीकल्पानुचरित कूर्म नामक पुराण सुनो, जिसमें हरि कूर्म रूप में वर्णित और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन सब का माहात्म्य पृथक् पृथक् रूप से कीर्तित हुआ है यह पुराण इन्द्रद्युम्न प्रसंग में ऋषियों के निकट कथित और सत्रह सहस्र श्लोक पूर्ण है।

वास्तव में कूर्मपुराण में १७६०० श्लोक हैं नारदपुराण में ६०० श्लोकों की संख्या को न गिन कर १७००० लिखा है और मत्स्यपुराण में ६०० श्लोकों को १००० मान कर १८००० लिखा किन्तु वर्तमान समय में जो कूर्मपुराण उपलब्ध होता है उसकी संख्या केवल ६००० है।

❀ मत्स्य ❀

अथ मात्स्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम ।
यत्रोक्तं सत्यकल्पानां वृत्तं संक्षिप्य भूतले ॥
व्यासेन वेदविदुषा नरसिंहोपवर्णनम् ।
उपक्रम्य तदुद्दिष्टं चतुर्दशसहस्रकम् ॥

नारदपुराण।

हे द्विजसत्तम ! अनन्तर मैं तुम्हारे निकट मत्स्यपुराण कीर्तन करता हूं। इस पुराण में वेदवित् व्यास मुनि ने नरसिंह वर्णनोपक्रम में चौदहसहस्र श्लोक द्वारा संक्षेप से सत्यकल्प का सम्पूर्ण वृत्तान्त कीर्तन किया है।

प्रथम जनार्दन ने जब यह पुराण कहा था तब इसकी संख्या १९००० थी किन्तु व्यास ने जब संहिता बनाई तब इसकी संख्या १४००० रही परन्तु इस समय जो उपलब्ध होता है उसकी संख्या पन्द्रहसहस्र है एकसहस्र श्लोक इसमें किसी पुराण के मिले हों अथवा क्षेपक हों।

❀ गरुड़ ❀

यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद्गरुडोद्भवम् ।
अधिकृत्याब्रवीद्विष्णुर्गारुडं तदिहोच्यते ॥
तदष्टादशकं चैव सहस्राणीह पठ्यते ।

मत्स्यपुराण ।

विष्णु ने गारुड़कल्प में गरुड़ के उद्भव प्रसंग में विश्वाण्ड से आरम्भ करके जो पुराण वर्णन किया है उसका नाम गारुड़ है इसके १८००० श्लोक हैं।

मरीचे शृणु वच्म्यद्य पुराणं गारुडं शुभम् ।
गरुडायाब्रवीत्पृष्टो भगवान् गरुडासनः ॥
एकोनविंशसाहस्रं तार्क्ष्यकल्पकथाचितम् ।

नारदपुराण।

हे मरीचे! सुनो, मैं तुम्हारे निकट शुभ गरुड़पुराण कीर्तन करता हूं। यह पुराण भगवान् श्रीकृष्ण ने गरुड़ के निकट कहा है। यह उन्नीससहस्र श्लोक में पूर्ण और तार्क्ष्य कल्पीय कथा युक्त है। इसकी श्लोक संख्या १८५०० है अतएव कहीं पर अठारह हज़ार और कहीं पर १९००० हजार लिखा है किन्तु वर्तमान समय में जो गरुड़पुराण उपलब्ध होता है उसकी श्लोक संख्या ११००० है।

❀ ब्रह्माण्ड ❀

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः ।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम् ॥
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः ।
तद्ब्रह्माण्डपुराणं त्त्र ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥

मत्स्यपुराण ।

ब्रह्माण्ड का माहात्म्य अवलम्बन करके जो पुराण कहा गया है वही १२२०० श्लोक युक्त ब्रह्माण्ड है। जिस पुराण में ब्रह्मा कर्तृक भविष्यकल्प वृत्तान्त विस्तृत रूप से विवृत हुआ है वही ब्रह्माण्ड पुराण है। यह पुराण संख्या में ठीक है किन्तु एशियाटिक सोसाइटी ने छापते समय इसका नाम वायुपुराण लिख दिया।

पुराणाधिक्य

यदि एक पुराण दो प्रकार का मिल जावे तो कुछ आश्चर्य न समझना क्योंकि प्रत्येक द्वापर में एक व्यास होता है और वह पुराणों का निर्माण करता है सम्भव है कि पहिले द्वापर का निर्माण हुआ कोई पुराण सुरक्षित होकर दूसरे द्वापर के समय से भी आगे निकल जावे तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसी कल्प में अब अट्ठाईसवां कलियुग वर्तमान है इसी हिसाब से अट्ठाईस द्वापर व्यतीत होगये अट्ठाईस द्वापरों में अट्ठाईस ही व्यास हो गये इसी कारण से देवीभागवत में लिखा है कि इस कल्प में अट्ठाईस व्यास हो चुके। व्यास भी कोई एक व्यक्ति नहीं होता प्रत्येक द्वापर में नवीन व्यास हुआ करता है। व्यास किसी का नाम नहीं किन्तु पदवी है। गोलवृत्त में जो एक सीधी रेखा निकल जाती है उसका नाम व्यास है इसी प्रकार वेदवृत्त में जो सीधा निकल जावे उसका नाम वेदव्यास होता है। जितने व्यास हुये हैं वे वेद और पुराणतत्व के पूर्ण ज्ञाता हुये हैं। गत द्वापर में जो वेदव्यास हुये हैं वे पराशर के पुत्र थे और उनका नाम कृष्णद्वैपायन था। आगामी द्वापर में अश्वत्थामा व्यास होंगे इस भेद से दो पुराण मिल जाना सम्भव हो सकता है।

पुराणन्यूनता

कई एक मनुष्यों की यह शंका है कि यह पुराण जो कम मिलते हैं अर्थात् जिनकी संख्या पुराणों में अधिक लिखी है और मिलने में वह न्यून संख्या में मिलते हैं इसका कारण क्या है। उत्तर इसका यह है कि प्रथम तो कागज ही नहीं था ताड़पत्रों पर लिखे जाते थे अतएव पुराण घर घर नहीं थे। फिर कागज चला किन्तु उस समय में प्रेस नहीं थे पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं एक प्रति पुस्तक लिखने में कितना परिश्रम होता था यह अब भी अनुमान कर सकते हैं। भला इस अति परिश्रम के समय में पुस्तकों की बाहुल्यता कैसे हो सकती थी। फिर इससे भिन्न बौद्ध और यवनों का समय हिन्दू साहित्य के लिये कैसा हुआ इसको समस्त संसार जानता है। वेदों की ग्यारहसौ-

इकत्तीस शाखायें थीं जिन में से आजकल कुल बाईस शाखायें उपलब्ध होती हैं शेष मिलती ही नहीं। जब कि वेदों के भण्डार के अधिक भाग का क्षय हो गया तो फिर पुराणों में धक्का पहुंच गया वह बड़े स्वरूप को खोकर लघु स्वरूप में आगये तो इस में आश्चर्य ही क्या है। बोद्ध और यवनों के ज़माने में ब्राह्मणों ने अपने शरीरों का बलिदान देकर वेद और पुराणों को बचाया है जितने उनसे बचाये जा सके उतनों को बचा लिया और जो नहीं बच सके उनका क्षय हो गया। बृटिश गवर्नमेन्ट तथा अन्य सुसाइटियों या अन्य पण्डितों की खोज से दिनोंदिन संस्कृतसाहित्य कुछ न कुछ मिलता ही जाता है। एशियाटिक सुसाइटी कलकत्ता की खोज से बहुत सी प्राचीन पुस्तकें मिली हैं सम्भव है कि खोज करने पर किसी लायब्रेरी में या किसी पण्डित के घर रक्खे हुये वे समस्त पुराण मिल जावें कि जो इस समय अधूरे हैं।

इतिश्रीकालूरामरचितपुराणवर्मणि संख्यापादस्तृतीयः

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, वैष्णवधर्मपालकाग्रगण्य

श्री १०८ महन्त चतुर्भुजदासजी

आनरेरी मेजिस्ट्रेट, कौंच जिला जालौन।



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

शास्त्र का सिद्धान्त है कि धर्म से संसार की रक्षा होती है और वैष्णवधर्म से जीव संसारबंधन को छोड़ कर प्रभु के चरणारविंद में पहुंचते हैं ये ही दो कर्तव्य संसार में प्रत्येक मनुष्य के हैं। पुराणों के न रहने पर साधारण धर्म और मोक्षधर्म दोनों ही संसार में नहीं रह सकते। धर्मशास्त्र ने धर्मनिर्णय में जो चौदह ग्रंथ लिये हैं उन चौदह में सब से प्रथम और मुख्य पुराण को समझा है अतएव धर्मशास्त्र लिखता है कि—

पुराणं न्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

 मरचेंट प्रेस, कानपुर।

लक्षणपादः

मदोन्माद्यदुद्दामदिग्दन्तिगण्डो-
न्मदोन्माद्यदिन्दीवरालीविराजन् ।
अनायासमायासमानाशयन्नः
स पायादपायादुमायास्तनूजः ॥१॥

कई एक सज्जनों का प्रश्न है कि पुराणों में कहा हुआ जो पुराण का लक्षण है वह लक्षण वर्तमान पुराणों में नहीं घटता ।

इसके उत्तर में विचार करने से हम इस फल पर पहुंचते हैं कि अट्ठारह पुराणों को पुराण तथा महापुराण इन दो नामों से याद किया गया है और उनका लक्षण यह नीचे लिखा है—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।

श्रीमद्भा० स्कं० द्वि० अ० १०

इस पुराण में सर्ग (सूक्ष्म रचना) विसर्ग (सृष्टि रचना) स्थान (भूगोल खगोल) पोषण (पालन) ऊति, मन्वन्तर और मन्वन्तरों का चरित्र निरोध, मुक्ति, ये नव लक्षण कहे हैं इनके कहने का प्रयोजन यह है कि इन से दशवां लक्ष्य आश्रय (ईश) जाना जावे ।

जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में दश लक्षण वर्णन किये हैं इसी प्रकार समस्त महा-पुराणों में दश लक्षण पाये जाते हैं देखिये—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषां च पालनम् ।
कर्मणां वासना वार्ता मनूनान्तु क्रमेण च ॥
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम् ।
उत्कीर्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक् ॥

दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम् ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्ण जन्मखण्ड अ० १३२

१—मूल सृष्टि, २—विस्तृत सृष्टि, ३—संसार की स्थिति का वर्णन, ४—संसार का पालन, ५—कर्मों की वासना, ६—मनुओं का क्रम, ७—प्रलय का वर्णन, ८—मोक्ष का निरूपण, ९—भगवान हरि का कीर्तन, १०—देवताओं का पृथक् पृथक् वर्णन, महापुराणों में यह दश लक्षण अधिक कहे हैं।

उपपुराणों को उपपुराण तथा पुराण कहते हैं और उनमें ये नीचे लिखे हुये लक्षण मिलते हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पंचलक्षणम् ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में सूतजी शौनकजी से कहते हैं कि अब पुराण के लक्षण सुनो १—महाभूतों की सृष्टि का वर्णन, २—समस्त चराचर की सृष्टि का वर्णन, ३—वंशों का वर्णन, ४—मन्वन्तरों का वर्णन और ५—वंश के प्रधान २ पुरुषों का चरित्र वर्णन, जिसमें किया गया हो उसका नाम पुराण है।

नारदपुराण में जो ब्राह्मपुराण का लक्षण कहा है वह इस प्रकार है—

ब्राह्म

तत्पूर्व भागे—

देवानामसुराणाञ्च यत्रोत्पत्तिः प्रकीर्तिता ।
प्रजापतीनाञ्च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर ॥
ततो लोकेश्वरस्यात्र सूर्यस्य परमात्मनः ।
वंशानुकीर्तनं ब्रह्मन्महापातकनाशनम् ॥
यत्रावतारः कथितः परमानन्दरूपिणः ।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः ॥
ततश्च सोमवंशस्य कीर्तनं यत्र वर्णितम् ।
कृष्णस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम् ॥

द्वीपानाञ्चैव सिन्धूनां वर्षाणां वाप्यशेषतः ।
वर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणां च प्रदृश्यते ॥
नरकानां समाख्यानं सूर्यस्तुतिकथानकम् ।
पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ॥
दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम् ।
पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणस्यास्य मानद ॥

तदुत्तर भागे—

अस्योत्तरविभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम् ।
योगानाञ्च समाख्यानं सांख्यानाञ्चापि वर्णनम् ॥
ब्रह्मवादसमुद्देशः पुराणस्य च शासनम् ।
एतद्ब्रह्मपुराणन्तु भागद्वयसमर्चितम् ॥
वर्णितं सर्वपापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ।

नारदपुराण ।

हे मुनीश्वर ! आगे जिसमें देवासुरगण, प्रजापतिगण और दक्षादि की उत्पत्ति हुई है और पश्चात् लोकेश्वर परमात्मा सूर्यदेव का महापातकनाशन वंशानुकीर्तन हुआ है; जिसमें परमानन्दरूपी चतुर्व्यूहावतार श्रीमान् रामचन्द्र का अवतार कहा है; पश्चात् सोमवंश का कीर्तन और जगदीश्वर श्रीकृष्ण का पापहरचरित्र वर्णित हुआ है; जिसमें सम्पूर्ण प्रकार से समस्त द्वीप, सिन्धु, वर्ष, पाताल और स्वर्ग का वर्णन पाया जाता है तथा सम्पूर्ण नरकों के नाम, सूर्य की स्तुति, पार्वती का जन्म और विवाह कहा गया है; पश्चात् दक्ष का आख्यान और एकाम्रक्षेत्र वर्णित है । हे मानद ! इस पुराण का यह पूर्व भाग वर्णित हुआ इसके उत्तर भाग में विस्तृत रूप से तीर्थयात्रा विधान क्रम से पुरुषोत्तम वर्णना कही है, पश्चात् यमलोक वर्णन, पितृ श्राद्ध विधि और वर्णकाम धर्म विस्तार से कहे हैं और विष्णुधर्म, युगाख्यान, प्रलयवर्णन, ब्रह्मवाद समुद्देश और पुराणशासन कथित हुआ है यह ब्रह्मपुराण दो भागों में विभक्त सर्वपापहर और सर्व सौख्यदायक है ।

इस समय में जो ब्राह्मपुराण उपलब्ध है नारदपुराण की सूची के साथ उसकी पूर्ण एकता पाई जाती है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि जैसा ब्राह्मपुराण नारदपुराण ने बतलाया है उपलब्ध वैसा का वैसा वही है ।

* पाद्म *

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम् ।
महत्पुण्यप्रदं नृणां शृण्वतां पठतां मुदा ॥
यथा पञ्चेन्द्रियः सर्वं शरीरीति निगद्यते ।
तथेदं पञ्चभिः खण्डैरुदितं पापनाशनम् ॥

१म सृष्टिखण्ड में—

पुलस्त्येन तु भीष्माय सृष्टयादिक्रमतो द्विज ।
नानाख्यानेतिहासाद्यैर्यत्रोक्तो धर्मविस्तरः ॥
पुष्करस्य तु माहात्म्यं विस्तरेण प्रकीर्तितम् ।
ब्रह्मयज्ञविधानञ्च वेदपाठादिलक्षणम् ॥
दानानां कीर्तनं यत्र व्रतानाञ्च पृथक् पृथक् ।
विवाहः शैलजायाश्च तारकाख्यानकं महत् ॥
माहात्म्यञ्च गवादीनां कीर्तिदं सर्वपुण्यदम् ।
कालकेयादिदैत्यानां वधो यत्र पृथक् पृथक् ॥
ग्रहाणामर्चनं दानं यत्र प्रोक्तं द्विजोत्तम ।
तत्सृष्टिखण्डमुद्दिष्टं व्यासेन सुमहात्मना ॥

२य भूमिखण्ड में—

पितृमात्रादिपूज्यत्वे शिवशर्मकथा पुरा ।
सुव्रतस्य कथा पश्चाद्वृत्रस्य च वधस्तथा ॥
पृथोर्वैणस्य चाख्यानं धर्माख्यानं ततः परम् ।
पितृशुश्रूषणाख्यानं नहुषस्य कथा ततः ॥
ययातिचरितञ्चैव गुरुतीर्थनिरूपणम् ।
राज्ञा जैमिनिसम्वादो बह्वाश्चर्यकथा ततः ॥
कथा ह्यशोकसौन्दर्या हुण्डदैत्यवधाचिता ।
कामोदाख्यानकं तत्र विहुण्डवधसंयुतम् ॥

कुण्डलस्य च सम्वादश्च्यवनेन महात्मना ।
सिद्धाख्यानं ततः प्रोक्तं खण्डस्यास्य फलोदयम् ॥
सूतशौनकसम्वादं भूमिखण्डमिदं स्मृतम् ।

३य स्वर्गखण्ड में—

ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुदिता यत्रर्षिभिश्च सौतिना ।
स भूमिलोकसंस्थानं तीर्थाख्यानं ततः परम् ॥
नर्मदोत्पत्तिकथनं तत्तीर्थानां कथा पृथक् ।
कुरुक्षेत्रादितीर्थानां कथाः पुण्याः प्रकीर्तिताः ॥
कालिन्दीपुण्यकथनं काशीमाहात्म्यवर्णनम् ।
गयायाश्चैव माहात्म्यं प्रयागस्य च पुण्यकम् ॥
वर्णाश्रमानुरोधेन कर्मयोगनिरूपणम् ।
व्यासजैमिनिसम्वादः पुण्यकर्मकथाचितः ॥
समुद्रमथनाख्यानं व्रताख्यानं ततः परम् ।
ऊर्जपञ्चाहमाहात्म्यं स्तोत्रं सर्वपराधनुत् ॥
एतत्सर्वाभिधं विप्र सर्वपातकनाशनम् ।

४र्थ पातालखण्ड में—

रामाश्वमेधे प्रथमं रामराज्याभिषेचनम् ।
अगस्त्याद्यागमश्चैव पौलस्त्याय च कीर्तनम् ॥
अश्वमेधोपदेशश्च हयचर्या ततः परम् ।
नानाराजकथाः पुण्या जगन्नाथानुवर्णनम् ॥
वृन्दावनस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
नित्यलीलानुकथनं यत्र कृष्णावतारिणः ॥
माधवस्नानमाहात्म्ये स्नानदानार्चने फलम् ।
धरावराहसम्वादो यमब्राह्मणयोः कथा ॥
सम्वादो राजदूतानां कृष्णस्तोत्रनिरूपणम् ।
शिवशम्भुसमायोगो दधीच्याख्यानकं ततः ॥

भस्ममाहात्म्यमतुलं शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
देवरातसुताख्यानं पुराणज्ञप्रशंसनम् ॥
गौतमाख्यानकञ्चैव शिवगीता ततः स्मृता ।
कल्पान्तरी रामकथा भरद्वाजाश्रमस्थितौ ॥
पातालखण्डमेतद्धि शृण्वतां ज्ञानिनां सदा ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥

५म उत्तरखण्ड में—

पर्वताख्यानकं पूर्वं गौर्य्यै प्रोक्तं शिवेन वै ।
जालन्धरकथा पश्चाच्छ्रीशैलाद्यनुकीर्तनम् ॥
सगरस्य कथा पुण्या ततः परमुदीरितम् ।
गङ्गाप्रयागकाशीनां गयायाश्चापि पुण्यकम् ॥
आम्रादिदानमाहात्म्यं तन्महाद्वादशीव्रतम् ।
चतुर्विंशैकादशीनां माहात्म्यं पृथगीरितम् ॥
विष्णुधर्मसमाख्यानं विष्णुनामसहस्रकम् ।
कार्तिकव्रतमाहात्म्यं माघस्नानफलं ततः ॥
जम्बूद्वीपस्य तीर्थानां माहात्म्यं पापनाशनम् ।
साभ्रमत्याश्च माहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिवर्णनम् ॥
देवशर्मादिकाख्यानं गीतामाहात्म्यवर्णने ।
भक्ताख्यानञ्च माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्य ह ॥
इन्द्रप्रस्थस्य माहात्म्यं बहुतीर्थकथाचितम् ।
मन्त्ररत्नाभिधानं च त्रिपाद्भूत्यनुवर्णनम् ॥
अवतारकथा पुण्या मत्स्यादीनामतः परम् ।
रामनामशतं दिव्यं तन्माहात्म्यञ्च वाडव ॥
परीक्षणं च भृगुणा श्रीविष्णोर्वैभवस्य च ।
इत्येतदुत्तरं खण्डं पञ्चमं सर्वपुण्यदम् ॥

नारदपुराण ।

ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! मनुष्यों को अधिक पुण्यदायक पद्मपुराण नामक पुराण कहता हूं श्रवण करो।

जैसे पंचेन्द्रिय युक्त सब कोई शरीरी कहे जाते हैं उसी प्रकार पापनाशकारी यह पद्मपुराण पांच खण्ड में वर्णित हुआ है। प्रथम सृष्टिखण्ड में पुलस्त्य कर्तृक भीष्म के सृष्ट्यादि क्रम में नानाख्यान और इतिहास के साथ विस्तृतधर्म कथन, पुष्कर माहात्म्य, ब्रह्म यज्ञ विधान, वेद पाठादि के लक्षण, दान और पृथक् २ व्रत, पार्वती का विवाह, और तारकाख्यान कीर्ति और पुण्यदायक गवादि का माहात्म्य, और कालकेयादि दैत्यवध, ग्रहों की अर्चना, और दान इत्यादि पृथक् २ रूप से इस सृष्टिखण्ड में निर्दिष्ट हुये हैं।

द्वितीय भूमिखण्ड में—पिता माता की पूजा, शिवशर्मकथा, सुव्रत की कथा, वृत्र-वधकथा, पृथु और वेण राजोपाख्यान और धर्माख्यान, पितृशुश्रूषा, नहुष वृत्तान्त, ययाति, गुरु और तीर्थ निरूपण, राजा और जैमिनि संवाद, अत्याश्चर्य हुण्डदैत्यचरित, अशोक सुन्दर की कथा, विहुण्डवध संयुक्त कामोदाख्यान, महात्मा च्यवन कुंडल सम्वाद, अनन्तर सिद्धाख्यान, सूत शौनक सम्वाद में इस भूमिखण्ड का विषय विवृत हुआ है।

तीसरे स्वर्गखण्ड में–सौति ऋषि सम्वाद, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, भूमि के साथ लोक संस्थान, तीर्थाख्यान, नर्मदा की उत्पत्ति कथन, उस तीर्थ की पृथक् कथा, कुरु-क्षेत्रादि तीर्थों की पवित्र कथा, कालिन्दी की पुण्यकथा, काशी माहात्म्य, पवित्र गया माहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, वर्णाश्रम के अनुरोध में कर्मयोग निरूपण, पुण्यरूप कथा युक्त व्यास और जैमिनि सम्वाद, समुद्रमथनाख्यान, व्रताख्यान, ऊर्ज और पंचाहमाहात्म्य, सर्वापराधभंजनस्तोत्र, आदि सर्वपातकनाशक कार्यों का उल्लेख है।

चौथे पातालखण्ड में–रामाश्वमेध, रामका राज्याभिषेक, अगस्त्य का आगमन, पौलस्त्यचरित, अश्वमेधोपदेश, हयचर्या, अनेक राजकथा, जगन्नाथाख्यान, वृन्दावन माहात्म्य, कृष्णावतार में नित्यलीला कथन, माघस्नान, दान और पूजा फल, धरणी वराह संवाद, यम और ब्राह्मण की कथा, राजदूतों का संवाद, कृष्णस्तोत्र, शिवशम्भु समायोग, दधीचि का आख्यान, भस्म माहात्म्य, शिव माहात्म्य, देवरात सुताख्यान, पुराणज्ञ प्रशंसा गौतमाख्यान, शिवगीता, भरद्वाजाश्रमस्थ कल्पान्तरी रामकथा, सर्व-पापनाशक और सर्वाभीष्ट फलप्रद पातालखण्ड में यह सब वृत्तान्त है।

पञ्चम उत्तरखण्ड में—प्रथम गौरी के प्रति शिवप्रोक्त पर्वताख्यान, जालन्धर कथा, श्रीशैल माहात्म्य, सगर की कथा, गंगा-प्रयाग-काशी और गया की पुण्यकथा,

२४ प्रकार की एकादशी की कथा, एकादशी माहात्म्य, विष्णुधर्म, विष्णु के सहस्र नाम, कार्तिकव्रत माहात्म्य, माघस्नानफल, जम्बू द्वीप के अन्तर्गत पापनाशक तीर्थसमूह का माहात्म्य, साभ्रमती माहात्म्य, नृसिंहोत्पत्ति, देवशर्मादि की कथा, गीता माहात्म्य, भक्ताख्यान, श्रीमद्भागवत का माहात्म्य, बहुतीर्थ कथा, मंत्ररत्न, त्रिपाद्ध विभूति-वर्णन, मत्स्यादि क्रम से पुण्यमयी अवतार कथा, रामशत नाम और उनका माहात्म्य, भृगु की परीक्षा और विष्णु का वैभव, यह सब पुण्यरूप पांचवें उत्तरखण्ड में वर्णित हुआ है।

इस लक्षण के अनुसार पद्मपुराण होना चाहिये। किसी २ पुराण में पद्म का लक्षण करते हुये खण्डों के स्थान में पर्व बतलाये गये हैं यह कल्पभेद है। वर्तमान पद्मपुराण में नारदपुराण के कहे हुये लक्षण मिलते हैं इतना मिलने पर भी इस में कुछ क्षेपक है और यह क्षेपक सम्प्रदायों में विरोधोत्पादक हैं अतएव त्याज्य हैं।

❋ विष्णु ❋

प्रथमांशे—

आदिकारणसर्गश्च देवादीनाञ्च सम्भवः।
समुद्रमथनाख्यानं दक्षादीनां ततोऽन्वयाः॥
ध्रुवस्यचरितञ्चैव पृथोश्चरितमेव च।
प्रचेतसं तथाख्यानं प्रह्लादस्य कथानकम्॥
पृथग्राज्याधिकाराख्या प्रथमोंश इतीरितः।

द्वितीयांशे—

प्रियव्रतान्वयाख्यानं द्वीपवर्षनिरूपणम्।
पातालनरकाख्यानं सप्तस्वर्गनिरूपणम्॥
सूर्यादिचारकथनं पृथग्लक्षणसंयुतम्।
चरितं भरतस्याथ मुक्तिमार्गनिदर्शनम्॥
निदाघऋतुसम्वादो द्वितीयोंश उदाहृतः।

तृतीयांशे—

मन्वन्तरसमाख्यानं वेदव्यासावतारकम्।
नरकोद्धारकं कर्म गदितञ्च ततः परम्॥

सगरस्यौर्वसम्वादे सर्वधर्मनिरूपणम् ।
श्राद्धकल्पं तथोद्दिष्टं वर्णाश्रमनिबन्धने ॥
सदाचारश्चकथितो मायामोहकथा ततः ।
तृतीयांशोयमुदितः सर्वपापप्रणाशनः ॥

चतुर्थांशे—

सूर्यवंशकथापुण्या सोमवंशानुकीर्तिनम् ।
चतुर्थांशे मुनिश्रेष्ठ नानाराजकथोचितम् ॥

पञ्चमांशे—

कृष्णावतारसंप्रश्नो गोकुलीयकथा ततः ।
पूतनादिवधो बाल्ये कौमारेघादिहिंसनम् ॥
कैशोरे कंसहननं माथुरं चरितं तथा ।
ततस्तु यौवने प्रोक्ता लीला द्वारावती भवा ॥
सर्वदैत्यवधो यत्र विवाहाश्च पृथग्विधाः ।
यत्र स्थित्वा जगन्नाथः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥
भूभारहरणं चक्रे परस्वहननादिभिः ।
अष्टावक्रीयमाख्यानं पञ्चमांश इतीरितः ।

षष्ठांशे—

कलिजं चरितं प्रोक्तं चातुर्विध्यं लयस्य च ।
ब्रह्मज्ञानसमुद्देशः खण्डिकस्य निरूपितः ॥
केशिध्वजेन चेत्येष षष्ठेंशे परिकीर्तितः ।

उत्तरभागे—

अतः परस्तु सूतेन शौनकादिभिरादरात् ।
पृष्ठेन चोदिता शश्वद्विष्णुधर्मोत्तराह्वयाः ॥
नानाधर्मकथाः पुण्या वृतानि नियमा यमाः ।
धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदान्तं ज्योतिषं तथा ॥
वंशाख्यानप्रकरणात्स्तोत्राणि मलयस्तथा ।

नानाविद्याश्रयाः प्रोक्ताः सर्वलोकोपकारकाः ॥
एतद्विष्णुपुराणं वै सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ।

नारदपुराण ।

आदि कारण, सृष्टि, देवादि की उत्पत्ति, समुद्रमथन और दक्षादि का वृत्तान्त, ध्रुव और पृथुचरित, प्रचेता का आख्यान, प्रह्लादकथा और पृथक् २ राज्याधिकार वृत्तान्त यह सम्पूर्ण विषय प्रथमांश में कहा गया है।

प्रियव्रताख्यान, द्वीप और वर्ष निरूपण, पाताल नरकाख्यान, सात स्वर्ग निरूपण, पृथक् २ लक्षण युक्त सूर्यादि का चार कथन, भरतचरित, मुक्तिमार्ग निदर्शन और ग्रीष्म ऋतु का सम्वाद, दूसरे अंश में यह सम्पूर्ण विषय उद्धृत हुआ है।

मन्वन्तराख्यान, वेदव्यास का अवतार, नरकोद्धारक कर्म, इसके पीछे सगर और और्व संवाद में सर्वधर्म का निरूपण, वर्णाश्रम निबन्धन में श्राद्धकल्प निर्देश, सदाचार और माया मोह कथा, यह सम्पूर्ण वृत्तान्त तीसरे अंश में कहा गया है, यह सर्वपापनाशक है।

हे मुनिश्रेष्ठ ! सूर्यवंश की पवित्र कथा और सोमवंश का अनुकीर्तन, अनेक प्रकार के राजगण का वृत्तान्त भी इस चतुर्थांश में वर्णित हुआ है।

प्रथम कृष्णावतार विषयक प्रश्न, फिर गोकुलीय कथा, बाल्यकाल में पूतना आदि का वध, कौमार में अघासुर आदि की हत्या, कैशोर में कंसविनाश और माथुर चरित, इसके पीछे यौवन में द्वारकापुरी कृत लीला, सर्वदैत्यवध, पृथक् २ प्रकार विवाह, द्वारकापुरी में रह कर कृष्ण कर्तृक शत्रु हननादि द्वारा भूभारहरण कारण और अष्टावक्रीय आख्यान आदि पंचम अंशमें विवृत हुआ है।

कलिजात चरित लय की चार प्रकार की अवस्था और केशिध्वज के साथ खाण्डिक्य का समुद्देश इत्यादि छठे अंश में कहा गया है। इसके पीछे सूत शौनकादि कर्तृक यत्न पूर्वक जिज्ञासित होकर विष्णु धर्मोत्तर नामक परम पवित्र अनेक प्रकार की धर्मकथा, व्रत, नियम, यम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्त, ज्योतिष, वंशाख्यान, स्तोत्र, मंत्र और सर्वलोकोपकारकारक अनेक प्रकार की विद्या यह सम्पूर्ण विषय कहा गया है। इस विष्णुपुराण में सर्वशास्त्र का संग्रह है।

वर्तमान विष्णुपुराण में क्रम से प्रायः यह समस्त मिलता है जितना छूटा है उतना विष्णुपुराण कम है।

शिव वा वायु

अन्य पुराणों में इसकी सविस्तृत ऐसी सूची नहीं है कि जिससे लक्षण लेकर पूर्ण शिवपुराण का ज्ञान हो जावे।

भागवत

श्रीमद्भागवत और देवीभागवत इन दोनों में से कौन महापुराण है इसका निर्णय करते हुये हमने दोनों भागवतों का लक्षण संख्यापाद में लिख दिया है वहां ही देखिये।

नारद

सूतशौनकसम्वादः सृष्टिसंक्षेपवर्णनम्।
नानाधर्मकथाः पुण्याः प्रवृत्तेः समुदाहृताः॥
प्राग्भावे प्रथमे पादे सनकेन महात्मनः।
द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम्॥
वेदाङ्गानाञ्च कथनं शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात्।
सनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने॥
महातंत्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोक्षणम्।
मंत्राणां शोधनं दीक्षा मंत्रोद्धारश्च पूजनम्॥
प्रयोगाः कवचं नाम सहस्रं स्तोत्रमेव च।
गणेशसूर्यविष्णूनां नारदाय तृतीयके॥
पुराणं लक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानं फलपुरःसरम्॥
चैत्रादिसर्वमासेषु तिथीनाञ्च पृथक् पृथक्।
प्रोक्तं प्रतिपदादीनां व्रतं सर्वौघनाशनम्॥
सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके।

पूर्वभागेयमुदितो बृहदाख्यानसंज्ञितः ॥
अस्योत्तरविभागे तु प्रश्न एकादशीव्रते ।
वशिष्ठेनाथसम्वादो मान्धातुः परिकीर्तितः ॥
रुक्माङ्गदकथापुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया ॥
गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ।
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम् ॥
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम् ।
प्रयागस्याथमाहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् ॥
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा ।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च ॥
प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकं तथा ।
गौतमाख्यानकं पश्चाद्वेदपादस्तु वस्तुतः ॥
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ।
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ॥
अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसोर्ब्रह्मान्तिके गतिः ॥
मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम् ।

नारदपुराण ।

इसके पूर्वभाग के प्रथमपाद में सूतशौनक सम्वाद, संक्षेप से सृष्टि वर्णन और महात्मा सनक द्वारा अनेक प्रकार की धर्मकथा कही है। मोक्ष धर्माख्य द्वितीयपाद में मोक्ष का उपाय निरूपण, वेदांग समुदाय का कथन और विस्तृतरूप से शुक की उत्पत्ति, यह सम्पूर्ण महात्मा नारद के निकट सनन्दन द्वारा उक्त हुए हैं।

महातंत्रोद्दिष्ट पशुपाश विमोक्षण, मंत्र समुदाय का शोधन, दीक्षाउद्धार, पूजा और प्रयोग एवं गणेश, सूर्य तथा विष्णु का सहस्र नाम स्तोत्र, पुराण के लक्षण और प्रमाण, दान और दान का पृथक् पृथक् फल उद्देश और चैत्रादिमास में प्रतिपदादि

तिथिक्रम से पृथक् पृथक् व्रत निरूपण, यह सम्पूर्ण सनातनमुनि ने नारद को इस चतुर्थ भाग में कहे हैं।

इसके उत्तरभाग में एकादशी व्रत विषय में प्रश्न, वसिष्ठ का और मान्धाता का संवाद, पवित्र रुक्मांगदकथा, मोहिनी की उत्पत्ति और कर्म मोहिनी प्रति वसुशाप, पश्चात् उद्धार क्रिया, पुण्यतम गंगाकथा, गया यात्रा कीर्तन, काशीमाहात्म्य, पुरुषोत्तम वर्णन, बहु आख्यान युक्त पुरुषोत्तमक्षेत्र का यात्राविधान, प्रयागमाहात्म्य, कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, हरिद्वाराख्यान, कामोदाख्यान, बदरीतीर्थमाहात्म्य, कामाख्या माहात्म्य, प्रभासमाहात्म्य, पुराणाख्यान, गौतमाख्यान, वेदपादस्तव, गोकर्णक्षेत्र-माहात्म्य, लक्ष्मणाख्यान, सेतुमाहात्म्य, नर्मदा तीर्थ वर्णन, अवन्ती और मथुरा का माहात्म्य, वृन्दावनमहिमा, ब्रह्मा के निकट वसु का गमन और फिर मोहिनीचरित, यह संपूर्ण नारदीय में कहा गया है।

उपलब्ध नारदपुराण में क्रम से यह समस्त कथा पाई जाती है।

मार्कण्डेय

अथातः संप्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयाभिधं मुने।
पुराणं सुमहत्पुण्यं पठतां शृण्वतां सदा॥
यत्राधिकृत्यशकुनीन्सर्वधर्मनिरूपणम्।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम्॥
पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम्।
पूर्वजन्मकथा येषां विक्रिया च दिवस्पते॥
तीर्थयात्रा बलस्यातो द्रौपदेयकथानकम्।
हरिश्चन्द्रकथापुण्या युद्धमाण्डीवकाभिधम्॥
पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः।
हैहयस्याथचरितं महाख्यानसमाचितम्॥
मदालसाकथा प्रोक्ता अलर्कचरितान्विता।
सृष्टिसंकीर्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्तितम्॥

कल्पान्तकालनिर्देशो यक्षसृष्टिनिरूपणम् ।
रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपवंशानुकीर्तनम् ॥
मनूनाञ्च कथानाना कीर्तिताः पापहारिकाः ।
तासु दुर्गाकथात्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेन्तरे ॥
तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजसमुद्भवः ।
मार्कण्डेयस्यजन्माख्या तन्माहात्म्यसमन्विता ॥
वैवस्वता च यश्चापि वत्सप्राचरितं ततः ।
खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्यमहात्मनः ॥
अविक्षिचरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्तनम् ।
नरिष्यन्तस्य चरितं रामचन्द्रस्य सत्कथा ॥
कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम् ।
पुरूरवाकथापुण्या नहुषस्य कथाद्भुता ॥
ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम् ।
श्रीकृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः ॥
द्वारकाचरितं चाथ कथा सर्वावतारजाः ।
ततः सांख्यसमुद्देशप्रपञ्चस्तत्वकीर्तनम् ॥
मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम् ।

नारदपुराण ।

हे मुने ! अनन्तर तुम्हारे निकट मार्कण्डेयपुराण कहता हूँ । इस पुराण के श्रोता और पाठक दोनों को ही महत्पुण्य होता है । जिसमें शकुनियों का अवलम्बन करके मार्कण्डेय मुनि ने समस्त धर्मों का निरूपण किया है और पक्षियों की धर्मसंज्ञा, जन्मनिरूपण और पूर्वजन्म कथा, दिवस्पति की विक्रिया, बलदेव की तीर्थयात्रा, द्रौपदेयकथा, हरिश्चन्द्रकथा, आडिवकाभियुद्ध, पितापुत्र समाख्यान, दत्तात्रेयकथा, हैहयचरित, मदालसाकथा, अलर्कचरित, नवधा सृष्टि कीर्तन, कल्पान्तकाल निर्देश, यक्षसृष्टि निरूपण, रुद्रादि सृष्टि, द्वीपवंशानुकीर्तन, मनुओं की नानाविधि पापहारक कथा, उनमें अष्टम मन्वन्तर में अत्यन्त पुण्यप्रद दुर्गा की कथा, प्रणवोत्पत्ति, त्रयी तेज उद्भव, मार्कण्डेय का समाख्यान और उसका माहात्म्य, वैवस्वतचरित और वत्सप्रा-

चरित। इसके पश्चात् पुण्यदायक, खनित्रकथा, अविक्षिचरित, किमिच्छ व्रत कीर्तन, नरिष्यन्तचरित, इक्ष्वाकुचरित, तुलसीचरित, रामचन्द्र की सत्कथा, कुशवंश समाख्यान, सोमवंशानुकीर्तन, पुरूरवा की कथा, नहुषकथा, ययातिचरित, यदुवंशकीर्तन, श्रीकृष्ण का बाल्य और माथुरचरित, द्वारकाचरित, सांख्य समुद्देश, प्रपंच की असत्यता कीर्तन, एवं मार्कण्डेयचरित यह सम्पूर्ण कीर्तित हुये हैं।

मार्कण्डेयपुराण में प्रायः ये सब लक्षण ठीक हैं जितना वह कम है उतनेही लक्षण कम हैं।

आग्नेय

प्रश्नपूर्वं पुराणस्य, कथा सर्वावतारजा।
सृष्टिप्रकरणं चाथ, विष्णुपूजादिकं ततः॥
अग्निकार्यं ततः पश्चान्मंत्रमुद्रादिलक्षणम्।
सर्वदीक्षाविधानञ्च, अभिषेकनिरूपणम्॥
लक्षणं मण्डलादीनां कुशापामार्जनं ततः।
पवित्रारोपणविधिर्देवालयविधिस्तथा॥
शालग्रामादिपूजा च मूर्तिलक्ष्म पृथक् पृथक्।
न्यासादीनां विधानं च प्रतिष्ठापूर्तिका ततः॥
विनायकादिदीक्षाणां, विधिर्ज्ञेयस्ततः परम्।
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां, ब्रह्माण्डस्य निरूपणम्॥
गङ्गादितीर्थमाहात्म्यं, जम्ब्वादिद्वीपवर्णनम्।
ऊर्ध्वाधोलोकरचना ज्योतिश्चक्रनिरूपणम्॥
ज्योतिषञ्च ततः प्रोक्तं शास्त्रं युद्धजयार्णवम्।
षट्कर्म च ततः प्रोक्तं मंत्रयंत्रौषधीगणः॥
कुब्जिकादिसमर्चा च षोढान्यासविधिस्तथा।
कोटिहोमविधानञ्च तदनन्तरनिरूपणम्॥
ब्रह्मचर्य्यादिधर्म्माश्च श्राद्धकल्पविधिस्ततः।

गृहयज्ञस्ततः प्रोक्तो वैदिकस्मार्तकर्म च ॥
प्रायश्चित्तानुकथनं तिथीनाञ्च व्रतादिकम् ।
वारव्रतानुकथनं नक्षत्रव्रतकीर्तनम् ॥
मासिकव्रतनिर्देशो दीपदानविधिस्तथा ।
नवव्यूहार्चनं प्रोक्तं नरकाणां निरूपणम् ॥
व्रतानाञ्चापि दानानां निरूपणमिहोदितम् ।
नाड़ीचक्रसमुद्देशः सन्ध्याविधिरनुत्तमः ॥
गायत्र्यर्थस्य निर्देशो लिङ्गस्तोत्रं ततः परम् ।
राज्याभिषेकमंत्रोक्तिर्धर्मकृत्यञ्च भूभुजाम् ॥
स्वप्नाध्यायस्ततः प्रोक्तः शकुनादिनिरूपणम् ।
मण्डलादिकनिर्देशो रत्नानां लक्षणं ततः ॥
धनुर्विद्याततः प्रोक्ता व्यवहारप्रदर्शनम् ।
देवासुरविमर्दाख्या ह्यायुर्वेदनिरूपणम् ॥
गजादीनां चिकित्सा च तेषां शान्तिस्ततः परम् ।
गोनसादिचिकित्सा च नानापूजास्ततः परम् ॥
शान्तयश्चापि विविधाश्छन्दशास्त्रमतःपरम् ।
साहित्यं च ततः पश्चादेकार्णादिसमाह्वया ॥
सिद्धशिष्टानुशिष्टश्च कोषः स्वर्गादिवर्गके ।
प्रलयानां लक्षणं च शारीरकनिरूपणम् ॥
वर्णनं नरकानाञ्च योगशास्त्रमतः परम् ।
ब्रह्मज्ञानं ततः पश्चात्पुराणश्रवणे फलम् ॥
एतदाग्नेयकं विप्र पुराणं परिकीर्तितम् ।

नारदपुराण ।

इसमें प्रश्नपूर्वक समस्त अवतारों की कथा कही है इसके प्रथम में सृष्टि प्रकरण, पश्चात् विष्णु पूजादि एवं क्रम से अग्निकार्य मंत्र मुद्रादि का लक्षण, कुशा का मार्जन,

पवित्रारोपण विधि, देवालय विधि, शालग्रामादि पूजा, पृथक् २ मूर्ति चिह्न, न्यासादि का विधान प्रतिष्ठापूर्वक विनायकादि की दीक्षा विधि, सर्वदेव प्रतिष्ठा, ब्रह्माण्ड निरूपण, गंगादितीर्थ माहात्म्य, जम्बू आदि द्वीप वर्णन, ऊर्द्ध्व और अधोलोक रचना, ज्योतिश्चक्र निरूपण, ज्योतिष, मंत्र और यंत्रौषधि समूह, षट्कर्म, युद्ध जयशास्त्र कुब्जिकादि समर्चा, षोढ़ान्यास विधि, कोटिहोम विधान तदनन्तर निरूपण, ब्रह्मचर्यादि धर्म, श्राद्ध कल्पविधि, ग्रह यज्ञ, वैदिक और स्मार्त कर्म प्रायश्चित्तानु कथन, तिथि अनुसार व्रतादि, वार व्रतानुकथन, नक्षत्र व्रत कीर्तन, मासिक व्रत निर्देश, दीपदान विधि, नव व्यूहार्चन, नरक समुदाय का निरूपण, व्रत और दान समुदाय का निरूपण, नाड़ी चक्र समुद्देश, संध्याविधि, गायत्र्यर्थ का निर्देश, लिंगस्तोत्र, राजगणों का अभिषेक मंत्र, राजगणों का धर्म कार्य, स्वप्नाध्याय, शकुनादि निरूपण, मंडलादि का निर्देश, रणदीक्षाविधि, रामोक्त नीति निर्देश, रत्नसमूह का लक्षण, धनुर्विद्या और व्यवहार प्रदर्शन, देवासुर विमर्दाख्यान, आयुर्वेद निरूपण, गजादि की चिकित्सा, उनकी शान्ति गोनसादि चिकित्सा, अनेक प्रकार की पूजा, विविध प्रकार शान्ति, छन्दशास्त्र, साहित्य, एकार्णादि समाह्वय सिद्ध, शिष्टानुशिष्ट स्वर्गादिवर्ग विशिष्ट कोष, प्रलय समुदाय का लक्षण, शरीरक निरूपण, नरक वर्णन, योगशास्त्र, ब्रह्मशास्त्र और पुराणश्रवण फल यह संपूर्ण आग्नेयपुराण में कहे गये हैं। हे विप्र! यह आग्नेय-पुराण कीर्तन किया।

आजकल जो अग्निपुराण प्रकाशित हुआ है उसका अधिक भाग सूची से मिलने पर भी अनेक अंशों में वह रूपान्तर प्राप्त कर चुका है संभव है कि न मिलने पर किसी विद्वान् ने कुछ अंश बनाया हो या अन्य किसी उपपुराण आदि का पाठ किन्हीं कारणों से इसमें समावेश कर गया हो। इसमें जो पाठान्तर हुआ है वह बहुत न्यून है किन्तु हुआ अवश्य है।

❁ भविष्य ❁

तत्रादिमं स्मृतं सर्वं ब्राह्मं यत्रास्त्युपक्रमः।
सूतशौनकसम्वादे पुराणप्रश्नसंक्रमः॥
आदित्यचरितं प्रायः सर्वाख्यानसमाचितम्।
सृष्टयादिलक्षणोपेतः शास्त्रसर्वस्वरूपकः॥
पुस्तकलेखकलेख्यानां लक्षणञ्च ततः परम्।

संस्काराणाञ्च सर्वेषां लक्षणञ्चात्र कीर्तितम् ॥
अक्षत्यादितिथीनाञ्च कल्पाः सप्त च कीर्तिताः ।
अष्टम्याद्याः शेषकल्पा वैष्णवे पर्वणि स्थिताः ॥
शैवे च कामतो भिन्नाः सौरे चान्त्यकथा च या ।
प्रतिसर्गाह्वयं पश्चान्नानाख्यानसमाचितम् ॥
पुराणस्योपसंहारसहितं सर्वपञ्चमम् ।
एषु पञ्चसु पूर्वस्मिन्ब्रह्मणः महिमाधिकः ॥
धर्मे कामे च मोक्षे तु विष्णोश्चापि शिवस्य च ।
द्वितीये च तृतीये च सौरो वर्गचतुष्टये ॥
प्रतिसर्गाह्वयं त्वन्त्यं प्रोक्तं सर्वकथान्वितम् ।
सभविष्यं विनिर्दिष्टं पर्व व्यासेन धीमता ॥
भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्तितम् ।
गुणानां तारतम्येन समं ब्रह्मेति हि श्रुतिः ॥

नारदपुराण ।

इसके आदि में ब्राह्मपर्व है, इस पर्व में ही इसका उपक्रम है इसके प्रथम में सूत और शौनक सम्वाद में पुराण प्रश्न, सर्वाख्यान युक्त आदित्यचरित्र, सृष्टि आदि के लक्षणयुक्त शास्त्रस्वरूप, पुस्तक लेखक और लेख्य का लक्षण, संस्कार समुदाय का लक्षण, प्रतिपदादि तिथियों के सात कल्प पर्यन्त वर्णित हुये हैं। वैष्णवपर्व में अष्टमी आदि शैवकल्प, शैव पर्व में कामानुसार विभिन्नता, सौरपर्व में अन्त कथा समूह और पुराण के उपसंहार के साथ प्रतिसर्गपर्व में नानाख्यान इस प्रकार पंचपर्व कीर्तित हुये हैं।

द्वितीय विष्णुपर्व में धर्म, काम और मोक्ष विषय में, तृतीय पर्व में शिव की और चतुर्थ में सूर्य की सर्वकथा एवं प्रतिसर्ग नामक शेष पर्व में अवशिष्ट संपूर्ण कथा कही है। धीमान् व्यास ने भविष्य में इस चार प्रकार के पर्व निर्दिष्ट किये हैं इसमें सर्व देव की कथा समभाव से कही है।

महात्मा आतमाराम की लायब्रेरी कोंच ज़िला जालौन में एक हस्तलिखित भविष्यपुराण देखा। इसके पश्चात् बंबई में मुद्रित हुआ भविष्यपुराण अवलोकन

किया। इससे भिन्न और भी कई एक पुस्तकें भविष्यपुराण की देखीं। किन्तु उपरोक्त भविष्यपुराण के पूर्णलक्षण किसी में भी नहीं पाये गये अधिक अंश लक्षण के अनुकूल होने पर भी बहुत अंश प्रतिकूल है। हमारी बुद्धि यह निश्चय नहीं कर सकती कि इन अनेक भविष्यों में कौन कितना ठीक है और कितने अंश में संस्करण हुआ है इसका विचार होना भी कठिन है। अनेक विद्वानों को कोई मण्डली बने और वह सबको आगे रख कर विचार करे तो संभव है कि विवेचन करले परन्तु हमारी बुद्धि से बाहर है।

* ब्रह्मवैवर्त *

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव।
ब्रह्मवैवर्तकं नाम वेदमार्गानुदर्शकम्॥
सावर्णिर्यत्र भगवान्साक्षाद्देवर्षयेर्थितः।
नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमलौकिकम्॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां सारं प्रीतिहरौ हरे।
तयोरभेदसिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम्॥
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम्।
शतकोटिपुराणे तत्संक्षिप्य प्राह वेदवित्॥
व्यासश्चतुर्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्तसंज्ञितम्।
अष्टादशसहस्रंतत्पुराणं परिकीर्तितम्॥
ब्रह्मप्रकृतिविघ्नेशकृष्णखण्डसमाचितम्।
तत्र सूतर्षिसम्वादे पुराणीयंक्रमो मतः॥
सृष्टिप्रकरणं त्वाद्यं ततो नारदवेधसोः।
विवादः सुमहान्यत्र द्वयोरासीत्पराभवः॥
शिवलोकगतिः पश्चाज्ज्ञानलाभः शिवान्मुने।
शिववाक्येन तत्पश्चान्मरीचेर्नारदस्य च॥
गमनं चैव सावर्णे ज्ञानार्थं सिद्धसेविते।
आश्रमे सुमहापुण्ये त्रैलोक्याश्चर्यकारिणि॥

एतद्धि ब्रह्मखण्डं हि श्रुतं पापविनाशनम् ।
ततः सावर्णिसम्वादो नारदस्य समीरितः ॥
कृष्णमाहात्म्यसंयुक्तो नानाख्यानकथोत्तरः ।
प्रकृतेरंशभूतानां कलानाञ्चापि वर्णितम् ॥
माहात्म्यं पूजनाद्यञ्च विस्तरेण यथास्थितम् ॥
एतत्प्रकृतिखण्डं हि श्रुतिभूतिविधायकम् ॥
गणेशजन्मसंप्रश्नं सपुण्यकमहाव्रतम् ।
पार्वत्याः कार्तिकेयेन सहविघ्नेशसंभवः ॥
चरितं कार्तवीर्यस्य जामदग्न्यस्य चाद्भुतम् ।
विवादः सुमहान्पश्चाज्जामदग्न्यगणेशयोः ॥
एतद्धिघ्नेशखण्डं हि सर्वविघ्नविनाशनम् ।
श्रीकृष्णजन्मसंप्रश्नो जन्माख्यानं ततोऽद्भुतम् ॥
गोकुले गमनं पश्चात्पूतनादिवधोऽद्भुतः ।
बाल्यकौमारजालीला विविधास्तत्र वर्णिताः ॥
रासक्रीड़ा च गोपीभिः शारदी समुदाहृता ।
रहस्ये राधया क्रीड़ा वर्णिता बहुविस्तरा ॥
सहाक्रूरेण तत्पश्चान्मथुरागमनं हरेः ।
कंसादीनां वधे वृत्ते स्यादस्य द्विजसंस्कृतिः ॥
काश्यां सन्दीपनेः पश्चाद्विद्योपादानमद्भुतम् ।
यवनस्यवधः पश्चाद्द्वारकागमनं हरेः ॥
नरकादिवधस्तत्र कृष्णेन विहितोऽद्भुतः ।
कृष्णखण्डमिदं विप्र नृणां संसारखण्डनम् ॥

नारदपुराण ।

हे वत्स ! सुनो, तुम्हारे निकट ब्रह्मवैवर्त नामक वेदपथानुदर्शक दशमपुराण कहता हूं, जो कि साक्षात् सावर्णि ने प्रार्थित होकर देवर्षि नारद के निकट अलौकिक पुराणार्थ कहा था । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सबका सार और भगवान् हरि तथा हरि की

प्रीति, इन दोनों की अभेदसिद्धि के निमित्त ही यह उत्तम ब्रह्मवैवर्त प्रवर्तित हुआ है। हमने रथन्तरकल्प का जो वृत्तान्त कहा था, वेदवित् व्यास ने उसको शतकोटि पुराण में संक्षेपरूप से वर्णन किया है, वेदवित् व्यास ने इस ब्रह्मवैवर्तपुराण को ब्रह्म, प्रकृति, गणेश और कृष्णखण्ड नामक चार भागों में विभक्त करके १८००० श्लोकद्वारा कीर्तन किया है। सूत और ऋषि सम्वाद में पुराण का उपक्रम हुआ है।

इसके प्रथम ब्रह्मखण्ड में सृष्टि प्रकरण, फिर नारद और वेधा का विवाद, दोनों का ही पराभव, शिवलोक में गति, नारदमुनि को शिव से ज्ञानलाभ और शिव वाक्य से मरीचि और नारद के ज्ञान लाभार्थ सिद्ध सेवित परम पवित्र त्रैलोक्याश्चर्यकारी आश्रम में गमन, पापनाशक इस ब्रह्मवैवर्त में यह सब वर्णित है।

दूसरा प्रकृतिखण्ड इसमें सावर्णि सम्वाद, कृष्णमाहात्म्ययुक्त नाना आख्यान और प्रकृति के अंशभूत कला समुदाय का माहात्म्य और पूजनादि का विस्तृतरूप से वर्णन हुआ है, इस प्रकृतिखण्ड के श्रवण करने से ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

गणेश जन्म प्रश्न, पार्वती का पुण्यकव्रत, कार्तिकेय और गणेश की उत्पत्ति कार्तवीर्य और जामदग्न्य का अद्भुत चरित, गणेश और जामदग्न्य का घोर विवाद कथन, सर्वविघ्नविनाशक गणेशखण्ड में इतनी बातें कही हैं।

श्रीकृष्णजन्म संप्रश्न, फिर जन्माख्यान, गोकुल में गमन पूतनादि वध, बाल्य और कौमार की विविध लीला, गोपियों के संग श्रीकृष्ण की शारदी रासक्रीड़ा, निर्जन में राधाके साथ क्रीड़ा, फिर हरिके साथ अक्रूर का मथुरागमन, कंसादि का वध, काशी में सान्दीपनि के निकट विद्याग्रहण, यवनका वध, हरि का द्वारकागमन और कृष्ण का नरकासुरादि वध, यह सम्पूर्ण कथा कृष्ण जन्म खण्ड में वर्णित हुई हैं। हे विप्र! इस सब वृत्तान्त के श्रवण करने से मनुष्यों का संसारबंधन कट जाता है।

वर्तमान समय में जो ब्रह्मवैवर्त छपा है वह एकदम अपना रूपान्तर कर गया है उसको आद्य ब्रह्मवैवर्त न कह कर आधुनिक वैष्णव ब्रह्मवैवर्त कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं और कोई दोष नहीं।

❋ लिङ्ग ❋

पुराणोपक्रमे प्रश्नं सृष्टिसंक्षेपतः पुरा।
योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम्॥

लिङ्गोद्भवस्तदर्चा च कीर्तिता हि ततः परम् ।
सनत्कुमारशैलादिसम्वादश्चाथ पावनः ॥
ततो दधीचिचरितं युगधर्मनिरूपणम् ।
ततो भुवनकोषाख्यो सूर्यसोमान्वयस्ततः ॥
ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकं तथा ।
लिङ्गप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् ॥
शिवव्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम् ।
प्रायश्चित्तान्यरिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णनम् ॥
अन्धकाख्यानकं पश्चाद्वाराहचरितं पुनः ।
नृसिंहचरितं पश्चाज्जालन्धरवधस्ततः ॥
शैवं सहस्रनामाथ दक्षयज्ञविनाशनम् ।
कामस्य दहनं पश्चाद्गिरिजायाः करग्रहः ॥
ततो विनायकाख्यानं नृत्याख्यानं शिवस्य च ।
उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः ॥
विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीषकथा ततः ।
सनत्कुमारनन्दीशसम्वादश्च पुनर्मुने ॥
शिवमाहात्म्यसंयुक्तं स्नानयागादिकं ततः ।
सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा ॥
दानानि बहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणं ततः ।
प्रतिष्ठा तत्र गदिता ततोघोरस्य कीर्तनम् ॥
ब्रजेश्वरी महाविद्या गायत्रीमहिमा ततः ।
त्र्यम्बकस्य च माहात्म्यं पुराणश्रवणस्य च ॥
एतस्योपरिभागस्ते लैङ्गस्य कथितो मया ।
व्यासेन हि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचिनः ॥

नारदपुराण ।

इसमें प्रथमतः पुराणोपक्रम प्रश्न और संक्षेप से सृष्टि वर्णन है । इस पूर्वभाग में यागाख्यान, कल्पाख्यान, लिंगोत्पत्ति, और उसकी अर्चना, सनत्कुमार और शैलादि का पवित्र सम्बाद, दधीचिचरित, युगधर्म निरूपण, भुवन कोषाख्यान, सूर्य और सोमवंश, विस्तृत रूपसे सृष्टि, त्रिपुराख्यान, लिंग प्रतिष्ठा, पशुपाश विमोक्षण, समुदय शिवव्रत, सदाचार निरूपण, सर्वविधि प्रायश्चित्त और अरिष्ट काशी और श्रीशैल वर्णन, अन्धकाख्यान, वाराहचरित, नृसिंहचरित, जालन्धर वध, शिवसहस्रनाम, दक्षयज्ञ विनाश, मदनमोहन, गिरिजा का पाणिग्रहण, विनायकाख्यान, शिवका नृत्याख्यान और उपमन्यु कथा आदि का वर्णन है।

हे मुने ! उत्तर भागमें-विष्णुमाहात्म्य, अम्बरीष कथा, सनत्कुमार और नन्दीश सम्बाद, शिवमाहात्म्य, संयुक्त स्नान यागादि, सूर्य पूजा विधि, मुक्तिदायिनी शिव पूजा, बहु प्रकार दान, श्राद्ध प्रकरण, प्रतिष्ठा अघोर कीर्तन, व्रजेश्वरी महाविद्या, और गायत्री की महिमा, त्र्यम्बकमाहात्म्य और पुराण श्रवण माहात्म्य यह समस्त वर्णित हुआ है।

वर्तमान लिंगपुराण प्रायः समस्त ही उपरोक्त लक्षणों से मिलता है अतएव उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं।

❀ वराह ❀

व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठः साक्षान्नारायणो भुवि ।
तत्रादौ शुभसम्वादः स्मृतो भूमिवराहयोः ॥
अथादिकृतवृत्तान्ते रैभस्य चरितं ततः ।
दुर्जयाय च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्प उदीरितः ॥
महातपस आख्यानं गौर्य्युत्पत्तिस्ततः परम् ।
विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्ययोरपि ॥
गणानाञ्च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य च ।
आख्यानं सत्यतपसो व्रताख्यानसमन्वितम् ॥
अगस्त्यंगिश तत्पश्चाद्रुद्रगीता प्रकीर्तिता ।
महिषासुरविध्वंसे माहात्म्यं च त्रिशक्तिजम् ।

पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम् ।
इत्यादिकृतवृत्तान्तं प्रथमो देशनामकम् ॥
भगवद्धर्मकेपश्चाद्व्रततीर्थकथानकम् ।
द्वात्रिंशदपराधानां प्रायश्चित्तं शरीरकम् ॥
तीर्थानाञ्चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम् ।
मथुरायां विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः ॥
वर्णनं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसंगतः ।
विपाकः कर्मणाञ्चैव विष्णुव्रतनिरूपणम् ॥
गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम् ।
इत्येष पूर्वभागोस्य पुराणस्य निरूपितः ॥
उत्तरे प्रविभागेतु पुलस्त्यकुरुराजयोः ।
सम्वादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात्पृथक् ॥
अशेषधर्माश्चाख्याताः पौष्करं पुण्यपर्व च ।
इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तं पापविनाशनम् ॥

नारदपुराण ।

साक्षात् नारायणस्वरूप विद्याप्रवर व्यास ने इसके प्रथम में ही भूमि और वराह का सम्वाद, आदि वृत्तान्त में रैभ्यचरित, श्राद्धकल्प, महातपा का आख्यान, गौरी की उत्पत्ति, विनायक नागगण, सेनानी (कार्तिकेय) आदित्य समुदायगण, देवी, धनद और वृष का आख्यान, सत्यतपा का व्रत, अगस्त्य गीता, रुद्रगीता, महिषासुरध्वंस माहात्म्य, पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान इत्यादि वृत्तान्त प्रथम देशों के नाम और फिर भगवद्धर्म में व्रततीर्थ कथा, द्वात्रिंशत् अपराध का शरीरिक प्रायश्चित्त समुदाय, तीर्थ का पृथक् २ माहात्म्य, मथुरा में विशेष रूप से श्राद्धादि की विधि, ऋषिपुत्र प्रसंग में यमलोक वर्णन, कर्म विपाक, विष्णु व्रत निरूपण, और गोकर्ण माहात्म्य, यह सम्पूर्ण वृत्तान्त इसके पूर्वभाग में निरूपित हुआ है। उत्तरभाग में पुलस्त्य और पुरुराज के सम्वाद में विस्तृत रूप से सर्वतीर्थ का पृथक् २ माहात्म्य अशेष धर्माख्यान, और पुष्कर नामक पुण्यपर्व इत्यादि कथित हुये हैं। तुम्हारे निकट यह पापनाशक वाराहपुराण कीर्तन किया ।

वर्तमान समय में जो वराहपुराण मुद्रित हुये हैं वे इस सूची के अनुकूल नहीं हैं और श्लोक संख्या में भी बहुत न्यूनता है प्रतीत होता है कि यह आदि वराह पुराण नहीं है यह नवीन संस्करण है अधिक विवेचन करना पण्डितमण्डली का काम है।

❀ स्कन्द ❀

(१)—यत्र माहेश्वरा धर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायकाः॥
तस्य माहेश्वरश्चाद्यः खण्डः पापप्रणाशनः।
किञ्चिन्न्यूनार्कसाहस्रो वहुपुण्यो वृहत्कथः॥
सुचरित्रः शतैर्युक्तः स्कन्दमाहात्म्यसूचकः।
यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा॥
दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चने फलम्।
समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं ततः॥
पार्वत्याः समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम्।
कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसंगरः॥
ततः पाशुपताख्यानं चण्डाख्यानसमाचितम्।
दूतप्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागमः॥
ततः कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम्।
धर्मकर्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्तितम्॥
इन्द्रद्युम्नकथा पश्चान्नाड़ीजंघकथाचिता।
प्रादुर्भावस्ततो मह्यं कथा दमनकस्य च॥
महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः।
ततस्तारकयुद्धञ्च नानाख्यानसमाहितम्॥
वधश्च तारकस्याथ पञ्चलिङ्गनिषेवणम्।
द्वीपाख्यानं ततः पुण्यं ऊर्ध्वलोकव्यवस्थितिः॥

ब्रह्माण्डस्थितिमानञ्च वर्करेशकथानकम् ।
महाकालसमुद्भूतिः कथाचास्य महाद्भुता ॥
वासुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं ततः परम् ।
नानातीर्थसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्तितम् ॥
पाण्डवानां कथा पुण्या महाविद्याप्रसाधनम् ।
तीर्थयात्रासमाप्तिश्च कौमारमिदमद्भुतम् ॥
अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा ।
गौरीतपःसमाख्यानं ततस्तीर्थनिरूपणम् ॥
महिषासुरजाख्यानं वधश्चास्य महाद्भुतः ।
शोणाचले शिवास्थानं नित्यदा परिकीर्तितम् ॥
इत्येष कथितः स्कान्दे खण्डेमाहेश्वरोद्भुतः ।
(२)—द्वितीयो वैष्णवः खण्डस्तस्याख्यानानि मे शृणु ॥
प्रथमं भूमिवाराहसमाख्यानं प्रकीर्तितम् ।
यत्र रोचककुम्भस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ॥
कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ।
कुलालाख्यानकं यत्र सुवर्णमुखरीकथा ॥
नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाजकथाद्भुता ।
मतंगाञ्जनसंवादः कीर्तितः पापनाशनः ॥
पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्तितं चोत्कले ततः ।
मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥
इन्द्रद्युम्नस्य चाख्यानं विद्यापतिकथा शुभा ।
जैमिनेः समुपाख्यानं नारदस्यापि वाडव ॥
नीलकण्ठसमाख्यानं नारसिंहोपवर्णनम् ।
अश्वमेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तथा ॥
रथयात्राविधिः पश्चाज्जपस्नानविधिस्तथा ।

दक्षिणामूर्तेराख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः ॥
रथरक्षाविधानञ्च शयनोत्सवकीर्तनम् ।
श्वेतोपाख्यानमंत्रोक्तं वह्न्युत्सवनिरूपणम् ॥
दोलोत्सवो भागवतो व्रतं साम्वत्सराभिधम् ।
पूजा च कामिभिर्विष्णोरुद्दालकनियोगकः ॥
मोक्षसाधनमंत्रोक्तं नानायोगनिरूपणम् ।
दशावतारकथनं स्नानादिपरिकीर्तितम् ॥
ततो बदरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम् ।
अग्न्यादितीर्थमाहात्म्यं वैनतेयशिलाभवम् ॥
कारणं भगवद्वासे तीर्थकापालमोचनम् ।
पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा ॥
ततः कार्तिकमाहात्म्ये माहात्म्यं मदनालसम् ।
धूम्रकाशसमाख्यानं दिनकृत्यानि कार्तिके ॥
पञ्चभीष्मव्रताख्यानं कीर्तिदं भुक्तिमुक्तिदम् ।
तद्व्रतस्य च माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा ॥
पुण्ड्रादिकीर्तनं चात्र मालाधारणपुण्यकम् ।
पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजं फलम् ॥
नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासरकीर्तनम् ।
अखण्डैकादशी पुण्या तथा जागरणस्य च ॥
मत्स्योत्सवविधानञ्च नाममाहात्म्यकीर्तनम् ।
ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम् ॥
मथुरातीर्थमाहात्म्यं पृथगुक्तं ततः परम् ।
वनानां द्वादशानाञ्च माहात्म्यं कीर्तितं ततः ॥
श्रीमद्भागवतस्यात्र माहात्म्यं कीर्तितं परम् ।
वज्रशाण्डिल्यसम्वादो ह्यन्तर्लीला प्रकाशकः ॥

ततो माघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम् ।
नानाख्यानसमायुक्तं दशाध्याये निरूपितम् ॥
ततो वैशाखमाहात्म्ये शय्यादानादिजं फलम् ।
जलदानादिविषयः कामाख्यानमतः परम् ॥
श्रुतदेवस्य चरितं व्याधोपाख्यानमद्भुतम् ।
तथाक्षय्यतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्तनम् ॥
ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रब्रह्माह्वतीर्थके ।
ऋणपापविमोक्षाख्ये तथा धारसहस्रकम् ॥
स्वर्गद्वारं चन्द्रहरिधर्महर्य्युपवर्णनम् ।
स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदा सरयूयुतिः ॥
सीताकुण्डं गुप्तहरिः सरयूघर्घराह्वयः ः
गोप्रचारञ्च दुग्धोदं गुरुकुण्डादिपञ्चकम् ॥
घोषार्कादीनितीर्थानि त्रयोदश ततः परम् ।
गयाकूपस्य माहात्म्यं सर्वाङ्गं विनिवर्तकम् ॥
माण्डव्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् ।
अजितादिमानसादितीर्थानि गदितानि च ॥
इत्येष वैष्णवः खण्डो द्वितीयः परिकीर्तितः ।
(३)—अतः परं ब्रह्मखण्डं मरीचे शृणु पुण्यदम् ॥
यत्र वै सेतुमाहात्म्ये फलं स्नानेक्षणोद्भवम् ।
गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकं ततः ॥
चक्रतीर्थादिमाहात्म्यं देवीतपनसंयुतम् ।
वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादिकीर्तनम् ॥
मङ्गलादिकमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डादिवर्णनम् ।
हनुमत्कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थभवं फलम् ॥
रामतीर्थादिकथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम् ।

शंखादितीर्थमहिमा तथा साध्यामृतादिकः ॥
धनुष्कोट्यादिमाहात्म्यं क्षीरकुण्डादिजं तथा ।
गायत्र्यादिकृतीर्थानां माहात्म्यं चात्र कीर्तितम्
रामनामस्य महिमा तत्वज्ञानोपदेशनम् ।
यात्राविधानकथनं सेतौ मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥
धर्मारण्यस्य माहात्म्यं ततः परमुदीरितम् ।
स्थाणुः स्कन्दाय भगवान्यत्र तत्वमुपादिशत् ॥
धर्मारण्यसुसम्भूतिस्तत्पुण्यपरिकीर्तनम् ।
कर्मसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंशनिरूपणम् ॥
अप्सरस्तीर्थमुख्यानां माहात्म्यं यत्र कीर्तितम् ।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मतत्वनिरूपणम् ॥
देवस्थानविभागश्च वकुलार्ककथा शुभा ।
छत्रानन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतंगिनी ॥
पुण्यदाव्यः समाख्याता यत्रदेव्यः समास्थिताः ।
इन्द्रेश्वरादिमाहात्म्यं द्वारकादिनिरूपणम् ॥
लोहासुरसमाख्यानं गङ्गाकूपनिरूपणम् ।
श्रीरामचरितञ्चैव सत्यमन्दिरवर्णनम् ॥
जीर्णोद्धारस्य कथनं शासनप्रतिपादनम् ।
जातिभेदप्रकथनं स्मृतिधर्मनिरूपणम् ॥
ततस्तु वैष्णवा धर्माः नानाख्यानैरुदीरिताः ।
चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सर्वधर्मनिरूपणम् ॥
दानप्रशंसा तत्पश्चाद्व्रतस्य महिमा ततः ।
तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनं ततः ॥
प्रकृतीनां भिदाख्यानं शालग्रामनिरूपणम् ।
तारकस्य वधोपायस्ताक्ष्यर्चामहिमा तथा ॥

विष्णोः शापश्च वृक्षत्वं पार्वत्यनुनयस्ततः ।
हरस्य ताण्डवं नृत्यं शमनामनिरूपणम् ॥
हरस्य लिंगपूजा च कथा वै जवनस्य च ।
पार्वतीजन्मचरितं तारकस्य वधोऽद्भुतः ॥
प्रणवैश्वर्यकथनं तारकाचरितं पुनः ।
दक्षयज्ञसमाप्तिश्च द्वादशाक्षररूपणम् ॥
ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशार्कजः ।
श्रवणादिकपुण्यञ्च कीर्तिदं धर्मदं नृणाम् ॥
ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुतः ।
पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकर्णमहिमा ततः ॥
शिवरात्रेश्च महिमा प्रदोषव्रतकीर्तनम् ।
सोमवारव्रतञ्चापि सीमन्तिन्याः कथानकम् ॥
भद्रायूत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम् ।
शिवधर्मसमुद्देशो भद्रायूद्वाहवर्णनम् ॥
भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्यकीर्तनम् ।
शवराख्यानकञ्चैव उमामाहेश्वरव्रतम् ॥
रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यकम् ।
श्रवणादिकपुण्यञ्च ब्रह्मखण्डोयमीरितः ॥
अतः परं चतुर्थञ्च काशीखण्डमनुत्तमम् ।
विन्ध्यनारदयोर्यत्र सम्वादः परिकीर्तितः ॥
सत्यलोकप्रभावश्चागस्त्यावासे सुशागमः ।
पतिव्रताचरित्रञ्च तीर्थचर्य्या प्रशंसनम् ॥
ततश्च सप्तपुर्य्याख्या संयमिन्यानिरूपणम् ।
ब्रध्नस्य च तथेन्द्राग्न्योर्लोकाप्तिः शिवशर्म्मणः ॥
अग्नेः समुद्भवश्चैव क्रव्याद्वरुणसम्भवः ।

गन्धवत्यलकापुर्य्या रीश्वर्य्याश्च समुद्भवः ॥
चन्द्रोडुबुधलोकानां कुजेज्यार्कभुवां क्रमात् ।
सप्तर्षीणां ध्रुवस्यापि तपोयोगस्य वर्णनम् ॥
ध्रुवलोककथापुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम् ।
स्कन्दागस्त्यसमालापो मणिकर्णीसमुद्भवः ॥
प्रभावश्चापि गङ्गाया गङ्गानामसहस्रकम् ।
वाराणसीप्रशंसा च भैरवाविर्भवस्ततः ॥
दण्डपाणिज्ञानवाप्योरुद्भवः समनन्तरम् ।
ततःकलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम् ॥
ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रीलक्षणानि च ।
कृत्याकृत्यविनिर्देशो ह्यविमुक्तेशवर्णनम् ॥
गृहस्थयोगिनो धर्म्माः कालज्ञानं ततः परम् ।
दिवोदासकथा पुण्या काशीवर्णनमेव च ॥
यागिचर्या च लोलार्कोत्तरशाम्बार्कजा कथा ।
द्रुपदार्कस्य तार्क्ष्याख्यारुणार्कस्योदयस्ततः ॥
दशाश्वमेधतीर्थाख्यो मन्दराच्च समागमः ।
पिशाचमोचनाख्यानं गणेशप्रेषणं ततः ॥
माया गणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः ।
विष्णुमायाप्रपञ्चाथ दिवोदासविमोक्षणम् ॥
ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्विन्दुमाधवसम्भवः ।
ततो वैष्णवतीर्थाख्यो शूलिनः कौशिकागमः ॥
जैगीषव्येन सम्वादो ज्येष्ठेशाख्या महेशितुः ।
क्षेत्राख्यानं कन्दुकेशव्याघ्रेश्वरसमुद्भवः ॥
शैलेशरत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः ।
देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः ॥

दुर्गाया विजयश्चाथ ओंकारेशस्य वर्णनम् ।
पुनरोंकारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्भवः ।
केदाराख्या च धर्मेशकथा विश्वभुजोद्भवः ॥
वीरेश्वरसमाख्यानं गङ्गामाहात्म्यकीर्तनम् ।
विश्वकर्मेशमहिमा दक्षयज्ञोद्भवस्तथा ॥
सतीशस्यामृतेशादे भुजस्तम्भः पराशरे ।
क्षेत्रतीर्थकदम्बश्च मुक्तिमण्डपसंकथा ॥
विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रा परिक्रमः ।
(५)—अतः परं त्ववन्ताख्यं शृणु खण्डञ्च पञ्चकम् ॥
महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः ।
प्रायश्चित्तविधिश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च सुरागमः ॥
देवदीक्षा शिवस्तोत्रं नानापातकनाशनम् ।
कपालमोचनाख्यानं महाकालवनस्थितिः ॥
तीर्थं कलकलेशस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
कुण्डमप्सरसंज्ञञ्च सर्गे रुद्रस्य पुण्यदम् ॥
कुटुम्बेशविरूपञ्च कर्कटेश्वरतीर्थकम् ।
दुर्गद्वारं चतुःसिन्धुतीर्थं शङ्करवापिका ॥
सकरार्कगन्धवतीतीर्थं पापप्रणाशनम् ।
दशाश्वमेधैकानंशतीर्थञ्च हरिसिद्धिदम् ॥
पिशाचकादियात्रा च हनूमत्कं यमेश्वरौ ।
महाकालेशयात्रा च वाल्मीकेश्वरतीर्थकम् ॥
शुक्रेशभेशोपाख्यानं कुशस्थल्याः प्रदक्षिणाम् ।
अक्रूरमन्दाकिन्यङ्कपादचन्द्रार्कवैभवम् ॥
करभेशकुक्कुटेशलड्डुकेशादितीर्थकम् ।
मार्कण्डेशं यज्ञवापी सोमेशं नरकान्तकम् ॥

केदारेश्वररामेशसौभाग्येशनरार्ककम् ।
केशार्कं भक्तिभेदश्च स्वर्णाक्षरमुखानि च ॥
ओंकारेशादितीर्थानि अन्धकस्तुतिकीर्तनम् ।
कालाख्ये लिङ्गसंख्या च स्वर्णशृङ्गाभिधानकम् ॥
पद्मावतीकुमुद्वत्यमरावतीति नामकम् ।
विशाला प्रतिकल्पा च विधाने ज्वरशान्तिकम् ॥
क्षिप्रास्नानादिकफलं नागोद्गीता शिवस्तुतिः ।
हिरण्याक्षवधाख्यानं तीर्थं सुन्दरकुण्डकम् ॥
नीलगङ्गा पुष्कराख्यं विन्ध्यावासनतीर्थकम् ।
पुरुषोत्तमाधिमासं तत्तीर्थं चाघनाशनम् ॥
गोमती वामने कुण्डे विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थके ॥
महिमा नागपञ्चम्यां नृसिंहस्य जयन्तिका ।
कुटुम्बेश्वरयात्रा च देवसाधककीर्तनम् ॥
कर्कराजाख्यतीर्थञ्च विघ्नेशादिसुरोहणम् ।
रुद्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थनिरूपणम् ॥
यात्राष्टतीर्थजा पुण्या रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ।
धर्मपुत्रस्य वैराग्ये मार्कण्डेयेन सङ्गमः ॥
प्राग्लयानुभवाख्यानममृतापरिकीर्तनम् ।
कल्पे कल्पे पृथक् नाम नर्मदायाः प्रकीर्तितम् ॥
स्तवमार्षं नार्मदञ्च कालरात्रिकथा ततः ।
महादेवस्तुतिः पश्चात्पृथक् कल्पकथाद्भुता ॥
विशालाख्यानकं पश्चाज्जालेश्वरकथा तथा ।
गौरीव्रतसमाख्यानं त्रिपुरज्वालनं ततः ॥
देहपातविधानञ्च कावेरीसङ्गमस्ततः ।

दारुतीर्थं ब्रह्मवर्तं यत्रेश्वरकथानकम् ॥
अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनादं श्रीदारुकम् ।
देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलाक्षं करञ्जकम् ॥
कुण्डलेशं पिप्पलेशं विमलेशञ्च शूलभित् ।
शचीहरणमाख्यातमन्धकस्य वधस्ततः ॥
शूलोभेदोद्भवो यत्र दारधर्माः पृथग्विधाः ।
आख्यानं दीर्घतपस ऋष्यशृंगं कथा ततः ॥
चित्रसेनकथा पुण्या काशिराजस्य मोक्षणम् ।
ततो देवशिलाख्यानं शवरीचरिताचितम् ॥
व्याधाख्यानं ततः पुण्यं पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् ।
आदित्येश्वरतीर्थञ्च शक्रतीर्थकरोटिकम् ॥
कुमारेशमगस्त्येशं च्यवनेशश्च मातृजम् ।
लोकेशं धनदेशञ्च मंगलेशञ्च कामजम् ॥
नागेशञ्चापि गोपालं गौतमं शंखचूड़जम् ।
नारदेशं नन्दिकेशं वरुणेश्वरतीर्थकम् ॥
दधिस्कन्दादितीर्थानि हनूमन्तेश्वरस्ततः ।
रामेश्वरादितीर्थानि सोमेशं पिंगलेश्वरम् ॥
ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतिकेशं जलेशयम् ।
चण्डार्कयमतीर्थञ्च कह्लोड़ीशञ्च नान्दिकम् ॥
नारायणञ्च कोटीशं व्यासतीर्थं प्रभासिकम् ।
नागेशं शंकर्षणकं मन्मथेश्वरतीर्थकम् ॥
एरण्यं संगमं पुण्यं सुवर्णशिलतीर्थकम् ।
करञ्जं कामहं तीर्थं भाण्डीरं रोहिणीभवम् ॥
चक्रतीर्थं धौतपापं स्कान्दमांगीरसाह्वयम् ।
कोटितीर्थमयोन्याख्यमंगराख्यं त्रिलोचनम् ॥

इन्द्रेशं कम्बुकेशञ्च सोमेशं कोहलेशकम् ।
नामर्दं चार्कमाग्नेयं भार्गवेश्वरसत्तमम् ॥
ब्राह्मं दैवञ्च भागेशमादिवारोहणं रवेः ।
रामेशमथ सिद्धेशमाहल्यं कङ्कटेश्वरम् ॥
शाक्रं सौमञ्च नान्देशं तापेशं रुक्मिणीभवम् ।
योजनेशं वराहेशं द्वादशीशिवतीर्थके ॥
सिद्धेशं मंगलेशञ्च लिंगवाराहतीर्थकम् ।
कुण्डेशं श्वेतवाराहं भार्गवेशं रवीश्वरम् ॥
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुंकारस्वामितीर्थकम् ।
संगमेशं नारकेशं मोक्षं सार्पञ्च गोपकम् ॥
नागं शाम्बञ्च सिद्धेशं मार्कण्डाक्रूरतीर्थके ।
कामोदशूलरूपाख्ये माण्डव्यं गोपकेश्वरम् ॥
कपिलेशं पिंगलेशं सूतेशं गांगगौतमे ।
अश्वमेधं भृगुकच्छं केदारेशञ्च पापनुत ॥
कनखलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम् ।
चन्द्रप्रभासमादित्यं श्रीपत्याख्यञ्च हंसकम् ॥
मूलस्थानञ्च शूलेशमाग्नेयं चित्रदैवकम् ।
शिखीशं कोटितीर्थञ्च दशकन्यं सुवर्णकम् ॥
ऋणमोक्षं भारभूतिरत्रास्ते पुंखमुण्डितम् ।
आमलेशं कपालेशं शृंगेरण्डीभवं ततः ॥
कोटितीर्थं लोटनेशं फलस्तुतिरतः परम् ।
कृमिजंगलमाहात्म्ये रोहिताश्वकथा ततः ॥
धुन्धुमारसमाख्यानं वधोपायस्ततोस्य च ।
वधो धुन्धोस्ततः पञ्चात्ततश्चित्रवहोद्भवः ॥
महिमास्य ततश्चण्डीशप्रभावो रतीश्वरः ।

केदारेशं लक्षतीर्थं ततो विष्णुपदिभवम् ॥
मुखारं च्यवनन्धाख्यं ब्रह्मणश्च सरस्ततः ।
चक्राख्यं ललिताख्यानं तीर्थश्च बहुगोमखम् ॥
रुद्रावर्तञ्च मार्कण्डं तीर्थं पापप्रणाशनम् ।
रावणेशं शुद्धपटं लवान्धुप्रेततीर्थकम् ॥
जिह्वोदतीर्थसम्भूतिः शिवोद्भेदं फलश्रुतिः ।
एषखण्डो ह्यवन्त्याख्यः शृण्वतां पापनाशनः ॥

(६)—अतः परं नागराख्यः खण्डः षष्ठोभिधीयते ।
लिंगोत्पत्तिसमाख्यानहरिश्चन्द्रकथा शुभा ॥
विश्वामित्रस्य माहात्म्यं त्रिशंकुस्वर्गतिस्तथा ।
हाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रासुरवधस्तथा ॥
नागबिलं शंखतीर्थमचलेश्वरवर्णनम् ।
चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम् ॥
गयशीर्षवालशाख्यं वालमण्डं मृगाह्वयम् ।
विष्णुपादश्च गोकर्णं युगरूपं समाशयम् ॥
सिद्धेश्वरं नागसरः सप्तर्षेयं ह्यगस्त्यकम् ।
भ्रूणगर्तं नलेशश्च भीष्मदूर्वैरमर्ककम् ॥
शार्मिष्ठं शोभनाथञ्च दौर्गमानर्तकेश्वरम् ।
जलमग्निवधाख्यानं नैःक्षत्रियकथानकम् ॥
रामह्रदं नागपरं जड़लिङ्गञ्च यज्ञभूः ।
मुण्डीरादित्रिकाकञ्च सतीपरिणयस्ततः ॥
वालखिल्यञ्च योगेशं वालखिल्यञ्च गारुड़म् ।
लक्ष्मीशापः साप्तविंशः सोमप्रासादमेव च ॥
अम्बावृद्धं पादुकाख्यं आग्नेयं ब्रह्मकुण्डकम् ।
गोमुख्यं लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा ॥

शनैश्चरं राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वरः ।
कुशेशाख्यं लवणाख्यं लिङ्गं सर्गोत्तमोत्तमम् ॥
अष्टसृष्टिसमाख्यानं दमयन्त्यास्त्रिजातकम् ।
ततोऽस्वारैवती चात्र भट्टिकातीर्थसम्भवम् ॥
क्षेमङ्करी च केदारं शुक्लतीर्थं मुखारकम् ।
सत्यसन्धेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पलाकथा ॥
अटेश्वरं याज्ञवल्क्यं गौर्यं गाणेशमेव च ।
ततो वास्तुपदाख्यानमजागृहकथानकम् ॥
मिष्टान्नदेश्वराख्यानं गाणपत्यत्रयं ततः ।
जावालिचरितञ्चैव वारकेशकथा ततः ॥
कालेश्वर्य्यन्धकाख्यानं कुण्डमाप्सरसं तथा ।
पुष्पादित्यं रोहिताश्वं नगरोत्पत्तिकीर्तनम् ॥
भार्गवं चरितञ्चैव वैश्वामित्रं ततः परम् ।
सारस्वतं पैप्पलादं कंसारीशञ्च पौण्ड्रकम् ॥
ब्रह्मणो यज्ञचरितं सावित्र्याख्यानसंयुतम् ।
रैवतं भर्तृयज्ञाख्यं मुख्यतीर्थनिरीक्षणम् ॥
कौरवं हाटकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रकत्रयम् ।
पौष्करं नैमिषं धार्ममरण्यत्रितयं स्मृतम् ॥
वाराणसी द्वारकाख्यावन्त्याख्येति पुरीत्रयम् ।
वृन्दावनं खाण्डवाख्यमद्वैताख्यं वनत्रयम् ॥
कल्पः शालस्तथानन्दो ग्रामत्रयमनुत्तमम् ।
असिशुक्ला पितृसंज्ञं तीर्थत्रयमुदाहृतम् ॥
अर्वुदो रैवतश्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम् ।
नदीनां त्रितयं गङ्गा नर्मदा च सरस्वती ॥
सार्धकोटित्रयफलमेकैकञ्चैषु कीर्तितम् ।

कूपिकाशंखनीर्थरूत्वामरकं वालमण्डनम् ॥
हाटकेशक्षेत्रफलप्रदं प्रोक्तं चतुष्टयम् ।
शाम्वादित्यः श्राद्धकल्पः यौधिष्ठिरमथान्धकम् ॥
जलशायिचतुर्मास्यमशून्यशयनव्रतम् ।
मंकणेशः शिवरात्रिस्तुलापुरुषदानकम् ॥
पृथ्वीदानं वाणकेशं कपालं मोचनेश्वरम् ।
पापपिण्डं सासलैङ्गं युगमानादिकीर्तनम् ॥
निम्वेशशाकंभर्य्याख्या रुद्रैकादशकीर्तनम् ।
दानमाहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीर्तनम् ॥
इत्येष नागरः खण्डः प्रभासाख्योधुनोच्यते ।
(७)—सोमेशो यत्र विश्वेशोर्कस्थलः पुण्यदो महत् ॥
सिद्धेश्वरादिकाख्यानं पृथगत्र प्रकीर्तितम् ।
अग्नितीर्थं कपर्दीशं केदारेशं गतिप्रदम् ॥
भीमभैरवचण्डीशभास्करांगारकेश्वराः ।
बुधेज्यभृगुसौरेन्दुशिखीशा हरविग्रहाः ॥
सिद्धेश्वराद्याः पञ्चाग्ये रुद्रास्तत्र व्यवस्थिताः ।
वरारोहा ह्यजापाला मंगला ललितेश्वरी ॥
लक्ष्मीशो वाडवेशश्चार्घीशः कामेश्वरस्तथा ।
गौरीशवरुणेशाख्यमुनीषञ्च गणेश्वरम् ॥
कुमारेशञ्च शाकल्यं नकुलोत्तंकगौतमम् ।
दैत्यघ्नेशं चक्रतीर्थं सन्निहत्याह्वयं तथा ॥
भूतेशादीनि लिंगानि आदिनारायणाह्वयम् ।
ततश्चक्रधराख्यानं शाम्वादित्यकथानकम् ॥
कथा कण्टकशोधिन्या महिषघ्न्यास्ततः परम् ।
कपालीश्वरकोटीशवालब्रह्माह्वसत्कथा ॥

नरकेशसम्बर्त्तेशनिधीश्वरकथा ततः ॥
बलभद्रेश्वरस्याथ गंगाया गणपस्य च ।
जाम्बवत्याख्यसरितः पाण्डुकूपस्य सत्कथा ॥
शतमेधलक्षमेधकोटिमेधकथा ततः ।
दुर्वासार्कयदुस्थाने हिरण्यसंगमोत्कथा ॥
नगरार्कस्य कृष्णस्य संकर्षणसमुद्रयोः ।
कुमार्याःक्षेत्रपालस्य ब्रह्मेशस्य कथा पृथक् ॥
पिंगलासंगमेशस्य शंकरार्कघटेशयोः ॥
ऋषितीर्थस्य नन्दार्कत्रितकूपस्य कीर्तनम् ॥
शशोपानस्य पर्णार्कन्यंकुमत्योः कथाद्भुता ।
वराहस्वामिवृत्तान्तं छायालिंगाख्यगुल्फयोः ॥
कथा कनकनंदायाः कुन्तीगंगेशयोस्तथा ।
चमसोद्भेदविदुरत्रिलोकेशकथा ततः ॥
मंकणेशत्रैपुरेशषण्डतीर्थकथा तथा ।
सूर्यप्राचीत्रीक्षद्वयोरुमानाथकथा तथा ॥
भूद्वारमूलस्थलयोश्च्यवनार्केशयोस्तथा ।
अजापालेशवालार्ककुवेरस्थलजा कथा ॥
ऋषितोयाकथा पुण्या संकालेश्वरकीर्तनम् ।
नारदादित्यकथनं नारायणनिरूपणम् ॥
तप्तकुण्डस्य माहात्म्यं मूलचण्डीशवर्णनम् ।
चतुर्वक्त्रगणाध्यक्षकलम्बेश्वरयोः कथा ॥
गोपालस्वामिवकुलस्वामिनोर्मरुती तथा ।
मोक्षार्कोन्नतविघ्नेशजलस्वामिकथा ततः ॥
कालमेघस्य रुक्मिण्या उर्वशीश्वरभद्रयोः ।
शंखावर्तमोक्षतीर्थगोष्पदाच्युतसेवनम् ॥

मालेश्वरस्य हुंकारकूपचण्डीशयोः कथा ।
आशापुरस्थविघ्नेशकलाकुण्डकथाद्भुता ॥
कपिलेशस्य च कथा जरद्गवशिवस्य च ।
नलकर्कोटेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा ॥
नारदेशमंत्रभूतीदुर्गाकूटगणेशजा ।
सुपर्णेलाख्यो भैरव्योर्भल्लतीर्थभवा कथा ॥
कीर्तनं कर्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च ।
वहुस्वर्णेशशृङ्गेशकोटीश्वरकथा ततः ॥
मार्कण्डेश्वरकोटीशदामोदरगृहोत्कथा ।
स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डं कुन्तीभीमेश्वरौ तथा ॥
मृगीकुण्डस्य सर्वस्वं क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम् ।
दुर्गाविल्वेशगंगेशरैवतानां कथाद्भुता ॥
ततोर्बुदे शुभ्रकथा अचलेश्वरकीर्तनम् ।
नागतीर्थस्य च कथा वसिष्ठाश्रमवर्णनम् ॥
भद्रकर्णस्य माहात्म्यं त्रिनेत्रस्य ततः परम् ।
केदारस्य च माहात्म्यं तीर्थागमनकीर्तनम् ॥
कोटीश्वररूपतीर्थहृषीकेशकथास्ततः ।
सिद्धेशशुक्रेश्वरयोर्मणिकर्णीशकीर्तनम् ॥
पंगुतीर्थं यमतीर्थं वाराहीतीर्थवर्णनम् ।
चन्द्रप्रभासपिण्डोदश्रीमातुः शुक्लतीर्थजम् ॥
कात्यायन्याश्च माहात्म्यं ततः पिण्डार्ककस्य च ।
ततः कनखलस्याथ चक्रमानुषतीर्थयोः ॥
कपिलाग्नितीर्थकथा तथा रक्तानुवन्धजा ।
गणेशपाटेश्वरयोर्यात्राया मुद्गलस्य च ॥
चण्डीस्थानं नागभवं शिरःकुण्डमहेशजा ।

कामेश्वरस्य मार्कण्डेयोत्पत्तेश्च कथा ततः ॥
उद्दालकेशसिद्धेशगर्त्ततीर्थकथा पृथक् ।
श्रीमद्देवमतोत्पत्तिर्व्यासगौतमतीर्थयोः ॥
चन्द्रोद्भेदेशानलिंगब्रह्मस्थानोद्भवोहनम् ।
त्रिपुष्करं रुद्रहृदं गुहेश्वरकथा शुभा ॥
अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च ।
महौजसः प्रभावस्य जम्बूतीर्थस्य वर्णनम् ॥
गङ्गाधरमित्रकयोः कथा चाथ फलस्तुतिः ।
द्वारकायाश्च माहात्म्ये चन्द्रशर्मकथानकम् ॥
जागराद्याख्यव्रतं च वृतमेकादशीभवम् ।
महाद्वादशिकाख्यानं प्रह्लादर्षिसमागमः ॥
दुर्वासस उपाख्यानं यात्रोपक्रमकीर्तनम् ।
गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्यां स्नानादिजं फलम् ॥
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं गोमत्युदधिसंगमः ।
सनकादिहृदाख्यानं नृगतीर्थकथा ततः ॥
गोप्रचारकथा पुण्या गोपीनां द्वारकागमः ।
गोपीश्वरं समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादिकीर्तनम् ॥
पञ्चनद्यागमाख्यानं नानाख्यानसमाचितम् ।
शिवलिंगमहातीर्थकृष्णपूजादिकीर्तनम् ॥
त्रिविक्रमस्य मूर्त्याख्या दुर्वासः कृष्णसंकथा ।
कुशदैत्यवधोर्चाख्या विशेषार्चनजं फलम् ॥
गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमनकीर्तनम् ।
कृष्णमन्दिरसंप्रेक्षं द्वारवत्याभिषेचनम् ॥
तत्रतीर्थावासकथा द्वारकापुण्यकीर्तनम् ।
इत्येष सप्तमः प्रोक्तः खण्डः प्राभासिको द्विज ॥
स्कान्दे सर्वोत्तरकथा शिवमाहात्म्यवर्णने ॥ नारदपुराण ।

इसमें षण्मुखकर्तृक तत्पुरुषकल्प में सर्वसिद्धिविधायक माहेश्वर के सम्पूर्ण धर्म प्रकाशित हुए हैं।

(१-माहेश्वरखण्ड में) वृहत् कथा युक्त माहेश्वरखण्ड ही इस पुराण का आदि और सर्वपापनाशक है। यह माहेश्वरखण्ड पुण्यजनक और कुछ कम बारह सहस्र श्लोकों में परिपूर्ण है यह स्कन्द माहात्म्यसूचक है। इसके केदार माहात्म्य के आदि में पुराणोपक्रम हुआ है। पश्चात् दत्तयज्ञ कथा, शिवलिंगार्चन में फल, समुद्र मंथनाख्यान, देवेन्द्रचरित, पार्वती का उपाख्यान, और विवाह, कुमारोत्पत्ति, तारक युद्ध, पाशुपति का आख्यान, चण्डी का आख्यान, दूतप्रवर्तनाख्यान, नारद का समागम, कुमार-माहात्म्य में पंचतीर्थ कथा, धर्म, वर्मनृपाख्यान, महीसागर कीर्तन, इन्द्रद्युम्न कथा, नाड़ीजंघ कथा, महीप्रादुर्भाव, दमनक कथा, महीसागर संयोग, कुमारेश कथा, तारक युद्ध, तारकवध, पंचलिंग निवेशन, द्वीपाख्यान, ब्रह्माण्डस्थितिमान, वर्करेश कथा, वासुदेव माहात्म्य, कोटितीर्थ, नाना तीर्थ समाख्यान, पाण्डवों की कथा, महाविद्या प्रसाधन, तीर्थ यात्रा समाप्ति, अरुणाचल माहात्म्य, सनक ब्रह्म सम्बाद, गौरीतपो वृत्तान्त, और उस २ तीर्थ का निरूपण, महिषासुरजाख्यान और वध तथा शोणाचल में शिवावस्थान वर्णित हुआ है।

(२-वैष्णवखण्ड में) इसके प्रथम में भूमि वराह समाख्यान, रोचक कुध्र का माहात्म्य, कमला की कथा और श्रीनिवासस्थिति, फिर कुलाल आख्यान, सुवर्ण मुखरी कथा, नानाख्यानयुक्त भरद्वाज कथा, मतंगांजन सम्वाद, पुरुषोत्तम माहात्म्य, मार्कण्डेय और अम्बरीष आदि का समाख्यान, इन्द्रद्युम्नाख्यान, विद्यापति कथा, जैमिनीय उपाख्यान, नारदोपाख्यान, नरसिंह उपाख्यान वर्णन, अश्वमेध कथा, ब्रह्मलोक गति, रथयात्रा विधि, जन्मस्थान विधि, दक्षिणामूर्ति उपाख्यान, गुण्डिचा आख्यान, रथरक्षा विधान, वह्न्युत्सव निरूपण, भगवान् का दोलोत्सव, सम्वत्सर नामक व्रत, कामियों की विष्णु पूजा, उद्दालक नियोग, मोक्षसाधन, नाना योग निरूपण, दशावतार कथन, स्नानादि कीर्तन पापनाशन, वदरिका माहात्म्य, अग्नि आदि तीर्थ माहात्म्य, वैनतेय शिलाभव, भगवद्वास का कारण, कपालमोचन तीर्थ, पंचधारा नामक तीर्थ, मेरुसंस्थापन, मदनालस माहात्म्य, धूम्रकेश समाख्यान, कार्तिकमासीय दिन कृत्य, पंचभीष्म व्रताख्यान, और व्रत माहात्म्य में स्नान विधि, पुंड्रादि कीर्तन, मालाधारण, पुण्य पञ्चामृत स्नान, पुण्य घंटा नाद आदि के निमित्त फल, नाना पुष्प और तुलसीदलार्चन फल, नैवेद्य माहात्म्य, हरिवासर कीर्तन, अखण्डैकादशी पुण्य, जागरण पुण्य, मत्स्योत्सव विधान, नाम माहात्म्य कीर्तन,

ध्यानादि पुण्य कथा, मथुरा माहात्म्य, मथुरा तीर्थ माहात्म्य, द्वादशवन माहात्म्य, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, ब्रज शाण्डिल्य माहात्म्य, स्नान दान और जप का फल, जल दानादि विषय, कामाख्यान, श्रुतदेव चरित, व्याधोपाख्यान, अक्षय्या तृतीयादि की कथा और विशेष पुण्य कीर्तन, चन्द्रहरि और धर्महरि वर्णन, स्वर्ण वृष्टि का उपाख्यान, तिलोदा, सरयूसंगम में सीताकुण्ड, गुप्तहरि, गोप्रचार, दुग्धोद, गुरुकुण्डादि पंचक, घोषार्कादिक त्रयोदश तीर्थ, सर्वपापनाशक गयाकूप माहात्म्य, माण्डव्याश्रम प्रमुख तीर्थ और मासादि तीर्थ, यह सम्पूर्ण विषय वर्णित है।

(३—ब्रह्मखण्ड में) हे मरीचे! पुण्यप्रद ब्रह्मखण्ड भी श्रवण करो। इसके सेतु माहात्म्य स्नान और दर्शन का फल, गालव की तपश्चर्या, राक्षसाख्यान, चक्रतीर्थादि माहात्म्य, वेताल तीर्थ महिमा, मंगलादि माहात्म्य, ब्रह्मकुण्डादि वर्णन, हनुमत् कुण्ड महिमा, अगस्त्य तीर्थ फल, रामतीर्थादि कथन, लक्ष्मीतीर्थ निरूपण, शंखादि तीर्थ महिमा, धनुष्कोट्यादि माहात्म्य, क्षीर कुण्डादि की महिमा, गायत्र्यादि तीर्थ माहात्म्य, वामनाथ महिमा, तत्त्व ज्ञानोपदेश, यात्रा विधान, धर्मारण्य माहात्म्य, धर्मारण्य समुद्भव, कर्मसिद्धि समाख्यान, ऋषिवंश निरूपण, अप्सरातीर्थ का माहात्म्य वर्णन और आश्रम समुदाय का धर्म निरूपण, देवस्नान विभाग, वकुलार्क कथा, इन्द्रेश्वरादि माहात्म्य, द्वारकादि निरूपण, लोहासुर का आख्यान, गंगाकूप निरूपण, श्रीरामचरित, सत्यमन्दिर वर्णन, जीर्णोद्धार कथन, शासन प्रतिपादन, जाति भेद कथन, स्मृति धर्म निरूपण, वैष्णव धर्म कथन, चतुर्मास्य सर्व धर्म निरूपण, दान प्रशंसा, व्रतमहिमा, तपस्या और पूजा का सच्छिद्र कथन, प्रकृति का भिन्नाख्यान, शालग्राम निरूपण, तारकवधोपाय, त्र्यक्षरार्चन महिमा, विष्णु वृक्षत्वशाप और पार्वतीय अनुनय, हर का ताण्डवनृत्य, रामनाम निरूपण, यवन कथा के निमित्त हर का लिंग पतन, पार्वती जन्म, तारका चरित, दक्ष यज्ञ समाप्ति, द्वादशाक्षर निरूपण, जन्मयोग समाख्यान, और श्रवणादि पुण्य यह सम्पूर्ण वर्णित हुआ है।

ब्रह्मखण्ड के उत्तरभाग में—शिव महिमा, पंचाक्षर महिमा, गोकर्ण माहात्म्य, शिवरात्रि महिमा, भद्रायूत्पत्ति कथन, सदाचार निरूपण, शिवधर्म समुद्देश, भद्रायु का विवाह वर्णन, भद्रायु महिमा, भस्म माहात्म्य कीर्तन, शवराख्यान, उमामहेश्वर व्रत, रुद्राक्ष माहात्म्य, रुद्राध्याय और श्रवणादिक पुण्य, यह सम्पूर्ण कीर्तित हुआ है।

इसके अनन्तर अनुत्तम ४ चतुर्थ काशीखण्ड कहा जाता है। इसमें प्रथमतः विन्ध्य और नारद का सम्वाद, सत्यलोक प्रभाव, अगस्त्यावास में सुरागमन, पतिव्रता चरित्र और तीर्थचर्या प्रशंसा, पश्चात् सप्तपुरी, संयमिनी निरूपण, शिवशर्मा को

सूर्य इन्द्र और अग्निलोक प्राप्ति, अग्नि की उत्पत्ति, वरुणोत्पत्ति, गंधवती, अलकापुरी और ईश्वरी के समुत्पत्ति क्रम में चन्द्र, बुध, कुज, गुरु और सूर्यलोक, सप्तर्षि, ध्रुव तथा तपोलोक का वर्णन, पवित्र ध्रुवलोक कथा, सत्यलोक वर्णन, स्कन्द और अगस्त्य का आलापन, मणिकर्णिका समुद्भव, गंगा का प्रभाव, गंगाके सहस्र नाम, वाराणसी प्रशंसा, भैरवाविर्भाव, दण्डपाणि और ज्ञानवापी का उद्भव, कलावती का आख्यान, सदाचार निरूपण, ब्रह्मचारी आख्यान, स्त्रीलक्षण, कृत्याकृत्य निर्देश, अविमुक्तेश्वर वर्णन, गृहस्थ और योगियोंका धर्मकालज्ञान, दिवोदास कथा, काशी वर्णन, योगोचर्या, लोलार्क और शाल्वार्क की कथा, द्रुपदार्क, तार्क्ष्याख्य, अरुणार्क का उदय, दशाश्वमेध तीर्थाख्यान, मन्दर से यातायात, पिशाचमोचनाख्यान, गणेशप्रेरण, माया गणपति का पृथिवी में प्रादुर्भाव, विष्णु माया प्रपंच, दिवोदास विमोक्षण, पंचनदोत्पत्ति, विंदुमाधव सम्भव, वैष्णव तीर्थाख्यान, भृङ्गिका कौशिकागम, ज्येष्ठेश, जैमीषव्य के साथ सम्वाद, क्षेत्राख्यान, कुन्दकेश और व्याघ्रेश्वरोत्पत्ति, शैलेश, रत्नेश और कृत्तिवास का सम्वाद, देवताओं का अधिष्ठान, दुर्गासुर का पराक्रम, दुर्गा की विजय, ओंकारेश वर्णन, ओंकार माहात्म्य, त्रिलोचन, समुद्भव, केदाराख्यान, धर्मेश कथा, विल्वभुज कथा, वीरेश्वर समाख्यान, गंगा माहात्म्य कीर्तन, सत्येश और अमृतेशादि पाराशर का भुजस्तम्भ, क्षेत्रतीर्थ समूह, मुक्ति मण्डप कथा, विश्वेश विभव और यात्रा यह सम्पूर्ण विषय निरूपित हुए हैं।

इसके अनन्तर अवन्ती नामक ५ पंचमखण्ड सुनो। इसमें महाकालाख्यान, ब्रह्मशीर्षच्छेद, प्रायश्चित्तविधि, अग्नि उत्पत्ति, सुरागमन, देवदीक्षा शिवस्तोत्र, कपालमोचनाख्यान, महाकालवनस्थिति, कलकलेश तीर्थ, अप्सरा नामक कुण्ड, मर्कटेश्वर तीर्थ, स्वर्गद्वार, चतुःसिन्धु तीर्थ, शंकरवापिका, सकराक गन्धर्व तीर्थ, दशाश्वमेध तीर्थ पिशाचकादि यात्रा, महाकालेश यात्रा, वल्मीकेश्वर तीर्थ, सुकेश और नक्षत्रेश का उपाख्यान, कुशस्थली प्रदक्षिण और अक्रूर मन्दाकिनी, अक्षपाद, चन्द्र सूर्य का वैभव, करभेश, कुक्कुटेश और लड्डुकेश आदि तीर्थ, मार्कण्डेयेश, यज्ञवापी, सोमेश, नरकान्तक, केदारेश्वर, रामेश, सौभाग्येश, नरार्क, केशार्क, और शक्तिभेद आदि तीर्थ, अन्धकस्तुति कीर्तन, त्रिमास्नानादिफल, शिवस्तुति, हिरण्याक्षवधाख्यान, सुन्दर कुण्ड, अघनाशन, पुरुषोत्तम तीर्थ, विष्णु के सहस्र नाम, वीरेश्वर सरोवर, कालभैरव तीर्थ, नागपञ्चमी महिमा, नृसिंह जयन्तिका, मुकुटेश्वर यात्रा, देवसाधक कीर्तन, कर्कराज तीर्थ, रुद्रकुण्ड आदि में बहुतीर्थ निरूपण, रेवा माहात्म्य, धर्म पुत्र का मार्कण्डेय के साथ मिलन, पूर्वलयानुभवाख्यान, अमृत कीर्तन, कल्प २ में नर्मदा के नाम का पृथक्त्व, ऋषि और नर्मदा का स्तव, कालरात्रि कथा, महादेव स्तुति,

पृथक् कल्प कथा, विशल्याख्यान, त्रिपुरदहन, देहपातविधान, कावेरीसंगम, दारुतीर्थ, अग्नितीर्थ, रवितीर्थ, नर्मदेश आदि शचीहरण, अन्धकासुरवध, शूलभेदोद्भव, भिन्न २ दानकर्म, दीर्घतपा का आख्यान, ऋष्यशृङ्ग कथा, चैत्रसेन कथा, काशिराज का मोक्षण, देवशिलाख्यान, शबरीचरित्र, व्याधाख्यान, पुष्करिण्यर्क तीर्थ, आदित्येश्वर तीर्थ, शक्र तीर्थ, करोटिश, कुमारेश, अगस्त्येश, च्यवनेश, मातृज, लोकेश, धनेश, मंगलेश, कामज, नारदेश, नन्दिकेश, और वरुणेश्वर आदि तीर्थ, दधिस्कन्दादि तीर्थ, रामेश्वरादि तीर्थ, सोमेश, पिंगलेश्वर, ऋणमोक्ष, कपिलेश, पूतिकेश, जलेशय, और चण्डार्कादि तीर्थ, कह्लोडीश, नन्दिक, नारायण, कोटीश और व्यास तीर्थ, प्रभासिक, नागेश, संकर्षणक, और मन्मथेश्वर तीर्थ, एरण्डी संगम, सुवर्णशिला, करंज और कामह तीर्थ, भाण्डीर तीर्थ, चक्र तीर्थ, स्कान्द, आंगिरस, अंगराख्य, त्रिलोचन, इन्द्रेश, कम्बुकेश, सोमेश, कोहलेश, नार्मद, देवभागेश, आदिवाराह, रामेश, सिद्धेश, आहल्य, कंकटेश्वर, शात्रु, सौम, नान्देश, तापेश, रुक्मिणीभव, योजनेश, वराहेश, सिद्धेश, मंगलेश और लिंग, वाराह आदि तीर्थ, कुण्डेश, श्वेतवाराह, भार्गवेश, रवीश्वर और शुक्ल आदि तीर्थ, हुंकारस्वामि तीर्थ, संगमेश, नारकेश, मोक्ष, सार्प, गोप, नाग, शाम्ब, सिद्धेश, मर्कण्ड और अक्रूरादि तीर्थ, कामोद, शूलारोप, माण्डव्य, गोपकेश्वर, कपिलेश, पिंगलेश, भूतेश, गांगगौतम, अश्वमेध, भृगुकच्छ, केदारेश, कनखलेश, जालेश, शालग्राम वराह, चन्द्रप्रभा, आगत्याख्य, हंसक, मूलस्थान, शूलेश, चित्रदेवक, शिल्पीश कोटि तीर्थ, दशकन्या, सुवर्णक, ऋणमोक्ष, आदि तीर्थ, कृमिजंगल माहात्म्य, रोहिताश्व कथा, धुन्धुमार समाख्यान, चित्रमहोद्भव, चण्डीश प्रभाव और केदारेश, लक्षतीर्थ, विष्णुपदी तीर्थ, च्यवन, अन्धाख्य, ब्रह्म सरोवर, चक्राख्य, ललिताख्यान, बहुगोमय, रुद्रावर्त, मार्कण्डेय, रावणेश, शुद्धपट, देवान्धु, प्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थोद्भव और शिवोद्भव आदि तीर्थ यह सम्पूर्ण वर्णित हुये हैं इसके श्रवण करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं।

(६—नागरखण्ड) इसमें लिंगोत्पत्ति, हरिश्चन्द्र कथा, विश्वामित्र माहात्म्य, त्रिशंकु की स्वर्ग गति, हाटकेश्वर माहात्म्य, वृत्रासुर वध, नागबिल, शंखतीर्थ, अचलेश्वर वर्णन, चमत्कार पुराख्यान, गयशीर्ष, बालशाख्य, बालमण्ड, मृगाह्वय, विष्णुपाद, गोकर्ण, युगरूप, सिद्धेश्वर, नागसुर, सप्तार्षेय, अगस्त्य कथा, भ्रूणगर्त, नलेश शर्मिष्ठ, शोभनाथ, और जमदग्निवधोपाख्यान, निःक्षत्रिय कथा, रामह्रद, नागपुर, जड़लिंग, मुण्डीरादि त्रिकार्क, सती परिणय, बालखिल्य, योगेश, गारुड़, लक्ष्मीशाप, सोमप्रसाद, अम्बावृद्ध, पादुकाख्य, आग्नेय, ब्रह्मकुण्ड, गोमुख्य, लोहयष्ठ, आख्य, अजापालेश्वरी, शनैश्चर, राजवापी, रामेश, लक्ष्मणेश, कुशेश, और लवेश लिंग,

रेवती, आदि तीर्थ, सत्य सन्धेश्वराख्यान, कर्णोत्पला कथा, अटेश्वर, याज्ञवल्क्य, गौर्य, गणेश और वास्तु समाख्यान, अजागह कथा, मिष्टान्नदेश्वराख्यान, और गाणपत्यत्रय, वाजिल चरित, मकरेशकथा, कालेश्वरी, अन्धकाख्यान, अप्सराकुण्ड, पुष्पादित्य, रोहिताश्व और नागरोत्पत्ति कीर्तन, भार्गव और विश्वामित्र चरित, सारस्वत पैप्पलाद, कंसारीश पौंड्रिक और ब्रह्मा की यज्ञ कथा, सावित्र्याख्यान, रैवत भर्तृयज्ञ मुख्य तीर्थ निरूपण, कौरव, हाटकेश और प्रभास क्षेत्र, पौष्कर नैमिष और धर्मारण्य वाराणसी द्वारका और अवन्त्याख्य तीन पुरी, वृन्दावन खण्ड, और अद्वैकारण्य तीन वन कल्पशाख्य और नन्दाख्य तीन ग्राम, असिशुक्ला और पितृसंज्ञक तीन तीर्थ, श्री अर्वुद और रैवत नामक तीन पर्वत, गंगा, नर्मदा और सरस्वती नामक तीन नदी, कूपिका, शंखतीर्थ, अमरक और बालमण्डन तीर्थ, शाम्बादित्य, श्राद्धकल्प, यौधिष्ठिर सम्वाद, अन्धक, जलशायी, चातुर्मास्य, अशून्यशयनव्रत, मंकणेश, शिवरात्रि, तुलापुरुषदान, पृथ्वीदान, बालकेश, कपालमोचनेश्वर पापिण्डप, साप्तलिंग और युगमानादि कीर्तन, शाकंभर्याख्यान, एकादश रुद्र कीर्तन, दान माहात्म्य और द्वादशादित्य कीर्तन यह सम्पूर्ण वर्णित हुये हैं अब प्रभासाख्य सातवांखण्ड कहा जाता है।

(७—प्रभासखण्ड में) सोमेश, विश्वेश, अर्कस्थल, सिद्धेश्वरादि का आख्यान, अग्नितीर्थ, कपर्दीश, केदारेश तीर्थ, भीम, भैरव, चक्रीश, भास्कर और अंगारकेश्वर आदि हर विग्रह, उस स्थान में सिद्धेश्वरादि के निमित्त और भी पंचरुद्र का अवस्थान, वरारोहा, अजपाला, मंगला और ललितेश्वरी, लक्ष्मीश, बाड़वेश, अर्घ्येश, कामेश्वर, गौरीश, वरुणेश, गणेश्वर, कुमारेश, साकल्य, शकुन, उतंक, गौतम, दैत्यघ्नेश, और चक्रतीर्थ, भूतेशादि लिंग, आदि नारायण, चन्द्रधराख्यान, शाम्बादित्य कथा, कण्टकशोधिनी कथा, महिषघ्नी की कथा, कपालीश्वर, कोटीश और बालब्रह्म नामक कथा, नरकेश, सम्वर्तेश, और निधीश्वर कथा, बलभद्रेश्वर कथा, गंगा, गणपति जाम्बवती नदी और पाण्डुकूप की कथा, शतमेध, लक्षमेध, और कोटिमेधकथा, दुर्वासादि की कथा, नगरार्क, कृष्ण, संकर्षण, समुद्र, कुमारी, मोक्षपाल और ब्रह्मेश को कथा, पिंगला, संगमेश संकरार्क, घटेश, ऋषितीर्थ और नन्दार्क, त्रितकूप कीर्तन, शशोपान, पर्णार्क और न्यंकुमती को कथा, वाराह स्वामी वृत्तान्त, छाया लिंगाख्य और गुल्फ कथा, कनकनन्दी, कुम्भी और गंगेश कथा, चमसोद्भेद, विदुर और त्रिलोकेश कथा, मंकणेश, त्रिपुरेश और षण्डतीर्थ कथा, सूर्य, प्राची, त्रीक्षण, और उमानाथ कथा, भृंगार, शूलस्थल, च्यवन और अर्केश की कथा, अजापालेश, बालार्क और कुबेर स्थलकथा, पवित्र ऋषितोया कथा, संगमेश्वर कीर्तन नारदादित्य कथन, नारायण निरूपण, तप्तकुण्ड माहात्म्य, मूलचण्डीश वर्णन, चतुर्वक्र गणाध्यक्ष और कलम्बेश्वर

कथा, गोपालस्वामी और वकुलस्वामी, मरुतीकथा, क्षेमार्क, विघ्नेश, और जलस्वामि कथा कालमेघ, रुक्मिणी, उर्वशीश्वर, भद्र, शंखावर्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पद, अच्युत गृह, मालेश्वर, हुंकार, और कूप चण्डीश कथा, कापिलेश कथा, जरद्गव शिवकथा, नल, कर्कटेश्वर और हाटकेश्वर, जरद्गवेशा आदि की कथा, सुपर्णेश, भैरवी, और भल्लतीर्थ, कर्दमाल और गुप्त सोमेश्वर का कीर्तन, वहुस्वर्णेश, भृङ्गेश और कोटीश्वर कथा, मार्कण्डेश, कोटीश दामोदर कथा, स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुन्तीश, भीमेश, मृगीकुण्ड, सर्वस्वक्षेत्र, छत्राविल्वेश, गंगेश, रैवतादि की कथा, स्वभूकथा, अचलेश्वर कीर्तन, नागतीर्थ कथा, वसिष्ठाश्रम वर्णन, कर्णमाहात्म्य, त्रिनेत्र माहात्म्य, केदार माहात्म्य, तीर्थागमन कीर्नन, कोटीश्वर, रूपतीर्थ, हृषीकेश कथा, सिद्धेश, शुक्रेश और मणिकर्णीश कीर्तन, पंकुतीर्थ, यमतीर्थ, और वाराही तीर्थ वर्णन, चन्द्रप्रभा, सपिण्डोद, स्त्रीमाहात्म्य और शुक्लतीर्थ माहात्म्य, कात्यायनी माहात्म्य, पिण्डारक, कनखल, चक्र, मानुष और कपिलाग्नि तीर्थ कथा, चण्डीस्थानादि कथा, कामेश्वर और मार्कण्डेयोत्पत्ति कथा, उद्दालकेश और सिद्धेशतीर्थ कथा, श्रीदेवमाता की उत्पत्ति, व्यास और गौतम तीर्थ की कथा, कुलसन्ता का माहात्म्य, चन्द्रोद्भेदादि कथा, काशीक्षेत्र, उमा और महेश्वर का बृत्तान्त, महौजा का प्रभाव, जम्बूतीर्थ वर्णन, गंगाधर और मिश्रक की कथा, द्वारकामाहात्म्य, चन्द्रशर्म कथा, जागराख्य व्रत, एकादशीव्रत, महाद्वादशी आख्यान, प्ह्लादर्षि समागम, दुर्वासा का उपाख्यान, यात्रोपक्रम कीर्तन, गोमती की उत्पत्ति कीर्तन, चक्रतीर्थ माहात्म्य, गोमतो का समुद्र संगम, सनकादि ह्रदाख्यान, नृपतीर्थ कथा, गोप्रचार कथा, गोपियों का द्वारकागमन, गोपियों का समाख्यान, ब्रह्मतीर्थादि कीर्तन, पंचनद्यागमाख्यान, शिवलिंग, महातीर्थ और कृष्णपूजादि कीर्तन, त्रिविक्रम मूर्त्याख्यान, दुर्वासा और कृष्ण कथा, कुशदैत्यवध, विशेषार्चन में फल, गोमती और द्वारका में तीर्थ गमन कीर्तन, श्रीकृष्णमन्दिर संप्रेक्षण, द्वारवत्यभिषेचन, उस स्थान में तीर्थवास कथा, एवं द्वारका पुण्य कीर्तन। हे द्विज, यह प्रभास नामक सप्तमखण्ड कहा गया।

यह पुराण खण्डों में विभक्त है और उक्त सूची के समस्त लक्षण इसमें पाये जाते हैं।

* वामन *

पुराणप्रश्नः प्रथमं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः।
कपालमोचनाख्यानं दक्षयज्ञविहिंसनम्॥

हरस्य कालरूपाख्या कामस्य दहनं ततः ।
प्रह्लादनारायणयोर्युद्धं देवासुराह्वयम् ॥
सुकेश्यर्कसमाख्यानं ततो भुवनकोषकम् ।
ततः काम्यव्रताख्यानं श्रीदुर्गाचरितं ततः ॥
तपतीचरितं पश्चात्कुरुक्षेत्रस्य वर्णनम् ।
सरमाहात्म्यमतुलं पार्वतीजन्मकीर्तनम् ॥
तपस्तस्या विवाहश्च गौर्य्युपाख्यानकं ततः ।
ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः ॥
ततोन्धकवधाख्यानं साधोपाख्यानकं ततः ।
जावालिचरितं पश्चादरजायाः कथाद्भुता ॥
अन्धकेश्वरयोर्युद्धं गणत्वं चान्धकस्य च ।
मरुतां जन्मकथनं वलेश्च चरितं ततः ॥
ततस्तु लक्ष्म्याश्चरितं त्रैविक्रममतः परम् ।
प्रह्लादतीर्थयात्रायां प्रोच्यन्ते तत्कथाः शुभाः ॥
ततश्च धुन्धुचरितं प्रेतोपाख्यानकं ततः ।
नक्षत्रपुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः ॥
त्रिविक्रमचरित्रान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवोत्तमः ।
प्रह्लादवलिसम्वादे सुतले हरिशंसनम् ॥
इत्येष पूर्वभागोस्य पुराणस्य तवोदितः ।
श्रृणु तस्योत्तरं भागं वृहद्वामनसंज्ञकम् ॥
माहेश्वरी भगवती सौरी गाणेश्वरी तथा ।
चतस्रः संहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसंख्यया ॥
माहेश्वर्यान्तु कृष्णस्य तद्भक्तानाञ्च कीर्तनम् ।
भगवत्या जगन्मातुरवतारकथाद्भुता ॥
सौर्य्यां सूर्यस्य महिमा गदितः पापनाशनः ।

गाणेश्वर्यां गणेशस्य चरितञ्च महेशितुः ॥
इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्रतम् ।
पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने ॥
ततो नारदतः प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना ।
व्यासात्तु लब्धवान्वत्स तच्छिष्यो रोमहर्षणः ॥
स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्य एव च ।
एवं परम्पराप्राप्तं पुराणं वामनं शुभम् ॥

नारदपुराण ।

इसके प्रथम में पुराण प्रश्न, ब्रह्मशीर्षछेद और कपालमोचनाख्यान पश्चात् दक्ष-यज्ञध्वंस, हर की कालरूपाख्या, मदनदहन, प्रह्लाद और नारायण का युद्ध, सुकेशी और अर्क समाख्यान, भुवनकोश, कामव्रताख्यान, श्रीदुर्गाचरित, तपतीचरित, कुरुक्षेत्र वर्णन, सरोमाहात्म्य, पार्वतीजन्म कीर्तन, सती की तपस्या और विवाह, गौरी का उपाख्यान, कौसकी उपाख्यान कुमारचरित, अन्धकवधाख्यान, साधोपाख्यान, जाबालिचरित, अन्धक और ईश्वर का युद्ध, अन्धक को गणत्वप्राप्ति, देवगण की जन्म-कथा, बलिचरित, लक्ष्मीचरित, त्रिविक्रमचरित, प्रह्लाद की तीर्थयात्रा उपलक्ष में उसकी कथा, धुन्धुचरित, प्रेतोपाख्यान, नक्षत्र पुरुषाख्यान, श्रीदामचरित, त्रिविक्रम चरितान्त में ब्रह्मप्रोक्त उत्तम स्तव, तथा प्रह्लाद और बलिसम्वाद में सुतल में हरि का वास, यह सम्पूर्ण विषय पूर्वभाग में है।

इसका बृहद्वामन नामक उत्तरभाग सुनो—इसमें माहेश्वरी, भगवती, सौरी और गाणेश्वरी नामक चार संहिता हैं, प्रत्येक संहिता एक सहस्र श्लोक से पूर्ण है, माहेश्वरी में कृष्ण और उनके भक्तों का कीर्तन, भगवती में जगन्माता के अवतार की कथा, सौरी में पापनाशन सूर्यमाहात्म्य और गाणेश्वरी में गणेशचरित वर्णित है।

यह वामनपुराण प्रथम पुलस्त्य ने नारद के निकट कहा था पश्चात् नारद के निकट से महात्मा व्यास मुनि ने प्राप्त किया, हे वत्स, व्यास के निकट से उनके शिष्य रोमहर्षण ने इसको पाया और उन्होंने ही नैमिषारण्यवासी ऋषियों के निकट इसको प्रकट किया इस प्रकार यह परम्परा से चला आता है। उपलब्ध वामनपुराण उपरोक्त सूची से बराबर मिलता है, कुछ अंश नहीं मिलते इसका कारण यह है कि उपलब्ध पुराण पूर्ण संख्या में नहीं मिला।

कूर्म्म

यत्र ब्राह्मयां पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने ।
नानाकथाप्रसंगेन नृणां सद्गतिदायकाः ॥
तत्र पूर्वविभागे तु पुराणोपक्रमः पुरा ।
लक्ष्मीप्रद्युम्नसम्वादः कूमर्षिगणसंकथा ॥
वर्णसमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्तनम् ।
कालसंख्यासमासेन लयान्ते स्तवनं विभोः ॥
ततः सक्षेपतः सर्गः शाङ्करं चरितं तथा ।
सहस्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम् ॥
भृगुवंशसमाख्यानं ततः स्वायम्भुवस्य च ।
देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयज्ञहतिस्ततः ॥
दक्षसृष्टिकथा पश्चात्कश्यपान्वयकीर्तनम् ।
आत्रेयवंशकथनं कृष्णस्य चरितं शुभम् ॥
मार्कण्डकृष्णसम्वादो व्यासपाण्डवसंकथा ।
युगधर्म्मानुकथनं व्यासजैमिनिकीकथा ॥
वाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम् ।
त्रैलोक्यवर्णनश्चैव वेदशाखानिरूपणम् ॥
उत्तरेस्य विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः ।
व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्मप्रबोधिनी ॥
नानाविधानं तीर्थानां माहात्म्यश्च पृथक् ततः ।
नानाधर्मप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता ॥
अतः परं भगवतीसंहितार्थनिरूपणे ।
कथिता यत्र वर्णानां पृथग्वृत्तिरुदाहृता ॥

(तदुत्तरभागीयभगवत्याख्यद्वितीयसंहितायाः पञ्चपादेषु)—

पादेस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ।
सदाचारात्मिका वत्स भोगसौख्यविवर्द्धनी ॥
द्वितीये क्षत्रियाणान्तु वृत्तिः सम्यक् प्रकीर्तिता ।
यया त्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेच्छिवम् ॥
तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ।
यया चरितया सम्यक् लभते गतिमुत्तमाम् ॥
चतुर्थेस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ।
यदा सन्तुष्यतिश्रीशो नृणां श्रेयोविवर्द्धनः ॥
पञ्चमेस्य ततः पादे वृत्तिः शङ्करजोदिता ।
यया चरितमाप्नोति भाविनी मुत्तमां जनिम् ॥
इत्येश पञ्चपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने ।
तृतीयात्रोदिता सौरी नृणां कामविधायिनी ॥
षोढ़ा षट्कर्म्मसिद्धिः सा बोधयन्ती च कामिनाम् ।
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता ॥
चतुष्पदी द्विजादीनां साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी ।

नारदपुराण ।

यहां अनेक प्रकार के ब्राह्मण धर्मों का कथन है और अनेक कथाओं के प्रसंग से कहे हुये धर्म मनुष्यों को सद्गतिदायक हैं।

(पूर्वभाग में)—इसके प्रथम में पुराणोपक्रम, फिर लक्ष्मी और प्रद्युम्न सम्वाद, कूर्म और ऋषियों का सम्वाद, वर्णाश्रमाचार कथा, जगदुत्पत्ति कीर्तन, संक्षेप से काल-संख्या, लयान्त में भगवान् का स्तव, संक्षेप से सृष्टि, शंकरचरित, पार्वती के सहस्र नाम, योग निरूपण, भृगुवंश समाख्यान, स्वयंभु और देवादि की उत्पत्ति, दक्ष-यज्ञध्वंस, दक्षसृष्टि कथा, कश्यपवंश कीर्तन, आत्रेयवंश कथन, कृष्णचरित, मार्कण्ड और कृष्ण संवाद, व्यास और पाण्डव संवाद, युगधर्मानुकथन, व्यास और जैमिनी की कथा, वाराणसी और प्रयाग माहात्म्य, त्रैलोक्य वर्णन और वेद शाखा निरूपण।

(उत्तरभाग में)—इसमें प्रथमतः ईश्वरीगीता, व्यासगीता, नाना विधतीर्थ माहात्म्य,

अनेक धर्म कथा और ब्रह्मसंहिता और पश्चात् भागवती संहितार्थ निरूपण तथा सवर्ण समुदाय की पृथग् वृत्ति निरूपित हुई है।

(उत्तरभाग की भगवत्याख्य दूसरी संहिता में)--इसके प्रथमपाद में ब्राह्मणों की व्यवस्थिति, द्वितीयपाद में क्षत्रियों की सम्यक् रूप से वृत्ति निरूपण, तृतीयपाद में वैश्य जाति को वृत्ति कथन, चतुर्थपाद में शूद्रों की वृत्ति कथन और पंचमपाद में संकरों की वृत्ति कल्पित हुई है। हे मुने, यह पंचपदी द्वितीय संहिता कही गई। इसकी तीसरी सौरी संहिता मनुष्यों को कामदायिनी और चौथी वैष्णवी संहिता मोक्षदायिका है। चतुष्पदी संहिता द्विजातियों को साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है।

नारदपुराण में जो कूर्मपुराण का लक्षण लिखा है वह कूर्मपुराण में अनुमानन आधा पाया जाता है और इस कूर्मपुराण में आदि पुराण के भी कुछ लक्षण पाये जाते हैं इतने पर भी जो कूर्मपुराण उपलब्ध हुआ है वह छः हजार संख्या वाला है शेष बारह हजार का अभी पता ही नहीं चलता।

मत्स्य।

मनुमत्स्यसुसम्वादो ब्रह्माण्डवर्णनं ततः।
ब्रह्मदेवासुरोत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च॥
मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम्।
मन्वन्तरसमुद्देशो वैन्यराज्याभिवर्णनम्॥
सूर्य्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसङ्गमनं तथा।
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च॥
पितृतीर्थप्रचारश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च।
कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा॥
कार्तवीर्य्यस्य चरितं वृष्टं वंशानुकीर्तनम्।
भृगुशापस्तथा विष्णोर्दशधा जन्म च क्षितौ॥
कीर्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनः परः।
क्रियायोगस्ततः पश्चात्पुराणं परिकीर्तितम्॥

व्रतं नक्षत्रपुरुषं मार्तण्डशयनं तथा ।
कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद्रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम् ॥
तड़ागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च ।
सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च ॥
तथानन्ततृतीयाया रसकल्याणिनीव्रतम् ।
तथैवानन्दकार्यश्च व्रतं सारस्वतं पुनः ॥
उपरागाभिषेकश्च सप्तमीशयनं तथा ।
भीमाख्या द्वादशी तद्वदनंगशयनं तथा ॥
अशून्यशयनं तद्वत्तथैवांगारकव्रतम् ।
सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादशीव्रतम् ॥
मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च ।
ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी ॥
तथा सर्वफलत्यागः सूर्य्यवारव्रतं तथा ।
संक्रातिस्वपनं तद्वद्विभूतिद्वादशीव्रतम् ॥
षष्टिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः ।
प्रयागस्य तु माहात्म्यं द्वीपलोकानुवर्णनम् ॥
तथान्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च ।
भवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुरोद्योतनं तथा ॥
पितृप्रवरमाहात्म्यं मन्वन्तरविनिर्णयः ।
चतुर्युगस्य सम्भूतिर्युगधर्मनिरूपणम् ॥
वज्रांगस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च ।
तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुकीर्तनम् ॥
पार्वतीसम्भवस्तद्वत्तथा शिवतपोवनम् ।
अनंगदेहदाहश्च रतिशोकस्तथैव च ॥
गौरी तपोवनं तद्वत्शिवेनाथ प्रसादनम् ।

पार्वतीऋषिसम्वादस्तथैवोद्वाहमंगलम् ॥
कुमारसम्भवस्तद्वत्कुमारविजयस्तथा ।
तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम् ॥
पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम् ।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च ॥
प्रवरानुक्रमस्तद्वत्पितृगाथानुकीर्तनम् ।
तथोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च ॥
ततः सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मस्तथैव च ।
विविधोत्पातकथनं ग्रहशान्तिस्तथैव च ॥
यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमंगलकीर्तनम् ।
वामनस्य तु माहात्म्यं वाराहस्य ततः परम् ॥
समुद्रमथनं तद्वत्कालकूटाभिशातनम् ।
देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्यास्तथैव च ॥
प्रतिमालक्षणं तद्वद्देवतास्थापनं तथा ।
प्रसाद लक्षणं तद्वन्मण्डपानां च लक्षणम् ॥
भविष्यराज्ञामुद्देशो महादानानुकीर्तनम् ।
कल्पानुकीर्तनं तद्वत्पुराणेऽस्मिन्प्रकीर्तितम् ॥

नारदपुराण ।

इसके प्रथम में मनु और मत्स्य का सम्वाद, पश्चात् ब्रह्माण्ड वर्णन, ब्रह्मा और देवासुर की उत्पत्ति, मारुत की मदनद्वादशी, लोकपाल पूजा, मन्वन्तर निर्देश, वैन्य राज्य वर्णन, सूर्य वैवस्वतोत्पत्ति, बुधसंगम, पितृवंशानुकथन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ प्रचार, सोमोद्भव, सोमवंश कीर्तन, ययाति चरित और वंशानुकीर्तन, भृगुशाप, विष्णु के दशावतार, पुरुवंश कीर्तन, हुताशनवंश, क्रियायोग, पुराणकीर्तन, नक्षत्रपुरुषव्रत, मार्कण्ड शयन, कृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्रव्रत, तड़ागविधिमाहात्म्य, पादपोत्सर्ग, सौभाग्य शयन, अगस्त्यव्रत, अनन्ततृतीयाव्रत, रस कल्याणीव्रत, आनन्दकारीव्रत, सारस्वतव्रत, उपरागाभिषेक, सप्तमीशयन, भीमाद्वादशीव्रत, अनंग शयनव्रत, अशून्य शयनव्रत, अंगारकव्रत, सप्तमी सप्तकव्रत, विशोक द्वादशीव्रत, मेरुप्रदान, ग्रहशान्ति,

ग्रहस्वरूप कथन, शिवचतुर्दशी, सूर्यवारव्रत, संक्रांति स्नान, विभूति द्वादशीव्रत, षष्ठीव्रत माहात्म्य, स्नान, त्रिविक्रम प्रयाग माहात्म्य, द्वीपलोकानुवर्णन, अन्तरिक्ष, ध्रुव माहात्म्य, सुरेन्द्रगण का भवन, त्रिपुर प्रभाव पितृ प्रवर माहात्म्य, मन्वन्तर निर्णय, चतुर्वर्ग की उत्पत्ति, तारकोत्पत्ति, तारकासुरमाहात्म्य, ब्रह्मदेवानुकीर्तन, पार्वती सम्भव, शिवतपोवन, अनंगदहन, पार्वती ऋषि संवाद, विवाह मंगल, कुमारोत्पत्ति, कुमारविजय, तारकवध, नरसिंह वर्णन, पद्मोद्भव, विसर्ग, अन्धकवध, वाराणसीमाहात्म्य, नर्मदामाहात्म्य, प्रवरानुक्रम, पितृकथानुकीर्तन, उभयमुखीदान, कृष्णार्जन दान, सावित्र्युपाख्यान, राजधर्म, विविध उत्पात कथन, ग्रह शान्ति, यात्रा निमित्त कथन, स्वप्न मंगल कीर्तन, वामन और वाराह माहात्म्य, समुद्रमन्थन, कालकूटाभिशातन, देवासुर संघर्षण, वास्तुविद्या, प्रतिमा लक्षण, देवता स्थापन, प्रासाद लक्षण, मण्डपलक्षण, भविष्य राजगण का कथन, महादानकीर्तन और कल्पकीर्तन, इस पुराण में यह सम्पूर्ण विषय कीर्तित हुए हैं। उपलब्ध मत्स्यपुराण उपरोक्त सूची से मिलता है।

* गरुड़ *

पुराणोपक्रमो यत्र सर्गसंक्षेपतस्ततः ।
सूर्य्यादिपूजनविधिर्दीक्षाविधिरतः परम् ॥
श्रद्धादिपूजा ततः पश्चान्नवव्यूहार्चनं द्विज ।
पूजाविधानञ्च ततः वैष्णवं पञ्जरं तथा ॥
योगाध्यायस्ततो विष्णोर्नामसाहस्रकीर्तनम् ।
ध्यानं विष्णोस्ततः सूर्यपूजा मृत्युञ्जयार्चनम् ॥
मालामंत्राः शिवार्चाथ गणापूजा ततः परम् ।
गोपालपूजा त्रैलोक्यमोहनश्रीधरार्चनम् ॥
विष्णवर्चा पंचतत्वार्चा चक्रार्चा देवपूजनम् ।
न्यासादिसंध्योपास्तिश्च दुर्गा चाथ सुरार्चनम् ॥
पूजा माहेश्वरी चातः पवित्रारोहणार्चनम् ।
मूर्तिध्यानं वास्तुमानं प्रासादानाञ्च लक्षणम् ॥

प्रतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक् पूजा विधानतः ।
योगोष्टाङ्गो दानधर्मः प्रायश्चित्तं निधिक्रिया ॥
द्वीपेशनरकाख्यानं सूर्यव्यूहश्च ज्योतिषम् ।
सामुद्रिकं स्वरज्ञानं नवरत्नपरीक्षणम् ॥
माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
ततो मन्वन्तराख्यानं पृथक् पृथग्विभागशः ॥
पित्राख्यानं वर्णधर्मा द्रव्यशुद्धिसमर्पणम् ।
श्राद्धं विनायकस्यार्चा ग्रहयज्ञस्तथाश्रमाः ॥
मननाख्या प्रेताशौचं नीतिसारो व्रतोक्तयः ।
सूर्यवंशः सोमवंशोवतारकथनं हरेः ॥
रामायणं हरिवंशो भारताख्यानकं ततः ।
आयुर्वेदे निदानं प्राक् चिकित्सा द्रव्यजागुणाः ॥
रोगघ्नं कवचं विष्णोर्गारुडं त्रैपुरो मनुः ।
प्रश्नचूड़ामणिश्चान्ते हयायुर्वेदकीर्तनम् ॥
औषधीनामकथनं ततो व्याकरणोहनम् ।
छन्दःशास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधिः स्मृतः ॥
तर्पणं वैश्वदेवं च संध्या पार्वणकर्म च ।
नित्यश्राद्धं सपिण्डाख्यं धर्मसारोघनिष्कृतिः ॥
प्रतिसंक्रम उक्तःस्याद्युगधर्माः कृतेः फलम् ।
योगशास्त्रं विष्णुभक्तिर्नमस्कृतिफलं हरेः ॥
माहात्म्यं वैष्णवं चाथ नारसिंहस्तवोत्तमम् ।
ज्ञानामृतं गुह्याष्टकं स्तोत्रं विष्णवर्चनाह्वयम् ॥
वेदान्तसांख्यसिद्धान्तं ब्रह्मज्ञानं तथात्मकम् ।
गीतासारफलोत्कीर्तिः पूर्वखण्डोयमीरितः ॥
अथास्यैवोत्तरखण्डे प्रेतकल्पः पुरादितः ।

यत्र तार्क्ष्येण संपृष्टो भगवानाह वाडवः ॥
धर्मप्रकटनं पूर्वयोनीनां गतिकारणम् ।
दानाधिकं फलं चापि प्रोक्तमत्रौर्द्ध्वदेहिकम् ॥
यमलोकस्य मार्गस्य वर्णनञ्च ततः परम् ।
षोड़शश्राद्धफलकं वृत्राणाञ्चात्र वर्णितम् ॥
निष्कृतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम् ।
प्रेतपीड़ाविनिर्देशः प्रेतचिह्ननिरूपणम् ॥
प्रेतानां चरिताख्यानं कारणं प्रेततां प्रति ।
प्रेतकृत्यविचारश्च सपिण्डकरणोक्तयः ॥
प्रेतत्वमोक्षणाख्यानं दानानि च विमुक्तये ।
आवश्यकोत्तमं दानं प्रेतसौख्यकरं हितम् ॥
शारीरकविनिर्देशो यमलोकस्य वर्णनम् ।
प्रेतत्वोद्धारकथनं कर्मकर्तृविनिर्णयः ॥
मृत्योः पूर्वक्रियाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम् ।
मध्यं षोड़शकं श्राद्धं स्वर्गप्राप्तिक्रियोहनम् ॥
सूतकस्याथ संख्यानं नारायणवलिक्रिया ।
वृषोत्सर्गस्यमाहात्म्यं निषिद्धपरिवर्जनम् ॥
अपमृत्युक्रियोक्तिश्च विपाकः कर्मणां नृणाम् ।
कृत्याकृत्यविचारश्च विष्णुध्यानं विमुक्तये ॥
स्वर्गतौ विहिताख्यानं स्वर्गसौख्यनिरूपणम् ।
भूर्लोकवर्णनं चैव सप्तधा लोकवर्णनम् ॥
पञ्चोर्द्ध्वलोककथनं ब्रह्माण्डस्थितिकीर्तनम् ।
ब्रह्माण्डानेकचरितं ब्रह्मजीवनिरूपणम् ॥
आत्यान्तिकलयाख्यानं फलस्तुति निरूपणम् ।
इत्येतद्गारुड़ं नाम पुराणं भक्तिमुक्तिदम् ॥

नारदपुराण ।

(पूर्वखण्ड)—इसके प्रथम में सर्ग संक्षेप से पुराणोपक्रम और पश्चात् सूर्यादि पूजाविधि, दीक्षाविधि, श्रीआदिपूजा, नवव्यूहादि अर्चना, पूजाविधान, वैष्णव पञ्जर, योगाध्याय, विष्णुके सहस्रनाम कीर्तन, विष्णुध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युंजयपूजा, मालामंत्र, शिवार्चन, गणपूजा, गोपालपूजा, श्रीधरार्चन, विष्णुपूजा, पंचतत्वार्चन, चक्रार्चन, देवपूजा, न्यासादि, सन्ध्योपासन, दुर्गार्चन, सुरार्चन, माहेश्वरीपूजा, पवित्रारोहणार्चन, मूर्तिध्यान, वास्तुमान, प्रासाद लक्षण, सर्वदेव प्रतिष्ठा, अष्टांगयोग, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेश, नरकाख्यान, सूर्यव्यूह, ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरज्ञान, नवरत्न परीक्षा, तीर्थ समुदाय का माहात्म्य, उत्तम गयामाहात्म्य, पृथक् पृथक् रूप से मन्वन्तराख्यान, पित्राख्यान, वर्ण धर्म, द्रव्य शुद्धि, श्राद्ध, विनायकार्चना, ग्रहयज्ञ, आश्रम, प्रेताशौच, नीतिसार, सूर्यवंश, सोमवंश, हरिअवतार कथा, रामायण, हरिवंश, भारताख्यान, आयुर्वेदनिदान, चिकित्सा द्रव्यगुण, विष्णुकवच, गारुड़ और त्रैपुरमंत्र, प्रश्नचूड़ामणि, हयायुर्वेद कीर्तन, औषधी नाम कीर्तन, व्याकरण और छन्दशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, वैश्वदेवतर्पण, सन्ध्या पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डाख्यश्राद्ध, धर्मसार, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, हरिनमस्कारफल, वैष्णवमाहात्म्य, नारसिंहस्तव, ज्ञानामृत, गुह्याष्टक स्तोत्र, विष्णु की अर्चा, वेदान्त, सांख्य, सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान और गीतासार फल कीर्तन, विष्णु की अर्चा।

अनन्तर इसके उत्तरखण्ड में प्रेतकल्प वर्णित हुआ है। जिसमें गरुड़के पूछने पर भगवान् द्वारा धर्म प्रकटन, सर्वयोनि समुदाय का र्गातकारण, दानाधिक फल, और और्द्ध्व दैहिक क्रिया कही गई है। और यमलोक मार्ग का वर्णन, षोड़श श्राद्ध का फल, यम मार्ग निष्कृति, धर्मराजक वैभव, प्रेत पीड़ा निर्देश, प्रेतचिह्न निरूपण, प्रेतगण का चरिताख्यान, प्रेतत्व के प्रति कारण, प्रेतकत्व विचार, सपिण्ड करणोक्ति, प्रेतत्व मोक्ष कथन, मुक्ति के निमित्तदान, प्रेत सौख्य का आवश्यकीय दान, शारीरक निर्देश, यमलोक वर्णन, प्रेतत्व उद्धार, कर्म कर्तृक विनिर्णय, मृत्यु की पूर्व क्रिया कथन, कर्म निरूपण, षोड़शश्राद्ध, सूतक संख्यान, नारायणवलि क्रिया, वृषोत्सर्गमाहात्म्य, निषिद्ध परित्याग, अपमृत्युक्रिया उक्ति, मनुष्यगण का कर्म विपाक, कृत्याकृत्य विचार, विष्णुध्यान, स्वर्ग गति सम्बन्ध में विहिताख्यान, स्वर्गसुख निरूपण, भूलोक वर्णन, सप्तलोक वर्णन, ऊर्द्ध्वलोक कथन, ब्रह्माण्डस्थिति कीर्तन, ब्रह्माण्ड के बहुचरित, ब्रह्म जीव निरूपण, आत्यन्तिकलय कथन और फल स्तुति निरूपण यह सम्पूर्ण कीर्तन हुआ है। यह गारुड़ नामक पुराण भक्ति और मुक्ति देता है।

उपलब्ध गरुड़पुराण ठीक गरुड़पुराण है उपरोक्त सूची के अनुसार कथायें प्रायः पाई जाती हैं।

* ब्रह्माण्ड *

प्रक्रियाख्योनुषङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः ।
चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि ॥
पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागोत्र समुदाहृतः ।
तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरोमतः ॥

तत्र पूर्व भागे प्रक्रिया पादे—

आदौ कृतसमुद्देशो नैमिषाख्यानकं ततः ।
हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनमेव च ॥
एष वै प्रथमः पादो द्वितीयं शृणु मानद ।

पूर्वं भागे अनुषङ्ग पादे--

कल्पमन्वन्तराख्यानं लोकज्ञानं ततः परम् ।
मानसीसृष्टिकथनं रुद्रप्रसववर्णनम् ॥
महादेवविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम् ।
अग्नीनां विषयश्चाथ कालसद्भाववर्णनम् ॥
प्रियव्रतान्वयोद्देशः पृथिव्यायामविस्तरः ।
वर्णनं भारतस्यास्य ततोन्येषां निरूपणम् ॥
जम्ब्वादिसप्तद्वीपाख्या ततोधोलोकवर्णनम् ।
ऊर्द्ध्वलोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम् ॥
आदित्यव्यूहकथनं देवग्रहानुकीर्तनम् ।
नीलकण्ठाह्वयाख्यानं महादेवस्य वैभवम् ॥
अमावस्यानुकथनं युगतत्वनिरूपणम् ।
यज्ञप्रवर्तनं चाथ युगयोरण्डयोः कृतिः ॥
युगप्रजालक्षणञ्च ऋषिप्रवरवर्णनम् ।
वेदानां व्यसनाख्यानं स्वायम्भुवनिरूपणम् ।
शेषमन्वन्तराख्यानं पृथिवीदोहनं ततः ॥

चाक्षुषेद्यतने सर्गो द्वीतीयोंघ्रिःपुरोदले ।
अथोपोद्धातपादे तु सप्तर्षिपरिकीर्तनम् ॥
प्राजापत्याचयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवम् ।
ततो जयाभिव्याहारौ मरुदुत्पत्तिकीर्तनम् ॥
काश्यपेयानुकथनमृषिवंशनिरूपणम् ।
पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम् ॥
वैवस्वतसमुत्पत्तिः सृष्टिस्तस्य ततः परम् ।
मनुपुत्राचयश्चातो गान्धर्वस्य निरूपणम् ॥
इक्ष्वाकुवंशकथनं वंशोऽत्रेः सुमहात्मनः ।
अमावसोराचयश्च राजेश्वरितमद्भुतम् ॥
ययातिचरितश्चाथ यदुवंशनिरूपणम् ।
कार्तवीर्यस्य चरितं जामदग्न्यं ततः परम् ॥
वृष्णिवंशानुकथनं सगरस्याथ सम्भवः ।
भार्गवस्याथ चरितं तथा कार्त्तवधाश्रयम् ॥
सगरस्याथ चरितं भार्गवस्य कथा पुनः ।
देवासुराहवकथा कृष्णाविर्भाववर्णने ॥
इलस्य च स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीर्तितः ।
विष्णुमाहात्म्यकथनं बलिवंशनिरूपणम् ॥
भविष्यराजचरितं संप्राप्तेथ कलौयुगे ।
एवमुद्धातपादोयं तृतीयो मध्यमे दले ॥
चतुर्थमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे ।
वैवस्वतान्तराख्यानं विस्तरेण यथातथम् ॥
पूर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते ।
भविष्याणां मनूनां च चरितं हि ततः परम् ॥
कल्पप्रलयनिर्देशः कालमानं ततः परम् ।

लोकाश्चतुर्दश ततः कथिता मानलक्षणैः ॥
वर्णनं नरकानां च विकर्माचरणैस्ततः ।
मनोमयपुराख्यानं लयप्राकृतिकस्ततः ॥
शैवस्याथ पुरस्यापि वर्णनञ्च ततः परम् ।
त्रिविधाद्गुणसम्वंधाज्जन्तूनां कीर्तिता गतिः ॥
अनिर्देश्या प्रतर्क्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्णनं हि ततः परम् ॥
इत्येष उपसंहारः पादो वृत्तः सचोत्तरः ।
चतुष्पादं पुराणं ते ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ॥
अष्टादशमनौपम्यं सारात्सारतरं द्विज ।
ब्रह्मांण्डं च चतुर्लक्षं पुराणत्वेन पठ्यते ॥
तदेव चास्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् ।
पाराशर्य्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद ॥
वस्तुदृष्टाथ तेनैव मुनीनां भवितात्मनाम् ।
मत्वा श्रुत्वा पुराणानि लोकेभ्यः प्रचकाशिरे ॥
मुनयो धर्मशीलास्ते दीनानुग्रहकारिणः ।
यथा वेदं पुराणं तु वसिष्ठाय पुरोदितम् ॥
तेन शक्तिसुतायोक्तं जातूकर्ण्यानुतेन च ।
व्यासलब्धं ततश्चैतत्प्रभञ्जनमुखोद्गतम् ॥
प्रमाणीकृतलोकेस्मिन्प्रावर्तयदनुत्तमम् ।

नारदपुराण ।

प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात और उपसंहार नामक इस पुराण के चार पाद हैं। दो पाद द्वारा इसका पूर्व भाग है, तीसरे पाद का मध्यभाग है और चौथे पाद द्वारा उत्तरभाग कल्पित हुआ है।

(१ प्रक्रियापाद)—इसके प्रथम में कृत समुद्देश पश्चात् नैमिषाख्यान हिरण्यगर्भोत्पत्ति और कथन इत्यादि विषय वर्णित हैं।

(२ अनुषंग पाद) — इसमें कल्प मन्वन्तराख्यान, लोकज्ञान, मानसीसृष्टिकथन, रुद्रप्रसववर्णन, महादेव विभूति, ऋषिसर्ग, अग्निगण का निश्चय, काल सद्भाव वर्णन, प्रियव्रताचार निर्देश, पृथिवी का दैर्घ्य और विस्तार, भारतवर्ष वर्णन, जम्ब्वादि सप्तद्वीपवर्णन, अधोलोक वर्णन, ऊर्द्ध्वलोकानुकथन, ग्रहचार आदित्य व्यूह कथन, देवग्रहानुकीर्तन, नीलकण्ठाख्यान, महादेव का वैभव, अवस्था कथन, युगतत्वनिरूपण, यज्ञ प्रवर्तन, शेषयुग का कार्य, युग प्रजा लक्षण, ऋषि प्रवर वर्णन, देवगण का व्यसनाख्यान, स्वायम्भुव निरूपण, शेषमन्वन्तराख्यान और पृथिवीदोहन यह सम्पूर्ण कीर्तित हुआ है।

(मध्यम उपोद्घातपाद)—इसमें सप्तर्षि कीर्तन, प्रजापति समूह और उससे देवादि की उत्पत्ति, जयाभिव्याहार, मरुदुत्पत्ति कीर्तन, काश्यपेयानुकथन, ऋषिवंश निरूपण, पितृकल्पानुकथन, श्राद्धकल्प, वैवस्वतोत्पत्ति, वैवस्वत सृष्टि, मनुपुत्रसमूह, गान्धर्व निरूपण, इक्ष्वाकुवंश कथन, अत्रिवंश कथन, राजिरचरित, ययातिचरित, यदुवंश निरूपण, कार्तवीर्यचरित, जामदग्न्यचरित, वृष्णिवंशानुकथन, सगर संभव, भार्गवचरित, समरचरित, भार्गव कथा, देवासुर संग्राम कथा, कृष्णाविर्भाव वर्णन, सूर्यस्तव, विष्णुमाहात्म्य, वलिवंशनिरूपण, और कलियुग उपस्थित होने पर भविष्य राजचरित, (उत्तरभाग उपसंहारपाद) अनन्तर उपसंहार नामक चौथा खण्ड कहता हूं।

इसके पूर्व में वैवस्वतान्तराख्यान विस्तृत रूप से उक्त होने पर भी इस स्थान में संक्षेप से कहा गया है और इसके पश्चात् भविष्य मनुगण का चरित, कल्पप्रलय निर्देश, कल्पमान, चतुर्दशलोक कथन, नरक समुदाय का वर्णन, मनोमय पुराख्यान, प्राकृतिक लय, शैवपुर का वर्णन, तीन प्रकार के गुण सम्पर्क में प्राणियों की गति कीर्तन और अनिर्देश्य तथा अप्रतर्क्य परमात्मा ब्रह्म का अन्वय व्यतिरेक वर्णित हुआ है। यह उपसंहार नामक उत्तरभाग सम्पन्न हुआ, यह चार पादयुक्त ब्रह्माण्डपुराण तुम्हारे निकट वर्णन किया। यह अष्टादशवां पुराण सार से भी सार पुराण कहा गया है।

हे द्विज, यह पुराण चार लाख श्लोकरूप में भी पढ़ा जाता है। पराशरात्मज व्यास ने उसी को अठारह प्रकार विभक्त करके प्रकाशित किया है। हे मानद, वस्तु द्रष्टा उस व्यास मुनि ने मेरे निकट से संपूर्ण पुराण सुन कर लोक में प्रकाश किये हैं मैंने यह पुराण पहिले वसिष्ठजी के निकट कहा था। पश्चात् उन्होंने शक्तिसुत और जातूकर्ण्य के निकट प्रकाश किया अनन्तर व्यास ने प्रभंजन मुखोच्चारित इस ब्रह्माण्ड पुराण को प्राप्त कर इस लोक में प्रमाणीकृत करके प्रचार किया है।

कई एक प्रौढ़ विद्वानों को यह सन्देह है कि ब्रह्माण्डपुराण की सत्ता है या नहीं। सन्देह होना ठीक भी है क्योंकि ब्रह्माण्डपुराण को वायुपुराण समझ कर ब्रह्माण्ड-

पुराण की पुस्तक पर "वायुपुराण" इतना लिख दिया है और वह वायुपुराण के नाम से एशियाटिक सोसाइटी में छप गया है। यह वायुपुराण नहीं है किन्तु ब्रह्माण्डपुराण है। इसके ब्रह्माण्ड पुराण होने में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं। यह ब्रह्माण्ड पुराण है इसकी पुष्टि में नीचे लिखे प्रमाण मिलते हैं—

(१) नारदपुराणोक्त सूची के समस्त लक्षण (क) बारह सहस्र संख्या, (ख) भाविकल्प की कथा, (ग) चतुष्पाद और (घ) आनपूर्वी कथा का वर्णन। एशियाटिक सोसाइटी के छपे हुये वायुपुराण में विद्यमान हैं इससे भिन्न मत्स्यपुराण में इसके लक्षण जो लिखे हैं उनको नीचे देखिये—

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्॥
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः।
तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम्॥

ब्रह्माण्ड का माहात्म्य अवलम्बन करके जो पुराण कहा गया है वही बारह हज़ार दो सौ श्लोकयुक्त ब्रह्माण्ड है। जिस पुराण में ब्रह्मा कर्तृक भविष्यकल्प वृत्तान्त विस्तृत रूप से विवृत हुआ है वही ब्रह्माण्डपुराण है।

मत्स्यपुराण में जो ब्रह्माण्ड का यह लक्षण लिखा है उसके अनुसार ब्रह्माण्ड पुराण के प्रथम अध्याय में लिखा है कि—

"पुराणं संप्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम्"

मत्स्यपुराण में जो बतलाया है कि इसमें भविष्यपुराण की कथायें हैं तदनुसार ब्रह्माण्डपुराण के सोलहवें, सत्रहवें, अट्ठारहवें अध्याय में यह लेख विस्तृत रूप से विद्यमान है। शिवपुराण में इसका लक्षण इस प्रकार है—

"ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद्ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्"

ब्रह्माण्ड अर्थात् भूगोल आदि विषय का वर्णन होने से इसका नाम ब्रह्माण्ड है। वास्तव में तेंतीसवें अध्याय से आरंभ करके अट्ठावन अध्याय में भूगोल आदि ब्रह्माण्ड का वर्णन जिस उत्तम रीति से इस पुराण में हुआ है ऐसा किसी भी पुराण में नहीं पाया जाता। इत्यादि अनेक लक्षण एशियाटिक सोसाइटी के छपे हुए वायुपुराण को ब्रह्माण्ड पुराण बतला रहे हैं अतएव यह निश्चय ही ब्रह्माण्डपुराण है।

* भ्रम होने का कारण *

ब्रह्माण्डपुराण की किसी किसी पुस्तक में प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में "वायुप्रोक्त संहितायां" ऐसा लिखा है इसही लेख से ब्रह्माण्डपुराण को वायुपुराण समझ लिया है यह भ्रम हुआ है और "वायुप्रोक्त संहितायां" इतना लिखना कुछ अनुचित भी नहीं है क्योंकि नारदपुराण में लिखा है कि--

व्यासो लब्ध्वा ततश्चैतत्प्रभंजनमुखोद्गतम् ।
प्रमाणीकृत्य लोकेस्मिन्प्रावर्तयदनुत्तमम् ॥

अर्थात् वायु के मुख से प्रोक्त इस ग्रन्थ को व्यासजी ने पाया । वायुप्रोक्त होने के कारण "वायुप्रोक्त संहितायां" ऐसा लिख दिया गया उसी भ्रमसे ब्रह्माण्डपुराण को वायुपुराण समझ लिया किन्तु वास्तव में यह ग्रन्थ ब्रह्माण्डपुराण है ।

* उपपुराण *

जितने भी उपपुराण और औपपुराण हैं इन सबकी रचना पुराणों से ही हुई है । प्राचीन सुविज्ञ पण्डितों ने पुराणों की छाया लेकर इनका निर्माण किया है विस्तार न हो जावे इस भय से बड़ी बड़ी कथाओं को कहीं कहीं पर सूक्ष्म करके लिखा है और कहीं कहीं पर कथाओं को छोड़ भी दिया है । कहीं कहीं पर विलक्षण कथाओं का समावेश है कहीं कहीं पर कथान्तर है यह इतना होने पर भी इनका मूल पुराण ही है इस विषय में देवीभागवत के टीकाकार स्वामी श्रीधर के शिष्य नीलकण्ठ ने इस विषय का एक श्लोक उद्धृत किया है उसी श्लोक को हम नीचे लिखे देते हैं—

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते ।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम् ॥

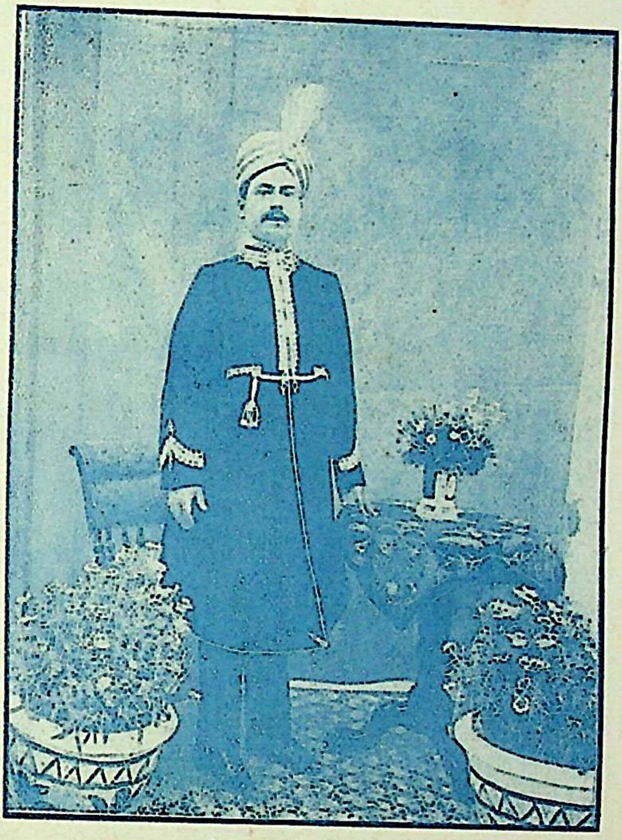
अठारह पुराणों से भिन्न जो पुराण और उपपुराण दीखते हैं हे द्विजश्रेष्ठो उन सबको इन अठारह पुराणों से ही निर्गत समझना ।

इतिश्रीकालूरामरचितपुराणवर्मणिलक्षणपादश्चतुर्थः
इति परिचयाध्यायः प्रथमः ।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, भक्त-शिरोमणि

राजा साहब बहादुर श्री १०५ रघुनन्दनप्रसादजी

मुंगेर-नरेश।



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

भारत में बड़े बड़े वीर चक्रवर्त्ती भूपति हुये हैं उनकी ही कृपा से संसार में शान्ति और धर्म का प्रचार हुआ है। उन समस्त प्रभावशाली राजाओं का यश पुराणों में लिखा है। जिस यश को पढ़ कर वर्तमान भूपति ईश्वरभक्त तथा सच्चे धार्मिक बन कर प्रजा को अपना पुत्र समझ कर उसकी रक्षा में तत्पर हो सकते हैं। हिन्दुओं की माता भगवती गौ जिसके ऊपर आज घोर संकट है उसका पूर्ण महत्व पुराणों में ही मिलता है। पुराण न रहे तब तो हिन्दुओं का सर्वस्व नाश हो जावेगा अतएव किसी हिन्दू को स्वप्न में भी पुराणों पर मिथ्या कलंक न लगाना चाहिये।

 मरचेंट प्रेस, कानपुर।

श्रीगणेशाय नमः ।

ईश्वरसत्तापादः

भगवति तवतीरे नीरमात्राशनोहं,
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि ।
कलिकलुषविभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे,
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥

कोई सज्जन कह उठाता है कि इन पुराणों में ईश्वरसत्ता का बड़ा लम्बा चौड़ा वर्णन है। प्राचीन समय में इन बातों को चाहे कोई स्वीकार कर लेता परन्तु वर्तमान समय में जब कि संसार में साइंस का दिवाकर उदय हो गया है इन पोच सिद्धान्तों का कोई भी मानने को कटिबद्ध नहीं है।

उत्तर—वास्तव में वर्तमान समय में प्रायः मनुष्य अपने उद्धार का ध्यान हो नहीं करते उनको ईश्वर की उपासना और भक्ति से कोई प्रयोजन नहीं। धीरे धीरे इतनी उन्नति कर गये हैं कि अब उनको ईश्वरसत्ता में भी सन्देह हो गया है इस सन्देह को मिटाना उनको कभी स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता। आजकल के मनुष्य केवल स्वतंत्रता तथा सुख और आधुनिक ज्ञान इन तीन बातों को ही जानना चाहते हैं इनसे आगे एक पद भी बढ़ना नहीं चाहते।

प्रत्येक मनुष्य आज चाहता है कि मैं स्वतन्त्रता ग्रहण करूं, मुझे सुख मिले और मैं ज्ञानी बनूं। मनुष्य चाहे किसी मत का हो इन तीन चीजों की फिकर में हमेशा रहता है, प्रत्येक लड़का जो पाठशाले में पढ़ने जाता है रविवार का दिन अंगुलियों पर गिना करता है, लड़का ही नहीं बल्कि आते हुये रविवार को देख कर मास्टर भी आनंन्दित होते हैं शनिवार से ही उसकी प्रतीक्षा होने लगती है, दफ्तर के क्लर्क भी इतवार के इन्तज़ार में रहते हैं, इतना ही नहीं किन्तु बिना किसी वजह के मजिस्ट्रेट भी फूले नहीं समाते। क्यों क्या बात है, छुट्टी के दिन से इतना प्रेम क्यों ? उत्तर यह है कि यह दिन इनकी स्वतंत्रता का है। तोता को पिंजरे से निकाल दीजिये फौरन उड़ जावेगा, गौ के बछड़े को खूंटी से खोलिये कितना प्रसन्न होकर कूदता है क्यों क्या बात है स्वतंत्रता मिली है। अपराधी सैकड़ों उपाय कर और हजारहां रुपया खर्च कर अपील करता है इस गर्ज से कि सजा न हो, सजा में स्वतन्त्रता जाती रहती है। शराबी की सब लोग निन्दा करते हैं और शास्त्रों में तो इसको महापातकी लिखा है इसके अलावा

घर का रुपया भी जहन्नुम को जाता है, नशे में चलते फिरते समय चोट भी लग जाती है, मोरी में पड़े हैं और कुत्ता मुंह पर मूत रहा है, पुलिस का कान्सटेबिल पकड़ ले जाता है इतने पर भी शराब नहीं छोड़ते क्यों इस के नशे में कुछ स्वतन्त्रता की लहर आती है। हाय स्वतन्त्रता, प्यारी स्वतन्त्रता, चाहे सर्वस्व जाता रहे परन्तु स्वतन्त्रता मिले। सब जगत स्वतन्त्रता का प्यासा पड़ा है किन्तु स्वतन्त्रता राँड के नखरे का ठिकाना ही नहीं, इसका पता ही नहीं चलता कि यह है कहाँ। आप समझते होंगे कि कैदी तो परतंत्र है लेकिन अदालत के आफीसर स्वतन्त्र हैं किन्तु आप का यह विचार गलत है ज़रा उनसे भी तो दर्याफ्त करें वे फौरन कह देंगे कि पिता की मृत्यु में तो घर नहीं जा सके फिर क्या खाक स्वतन्त्र हैं, यदि कुछ स्वतन्त्रता है तो गवर्नमेन्ट को है। गवर्नमेन्ट से जब पूछेंगे तो यही उत्तर मिलेगा कि हमसे तो अदालत के आफीसर ही स्वतंत्र हैं जिनको कुछ भी जिम्मेदारी नहीं, टाइम पर काम बजाया कि बेफिकर, यहां पर तो मारे फिकर के दिन भर खाना तक भी अच्छा नहीं लगता, हमको कभी स्वप्न में भी स्वतन्त्रता नहीं मिलती, अगर स्वतंत्रता हो तो बादशाह को चाहे भले हो। जब आप प्रजापालक बादशाह के पास जाकर स्वतंत्रता का प्रश्न पेश करेंगे तो फौरन यही उत्तर मिलेगा कि यहां पर प्रजा के प्रबन्ध का विचार ही पूरा नहीं होता तुम्हें स्वतंत्रता की पड़ी है यदि मैं स्वतंत्र ही होता तो क्या फलां गवर्नमेंट से सन्धि करता, यहां तो स्वतंत्रता का नाम भी तुम्हारे ही मुख से सुना है यदि तुमको स्वतंत्र मनुष्य की तलाश है तो मैं बतलाता हूं, किसान स्वतन्त्र है दिन में हल जोतता है और रात को वह घर्राटे की नींद लेता है कि जो बादशाहों को मिलनी असम्भव है। लीजिये इतना खोजने पर भी स्वतंत्रता का पता नहीं चलता, पूर्ण स्वतंत्रता कहीं भी नहीं मिलती, हां अलबत्ते यह हो सकता है कि कैदी की अपेक्षा आफीसर स्वतंत्र और आफीसरों की अपेक्षा गवर्नमेंट और गवर्नमेन्ट की अपेक्षा शहनशाह किन्तु पूर्ण स्वतंत्र शहनशाह भी नहीं यह तो स्वतन्त्रता की कथा है।

अब सुनिये सुख का समाचार—प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि मैं सुखी रहूं, मुझे सुख मिले। आज संसार में जितने काम हो रहे हैं सबका प्रयोजन सुख ही है। एक किसान खेत में खाद (पांस) डाल कर जान तोड़ कर जोतता है, बोता है, उसके रखाने के लिये जाड़े की ठंढी रात में उसी खेत पर सोता है क्यों यह क्या बात है? कुछ नहीं, केवल सुख की आशा है। सुख के लिये एक जवान घर से जाकर पल्टन में नौकर होता है, अपना सिर भी बेंच डालता है। आज जो संसार में रेल, तार, टेलीफोन, ट्राम्वे, मोटर, हवाई जहाज बन रहे हैं और अनेक प्रकार की मशीनें आविष्कृत हो रही हैं इन सबका प्रयोजन सुख प्राप्ति है। हाय सुख, प्यारे सुख तू कहां है,

किस कोठरी में छिप गया, आज तेरी तलाश में सारा संसार अग्रसर है, मनुष्य ही नहीं किन्तु पशु पक्षी भी तेरे लिये हैरान हो रहे हैं परन्तु तेरे दर्शन नहीं होते। इतना खफगी, इतनी नाराज़गी। प्यारे सुख, आंखों के सामने आ और अपने मुखड़े को दिखादे, इस चिल्लाहट पर भी सुख नहीं सुनता। जैसे जैसे संसार सुख की खोज में फिरता है सुख भी वैसे ही वैसे दूर भागता चला जा रहा है। भारतवर्ष में प्राचीन समय में बैलगाड़ी या घोड़ों के द्वारा मार्ग तै होता था, उसमें किञ्चित् सुख नहीं मिलता था, समय अधिक व्यय होता था, तथा रुपये का खर्च भी अधिक था अतएव यह सवारी दुःख का कारण समझी जाती थी। इसके बाद घोड़ागाड़ी चली इससे रास्ता कम समय में तै होता था। इसको देख कर मनुष्य बड़े आनन्दित हुये और कहने लगे कि यह बहुत ही सुख हुआ जो घोड़ागाड़ी चल पड़ी। इसके थोड़े दिन बाद रेल भगवती की कृपा हुई इसको देख कर मनुष्यों को बड़ा ही आनन्द हुआ घर घर में यही चर्चा सुनाई देती थी कि अब बड़ा भारी सुख हुआ, घोड़ागाड़ी में तो बड़ा दुःख था, दाम के दाम अधिक लगते थे और शरीर व कपड़ों में धूल भर जाती थी, चलने के समय खड़खड़ शब्द होने से किसी को बात सुनाई न देती थी, अब रेल द्वारा महीनों का मार्ग दिनों में कट जाता है। इसके अनन्तर रेलवे कम्पनी ने मेलट्रेन (डाकगाड़ी) चलाई, इसको देख कर संसार का मन और भी प्रफुल्लित हो गया जिसे देखो यही कहता है कि पैसेंजर क्या है छकड़ा है जिस स्टेशन पर देखो उसी पर घण्टा भर खड़ी रहती है, गर्मी के मारे प्राण घुटने लगता है गाड़ी क्या है यमराज का जेल है, यदि कुछ सुख है तो डाकगाड़ी में है। हाय सुख वास्तव में तू अब तक प्राप्त नहीं हुआ अब भी यह तरकीब सोची जा रही है कि कोई ऐसी तरकीब निकल आवे जिससे हावड़ा से बम्बई तक का मार्ग पांच घंटे में ही कट जावे परन्तु प्यारे सुख तू तो तब भी न मिलेगा जब कि एक मिनट में १०० मील चलनेवाली भी ट्रेन आविष्कृत हो जावेगी। आप सारे संसार को छान डालिये, नये से नये आविष्कार कीजिये, पर सुख का पता नहीं लगेगा। किसी से भी पूछिये अपने को सुखी न कहेगा। यदि आप किसी गांव में जाकर एक काश्तकार से पूछें कि क्यों भाई आप सुखी हैं, उत्तर मिलेगा कि हम तो काम करते करते मरे जाते हैं हमें सुख कहां, हां अगर सुखी है तो हमारे गाँव का पटवारी है जिसे सरकार से तनख्वाह मिले, हम लोगों से फसलाना ले और मज में हुकुम चलावे। अब चलिये पटवारी के पास वह क्या कहता है उससे सुख का प्रश्न करने में उत्तर मिलता है कि हम सुखी कैसे, तीन रुपये का तहसील का चपरासी भी हमारे ऊपर हुकूमत करता आता है, आज तहसीलदार की आमद है तो कल डिप्टी की, परसों क़ानूनगो की, उपरोक्त सज्जन तो अपने

अपने घोड़ों पर सवार रहते हैं पीछे से एक गधे का बोझ लिये मुझे दौड़ना पड़ता है, खेतों में घूमते घूमते नाक में दम है, प्राण निकलता है, मुझसे तो डाक का हलकारा ही अच्छा जो तीन ही कोस आता है मुझे तो कठोर बंजर में घूमते दौड़ते पांच कोश से भी अधिक पड़ जाता है, फिर भला मैं कैसे सुखी हो सकता हूं, हां अगर सुखी होगा तो मेरे हलके का कानूनगो होगा। कानूनगो से पूछिये तो कहते हैं कि कैसा सुख, कर्म के भोग भोग रहे हैं, चक्की पीसते पीसते नाक में दम आगया काम खतम ही नहीं होता, हमसे तो पटवारी हो भला जो घर बैठे अपने कागजात की खानापुरी कर लेता है। सच तो यह कि कानूनगो का उहदा तो ऐसा हो गया है कि मजदूरी करके खा ले परन्तु यह नौकरी न करे। हां, अगर सुखी हैं तो तहसीलदार साहब, जो कई एक कागजात पर दस्तखत करके मजे में अपने बालबच्चों में बैठे हैं। लीजिये कानूनगो ने तहसीलदार को सुखी बताया, तहसीलदार मजिस्ट्रेट को कहेंगे, मजिस्ट्रेट लाटसाहब को कहेंगे, लाट साहब बादशाह को, बादशाह भी अपने को पूर्ण सुखी न कह कर दूसरे पर इशारा करेंगे लेकिन पूर्ण सुखी कोई भी न मिलेगा। यह सही है कि पटवारी की निस्बत कानूनगो और कानूनगो की निस्बत तहसीलदार इसी तरह से बादशाह विशेष सुखी होंगे परन्तु पूर्ण सुख न पटवारी को, न बादशाह को। यदि बादशाही में पूर्ण सुख होता तो भर्तृहरी जैसे चक्रवर्ती राजा राजसिंहासन पर लात मार कर बन को न जाते, सुख की कथा आप सुन चुके।

अब ज्ञान की चर्चा चलती है--प्रत्येक मनुष्य की इच्छा है कि मैं ज्ञानी बनूं, मुझे ज्ञान मिले, हाय ज्ञान हाय ज्ञान। लड़का मदर्से जाता है और सब दिन टां टां करता है इतने पर भी मास्टर मारता है, लड़का फीस भी कुछ देता है और मार भी खाता है, कभी कभी जुर्माना भी देना पड़ता है परन्तु मदर्से को नहीं छोड़ता। क्यों, इस वजह से कि वहां इसको ज्ञान मिलता है। जिस समय रेलगाड़ी स्टेशन के करीब आती है, ड्राइवर और गार्ड स्टेशन की ओर टकटकी लगाये देखते हैं और जब तक झंडी वाला झंडी नहीं दिखाता बराबर देखते ही रहते हैं, ज्यों ही झंडी के दर्शन हुये कि चुपचाप गाड़ी पर बैठ गये, क्या हुआ पहिले क्यों तड़पते थे अब क्यों चुपचाप बैठ गये, कारण यह है कि झंडी से गाड़ी को चाल का ज्ञान मिल गया। बच्चा जिस चीज को देखता है फौरन प्रश्न करता है कि बाबू! यह क्या है, एक ही चीज को नहीं पूछता आप बच्चे को अजायबघर में ले जाइये फिर उसके सवालात का मज़ा देखिये कि जब तक आप एक प्रश्न का उत्तर न दे सकेंगे कि दूसरा तैयार है। यह छोटा सा बच्चा आपके नाक में दम कर देगा, आप जवाब देते २ थक जावेंगे किन्तु बच्चा सवाल करने में न थकेगा, क्योंकि बच्चा चाहता है कि मुझे संसारी चीजों का ज्ञान हो। बाजार में

जब लड़ाई होते देखते हैं तो सैकड़ों—बाज बाज मौके पर हजारों—मनुष्य एकत्रित हो जाते हैं और बार बार यही पूछते हैं कि लड़ाई क्यों होती है, हालांकि जिससे ये पूछते हैं वह भी इसको नहीं जानता और पूछनेवालों को कोई प्रयोजन भी नहीं परन्तु इतने पर भी प्रश्न पर प्रश्न करते हैं क्योंकि ज्ञान का अधिकरण आत्मा है, आत्मा ज्ञान चाहता है। एक दोस्त जब अपने दोस्त से मिलता है तो वह प्रश्न करता है कि आज आप क्या करते रहे। अगर वह यह कह दे कि हम अमृतबाजारपत्रिका देखते थे तो बस कम्बख्ती आ गई, मगज चाट जावेंगे और यही कहेंगे कि कोई ताजी खबर सुनाओ। यद्यपि वह ताजी खबर घण्टा भर के बाद पुरानी हो जावेगी परन्तु उसका पिण्ड न छोड़ेंगे पिण्ड जभी छूटेगा जब यह कहा लेंगे कि इसमें कोई और ताजी खबर न थी। यह बात क्या है बात वही है कि घर बैठे संसार का ज्ञान चाहते हैं प्रत्येक मनुष्य अपने आत्मा को ज्ञानी बनाना चाहता है। यह बात दूसरी है कि पुराने समय में विज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की शिक्षा पाते थे और इस समय में प्राकृत ज्ञान की शिक्षा पाते हैं। यह भी बात भिन्न है प्रथम ब्रह्म की प्राप्ति के लिये और अब नौकरी के लिये ज्ञान है। लेकिन संसार में रात दिन ज्ञान की तरक्की हो रही है परन्तु इतने पर भी दुनियां में कोई पूर्ण ज्ञानी नहीं है। गर्ज यह है कि संसार में न तो कोई पूर्ण स्वतन्त्र है और न कोई पूर्ण सुखी है और न कोई पूर्ण ज्ञानी है फिर यह अधूरी अधूरी तीनों चीजें कहां से आईं। इनके आने के लिये इनका कोई भण्डार मानना पड़ेगा क्योंकि साइंस का सिद्धान्त है कि जिस चीज को अधूरी देखो उसका भण्डार मानो। जिसमें से यह चीज आई हैं, इनका जो भण्डार है उसी का नाम ईश्वर है।

इसको फिर दूसरे प्रकार से समझिये—एक मनुष्य ने किसी जमीन के टुकड़े में एक बट के बीज को गाड़ दिया उसमें से अंकुर निकल कर शनैः शनैः पचास वर्ष के पश्चात् उस बट का एक ऐसा वृक्ष बन गया कि जिसने बीघा भर पृथ्वी को घेर लिया। यहां पर प्रश्न यह है कि वह बट का बीज तो सरसों के दाने से भी बहुत छोटा था उस बीज में से इतना बड़ा वृक्ष कैसे निकल पड़ा। इसके उत्तर में विज्ञानवेत्ताओं का यह सिद्धान्त है कि उस बट बीज के भीतर से ही इतना स्थूल वृक्ष नहीं निकला किन्तु बट बीज में से निकले हुये अंकुर ने पृथ्वी, तेज, अप, वायु, आकाश इन पांच तत्वों को खींच कर अपने रूप को स्थूल रूप बनाया। प्रश्न यह उठेगा कि यह पांच तत्व उसमें कहां से आ गये। उत्तर उसका यह होगा कि यह पांच तत्व अपने अपने भण्डार से आकर वृक्ष में मिल गये। मिट्टी तत्व अपने भण्डार पृथ्वी में से आया। जल तत्व अपने भण्डार सर्वव्यापक जल में से आया और इसी प्रकार तेज, वायु, आकाश अपने अपने भण्डार सर्वव्यापक तेज, वायु, आकाश में से आकर इस वृक्ष में मिल

गये। प्रश्न यह होगा कि वृक्ष के नष्ट होने पर ये तत्व कहां जावेंगे। इसका उत्तर यह है कि सब अपने अपने भण्डार में चले जावेंगे। उदाहरण में इस प्रकार समझिये कि एक वृक्ष को काट कर किसी मनुष्य ने उसको फूंक डाला, जलते समय उसका कुछ भाग हाईड्रोजन आदि होकर जल, अग्नि, वायु, आकाश में मिल गया शेष भाग राख होकर पृथ्वी में मिल गया। इस दृष्टान्त से यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो गई है कि समस्त चीजें अपने अपने पूर्ण भण्डारों से आती हैं और समाप्ति पर अपने अपने उन्हीं पूर्ण भण्डारों में जाकर मिल जाती हैं। वृक्ष के बनने में पांच तत्व अपने अपने भण्डारों से आये किन्तु सुख दुःख का अनुभव करनेवाली ज्ञानशक्ति जो वृक्ष में विद्यमान है यह कहां से आई कहना पड़ेगा कि यह ज्ञानशक्ति ज्ञान के पूर्ण भण्डार से आई। बस हमारा यही तो कहना है कि ज्ञानशक्ति का जो पूर्ण भण्डार है वही ईश्वर है।

किसी किसी सज्जन का यह भी कथन है कि सुख दुख का अनुभव करनेवाली ज्ञानशक्ति ही वृक्ष में नहीं है इसका उत्तर हम यही देंगे कि यह प्रश्न यदि आज से बीस वर्ष पहले उठता तो इसके समाधान में शास्त्रों के प्रमाण तो हम सैकड़ों दे सकते थे किन्तु प्रत्यक्ष में तोषदायक हमारे पास कोई उत्तर नहीं था किन्तु वर्त्तमान समय में जब कि भारत के विज्ञानमूर्ति जगदीशचन्द्र बोस ने अपने आविष्कृत यंत्रों से वृक्षों का सोना, जागना, रुग्ण, निरोग होना सिद्ध कर दिया है फिर सुख दुःख के अनुभव करनेवाले वृक्षों के ज्ञान में क्या सन्देह रह गया। यदि इतने पर भी किसी को तोष न हो तो वृक्ष के स्थान में मनुष्य को ही उदाहरण में ले लेना चाहिये। एक विन्दु वीर्य से पञ्चतत्वों की सहायता पाकर साढ़े तीन हाथ का मनुष्य शरीर बन जाता है और फूंक देने पर सब तत्व अपने अपने तत्वों में मिल जाते हैं इससे यह सिद्ध हो गया कि समस्त तत्व अपने अपने भण्डारों से आये थे और उन्हीं में जाकर मिल गये। हमने मान लिया कि तत्व तो भण्डारों से आये थे किन्तु मनुष्य में जो चेतनशक्ति है यह कहाँ से आई? तत्वों के नियम से मानना पड़ेगा कि यह अपने भण्डार से आई। बस इसी भण्डार का नाम तो ईश्वर है।

किसी किसी मनुष्य का कथन है कि चेतनात्मक शक्ति किसी भण्डार से नहीं आती किन्तु ठीक प्रमाण में पंचतत्वों के मिलने से वह स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। इसके ऊपर इतना ही कह देना तोषदायक है कि कोई शक्ति किसी समय में उत्पन्न नहीं होती और किसी शक्ति का किसी समय में नाश नहीं होता सर्वदा प्रत्येक वस्तु का रूपान्तर हुआ करता है। स्पष्ट रूप में इसको यों कहिये कि नेस्ति से हस्ति और हस्ति से नेस्ति कभी नहीं होती। गीता कहती है कि "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" किसी अस्तित्व पदार्थ का अभाव नहीं होता और किसी अभाव का

अस्तित्व नहीं होता यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है फिर हम कैसे मान लें कि नियमित मात्रा में पंचतत्वों के मिलने से चेतनशक्ति उत्पन्न हो जाती है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि यह कहीं से आई है और पूर्व नियम के अनुसार अपने पूर्ण भण्डार से आई है इसी भण्डार को हम ईश्वर कहते हैं। यदि हम ईश्वर को न मानें तो चेतनशक्ति का आना और फिर चला जाना यह दोनों ही नहीं बनेंगे, जब दोनों ही नहीं बनेंगे तो चेतन शक्तिवाले प्राणी भी संसार में न होंगे इनकी सत्ता को देख कर चेतन भण्डार जगदीश्वर मानना ही पड़ेगा।

आसमान में जितने ग्रह उपग्रह तथा तारा पृथ्वी आदि मण्डल हैं वे सब आरम्भ से आज तक बराबर घूमते हुए चले आते हैं कोई भी ग्रह अपनी कक्षा से बाहर नहीं निकलता तथा कोई भी ग्रह किसी ग्रह से कभी टकराता नहीं। ग्रह जड़ हैं इनमें ज्ञान नहीं, ज्ञान न रहने पर भी यह अपनी मर्यादा में बंधे हुये सर्वदा एक चाल से चले जाते हैं कभी कोई अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता यह दशा सिद्ध कर रही है कि इनका नियन्ता कोई ज्ञानशक्ति है, इसी ज्ञानशक्ति का नाम ईश्वर है।

ग्रहों की रचना और उनमें आकर्षण शक्ति की स्थापना सिद्ध करती है कि इनका निर्माता कोई उत्कट ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति के बिना इनकी यह विलक्षण रचना अपने आप हो नहीं सकती जिसने इनको निर्माण किया है वह ईश्वर है। योरुप में एक महात्मा चार्ल्सब्रेडला हुआ है जो कि कट्टर नास्तिक था इन्होंने कई एक पुस्तकें ऐसी लिखी हैं जिनके देखने से ईश्वर से सबर करना पड़ता है किन्तु ग्रहों की रचना और उनकी स्थिति तथा उनके भ्रमण को देख कर यह स्वतः ही नास्तिक से आस्तिक बन गया।

आजकल के स्कूल कालेजों के विद्यार्थी कहा करते हैं कि संसाररचना में ईश्वर को कारण मानना वाहियात है संसार ईश्वर ने कब बनाया है परमाणुओं के इकट्ठा होने पर अपने आप ग्रह बन जाता है इसमें ईश्वर के मानने की कौन आवश्यकता है। विद्यार्थियों के इस कथन को सुनकर एक प्रश्न अन्तःकरण में उठ बैठता है वह यह है कि परमाणु कहां से आये इसके उत्तर में कई एक विद्यार्थियों का कथन है कि परमाणु अनादि हैं, बने बनाये हैं। जो लोग परमाणुओं से ही संसार की रचना मानते हैं उनके ऊपर हमारा एक प्रश्न है वह यह है कि तुम्हारे परमाणु जिनसे संसार बनता है रूपवाले हैं या बिना रूप के? इसके उत्तर में यदि ये कहें कि हमारे परमाणु तो रूपरहित अर्थात् बेशकल के हैं तो हम यह कहेंगे कि आपके रूपरहित परमाणुओं के इकट्ठे हो जाने से रूपवाला संसार कैसे बन गया? यदि ये अन्य उत्तर दें कि हमारे

परमाणु तो रूपवाले हैं तब हमारा कथन होगा कि "यत्र यत्र रूपत्वं तत्र तत्रानित्यत्वम्" संसार में जितने रूपवाले पदार्थ देखे जाते हैं वे सब अनित्य हैं अर्थात् उनकी उत्पत्ति और उनका नाश अवश्य है। जब कि समस्त ही रूपवाले पदार्थों की उत्पत्ति और नाश है तो तुम्हारे रूपवाले परमाणुओं की भी उत्पत्ति और नाश अवश्य है। जब इनकी उत्पत्ति है तो फिर बतलाओ कि ये तुम्हारे परमाणु कैसे उत्पन्न हुये आपही आप बन गये या किसी ने बनाये ? जब रूपवाले मानोगे तो फिर ये परमाणु किसी प्रकार भी अनादि नहीं ठहरेंगे। हमने जो यह युक्ति दी है यही युक्ति योरुप के दार्शनिक "कान्ट" ने अपने दर्शन में लिखी है फिर उन परमाणुओं से अपने आप अनेक शक्तियुक्त नियमबद्ध ब्रह्माण्ड कैसे बना, परमाणुओं का ठीक ठीक नियम के अनुसार अपने जातिभण्डार में मिलकर अनेक चमत्कृत शक्ति का उत्पादन करना यह जड़ परमाणुओं की शक्ति से बाहर है। बिना कर्त्ता के परमाणु चमत्कृत मनमोहनी ज्ञानशक्ति को लेकर ब्रह्माण्ड तो क्या किसी वस्तु को भी नहीं बना सकते।

इसमें एक उदाहरण देखिये—

एक विश्वम्भरदत्त एम. ए., एल. एल. बी. एक रोज रात के आठ बजे अपने कमरे में बैठे थे उस समय उन्होंने अपने चिरंजीव पुत्र भोलानाथ को आवाज लगाई। आवाज़ लगाने से बीस मिनट पश्चात् भोलानाथ आया और आकर पिताजी से कहा कि क्या आज्ञा है ? पिता ने पुत्र की तरफ को देख कर पूछा कि क्या करते थे ? पुत्र ने उत्तर दिया कि मैं ठाकुरजी की आरती कर रहा था। इतना सुनकर पिताजी को क्रोध आगया क्रोधित होकर बोले कि तुम मेट्रिक पास कर चुके किन्तु सड़ियल हिन्दू धर्म का बू तुम्हारे दिमाग से अभी तक नहीं निकली। इसको सुनकर पुत्र ने कहा कि मैं समझा नहीं समझा दीजिये। पिता ने कहा कि तुम अब तक भी ईश्वर को मानते ही चले आते हो क्या साइंस में तुमको यही पढ़ाया गया है। लड़के ने कहा कि पिताजी यदि ईश्वर नहीं तो फिर इतना बड़ा ब्रह्माण्ड किस प्रकार बन गया। पिता ने उत्तर दिया कि परमाणु अनादि हैं ये चलते फिरते जिस एक स्थान में जमा होगये एक ढेर बनगया धीरे धीरे वही ग्रह हो गया ग्रह में परमाणुओं की प्राकृतशक्ति से सृष्टि हुई इसमें ईश्वर के मानने की कौनसी आवश्यकता आ पड़ी। लड़का उस समय मौन रह गया किन्तु अगले दिन लड़के ने पाठशाला में पहुंच कर अपना लिखना पढ़ना सब बन्द कर दिया और एक कमरे में बैठ बड़ी सावधानी के साथ एक अत्युत्तम ड्राइंग खींची, और उसकी शोभा को चमत्कृत करने के लिये उसमें लाल, हरा, पीला, नीला, रङ्ग भरा। ड्राइंग को लाकर पिताजी की मेज पर रख दिया। रात्रि को पिता उस कमरे में आये और बैठते ही मनमोहनी ड्राइंग पर दृष्टि पड़ी उसको हाथमें उठाकर लड़के को पुकारा

लड़के के आ जाने पर पिता ने प्रश्न किया कि यह ड्राइंग किसने निर्माण की है ? लड़के ने उत्तर दिया कि पिताजी यह ड्राइंग अपने आप बनगई। इतना सुनकर पिताजी क्रोधित होगये। लाल लाल आंखें करके बोले कि तुम हमको धोका देना चाहते हो कहीं ड्राइंग भी अपने आप बन जाती है। लड़के ने हाथ जोड़कर नम्रता के साथ कहा कि पिताजी यह कागज पूर्व की तरफ रक्खा था और पश्चिम की ओर बनी हुई रङ्गीन पेन्सलें धरीं थीं और पश्चिम का ही वायु चल रहा था उस वायु के धक्के से पेन्सलों के परमाणु उड़े और वे इस कागज पर जम गये यही कारण ड्राइङ्ग के तैयार होने का है।

इसको सुन कर पिता ने कहा कि हमको सर्वथा ही मूर्ख मत बनाओ यह कभी सम्भव ही नहीं हो सकता कि पेन्सलों के परमाणु हवा से उड़ कर कागज़ पर जमा हो जावें और वे इस प्रकार जमें कि हरे हरे सब एक जगह और लाल लाल एक स्थान में जमा होकर एक उत्तम ड्राइंग खींच दें। यह कभी सम्भव ही नहीं कि ड्राइंग अपने आप खिंच जावे यह किसी न किसी मनुष्य की खींची हुई है बिना खींचे खिच ही नहीं सकती। इसको सुन कर लड़का बोला कि पिताजी जब बिना खींचे एक ड्राइङ्ग भी नहीं खिंच सकती तो फिर बिना बनाये यह ब्रह्माण्ड किस प्रकार बन जावेगा, इसका बनाने वाला कोई मानना पड़ेगा इसको सुनकर बाबूजी की समस्त हुज्जतें कूच कर गईं।

बिना ईश्वर के परमाणुओं से संसार का होना माननेवाले सज्जनों से हमारा एक और प्रश्न है। वह यह है कि आपके परमाणु विकारवाले हैं या निर्विकार। यदि ये सज्जन उत्तर दें कि हमारे परमाणु निर्विकार हैं उनका किसी दशा में भी विकार नहीं होता तो फिर हमारा प्रश्न होगा कि ऐसा मानने पर प्रलय का होना ही असम्भव हो जावेगा जब तक परमाणुओं की दशा में विकार न मानोगे तो प्रलय न होगा। परमाणुओं की एक दशा तो वह है कि जब ये इकट्ठे होकर ग्रह बनाते हैं और दूसरी दशा यह है कि इकट्ठे रहते हुये भी ग्रह को बिगाड़ देते हैं। यह मानना पड़ेगा कि जब परमाणुओं ने मिलकर ग्रह बनाया था उस समय जो इनमें शक्ति थी वह प्रलय के समय में नहीं रही उक्त शक्ति के अभाव से ही आज परमाणु बने हुये ग्रह को बिगाड़ रहे हैं और यदि परमाणुवादी परमाणुओं में विकार मानें तो फिर "यत्र यत्र विकारत्वं तत्र तत्रानित्यत्वम्" संसार में जितने पदार्थ विकारवाले हैं वे सब अनित्य हैं इसी नियम के अनुसार परमाणुओं को अनित्य मानना होगा। परमाणुवादियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं, जब परमाणु अनित्य ठहरते हैं तो इनका भी बनना मानना ही पड़ेगा फिर परमाणुवादियों का पक्ष गिर जावेगा और परमाणुओं का निर्माता ईश्वर मानना पड़ेगा।

परमाणु परिच्छिन्न महदूद हैं कोई भी पदार्थ परिच्छिन्न होकर अनादि नहीं हो सकता यह न्याय का अटल सिद्धान्त है। इस अटल सिद्धान्त के रहते हुये विचारशील मनुष्य परिच्छिन्न परमाणुओं को किस प्रकार अनादि मान सकता है। इस प्रकार की अनेक युक्तियां ऐसी मिलती हैं कि जो परमाणुओं की अनित्यता सिद्ध करती हैं।

फिर परमाणुओं को नित्य और अनादि तो आजकल के सज्जन भी नहीं मानते। "न्यू नालेज" नामक पुस्तक में इसके निर्माता डकन साहब ने लिखा है कि परमाणु अनादि नहीं हैं किन्तु कारपशल से बने हैं। कारपशल, ईथर और निगेटिव इलेक्ट्रीसिटी के यूनिटों से बनते हैं।

जब परमाणु हो स्वतः बनते हैं तो फिर उनको अनादि कहना यह भूल है। परमाणु घूमते फिरते थे वे एक स्थान में जमे उसी से ग्रह बना इसमें यह कहना है कि उनको घुमाता कौन था जड़ होने के कारण वे स्वतः घूम नहीं सकते जब वे स्वतः घूम नहीं सकते तो फिर उनका घुमानेवाला कोई अवश्य ही मानना पड़ेगा, जो घुमानेवाला है वही ईश्वर है।

इस ग्रन्थ में हम दो बातों का ध्यान रखते हैं (१) तो यह कि ग्रन्थ विस्तृत न हो जावे (२) रे यह कि कठिन न हो जावे क्योंकि यह ग्रन्थ हमने विद्वानों के समझाने के लिये नहीं लिखा किन्तु साधारण मनुष्यों के समझाने के लिये लिखा है, इसी नियम से इस ईश्वरसत्तापाद को हमने विस्तृत नहीं बनाया और गहरी युक्तियां नहीं दीं, इस विषय में जिसकी अधिक जानने की इच्छा हो वह "न्यायकुसुमाञ्जलि" तथा "श्वेताश्वेततरोपनिषद्" का व्याख्यान "आत्मपुराण" तथा "शारीरिक भाष्य" तथा इंगलिश को "फ्लिन्ट कीथोइज्म" नामक पुस्तक देखनी चाहिये।

इतिश्रीकालूरामरचितपुराणधर्मेणिईश्वरसत्तापादःपञ्चमः ॥

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, अग्रवाल-वैश्य-वंश-भूषण

श्री १०५ स्वर्गीय रायबहादुर बाबू बैजनाथजी गोयनका

रईस—मुंगेर।



धर्म-सेवा।

शास्त्र को बात तो पण्डित जानते हैं, हम तो वैश्य हैं। सीधा रास्ता धर्म का यह है कि जिस रास्ते से अपने श्रेष्ठ बाप दादा चले आये हों उसी रास्ते से चलना हमारा धर्म है। हमारे पूर्वज गो ब्राह्मण की रक्षा करते हुये पुराणों को सत्य, पवित्र, संसारबंधन तोड़नेवाले समझ कर उनमें भक्ति रख कर उनका श्रवण करते थे ऐसा ही हमको करना चाहिये। यही बात मनु ने कही है—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्नरिष्यते ॥

मरचैंट प्रेस, कानपुर।

* ईश्वरस्वरूपपादः *

जलौघमग्ना सचराचराधरा,
विषाणकोट्याखिलविश्वमूर्तिना ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा,
स मे स्वयंभूर्भगवान्प्रसीदताम् ॥

पुराणों के ऊपर साधारण लोगों का कटाक्ष है कि ईश्वरसत्ता निराकार होने पर भी पुराणों ने इसको साकार मान लिया है यह कितनी अज्ञानता की बात है और इसको कौन मानेगा ।

इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि जिन लोगों ने ईश्वर को सर्वथा निराकार माना है वे लोग सर्वथा ही अज्ञानी हैं उन्होंने सृष्टिक्रम नहीं जाना, वेद का अध्ययन नहीं किया, ईश्वर के स्वरूप जानने में परिश्रम नहीं किया, अज्ञ लोगों के कहने से सुना कि ईश्वर निराकार है । बस उसी पर विश्वास किया और इसी का उपदेश कर चले "अन्धेन नीयमाना यथान्धाः" अन्धा अन्धे को मार्ग बतला कर ले चलता है इस कहावत को सत्य कर दिया । जो लोग ईश्वर को केवल निराकार मानते हैं उनके पास कोई प्रमाण नहीं है कि वे ईश्वर के स्वरूप का पता लगालें फिर यह कहना कि पुराणों ने ईश्वर को केवल साकार माना है यह भी उनकी भूल है, पुराण केवल साकार नहीं मानते किन्तु साकार और निराकार ये दो रूप एक ईश्वर के मानते हैं इस विषय में जो कुछ पुराण मानते हैं वही वेद मानते हैं दोनों का ही एक सिद्धान्त है न इंच भर फर्क है न तिल भर अन्तर है । इस विषय को हम बड़े विस्तार के साथ नीचे लिखेंगे, विचारशील सज्जन इस पर अवश्य ही विचार करेंगे । वेद ने ईश्वर स्वरूप कैसा बतलाया है इसको देखिये —

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम् ॥

शा० का० १४ अ० १ ब्रा० २ श्रु० १८

परमेश्वर दो प्रकार का है परिमित अपरिमित, निरुक्त और अनिरुक्त। इस कारण जो यज्ञ उपासनादिकर्म यजुर्वेद के मंत्रों से करता है उसके द्वारा परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो निरुक्त और परिमित है और जो तूष्णीं भाव सम्पन्न है अर्थात् अध्यात्म मंत्र का ही मनन करता है उससे परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो अनिरुक्त और अपरिमित नाम है।

शतपथ ब्राह्मण की श्रुति ने साफ खोल दिया है कि ईश्वर दो प्रकार का है। शतपथ ब्राह्मण वेद है इसको हम द्वितीयपाद में स्पष्ट कर आये हैं कि मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद होते हैं। जब वेद ही ईश्वर के दो रूप बतलाता है तब केवल निराकार कहना प्रमाद नहीं तो और क्या है। कई एक सज्जन यह कहेंगे कि यह हमारी बुद्धि में नहीं आता कि ईश्वर एक और उसके रूप दो। इसके ऊपर हम यह कहेंगे कि पूछो वेद से। ईश्वर के दो रूप हमने नहीं बतलाये, वेद ने बतलाये हैं उत्तर के जिम्मेदार हम नहीं हैं वेद हैं। वेद हमारे प्रमाण के आधीन नहीं हैं श्रुति भगवती अपने कथन के उत्तर का भार किसी के ऊपर न छोड़ कर अपने ही ऊपर रखती है दूसरी श्रुति इसका विवेचन करती है कि एक ईश्वर के साकार, निराकार ये दो रूप कैसे बने इसके ऊपर श्रुति बोलती है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि।
त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

यजु० अ० ३१ मं० ३

इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है तथा इस ब्रह्म के तीन पाद दिव में अमृत (सृष्टिरहित) हैं।

यहां पर प्रश्न यह उठता था कि जितना बड़ा ब्रह्म है क्या उस ब्रह्म के समस्त अंश में ब्रह्माण्डों की रचना है या एक दो अंश में ब्रह्माण्डों की रचना है। यदि सर्वांश में ब्रह्माण्डरचना है तब तो ब्रह्माण्ड भी अपरिमित, अपरिच्छिन्न, लामहदूद होगया। इसके उत्तर में श्रुति ने बतलाया कि ब्रह्म के एक पाद में पञ्च महाभूतों की रचना है और ब्रह्म के तीन पाद अमृत हैं अर्थात् उनमें सृष्टि रचना नहीं है। श्रुति के इस कथन से यह नितान्त सिद्ध हो गया कि ब्रह्म के जिन तीन पाद में सृष्टि नहीं है वहां पर ब्रह्म अनिरुक्त, अविज्ञेय, अपरिच्छिन्न सर्वथा निराकार है क्योंकि वहां पर आकार रखने-वाले अग्नि, वायु तत्व ही नहीं तो फिर इनके सर्वथा अभाव में ईश्वर साकार कैसे बनेगा ऐसे स्थान में तो सर्वथा ही निराकार मानना होगा।

जिन अंश में सृष्टि नहीं है वहां पर ब्रह्म निराकार है यह तो ऊपर सिद्ध होगया। अब विवेचन इस बात का करना है कि जिस अंश में सृष्टि है वहां ब्रह्म कैसा है साकार है या निराकार है इसके निर्णय में हम यह प्रश्न करेंगे कि जिस ईश्वर ने ब्रह्माण्ड रचा है वह ईश्वर रहता कहां है इस प्रश्न पर सबही मत (मज़हब) यह उत्तर देते हैं कि तुम्हारा यह प्रश्न ही अशुद्ध है ब्रह्म कहां है। क्या ब्रह्म एकही स्थान में है वह तो ब्रह्माण्ड के एक एक परमाणु में व्यापक है। इसके ऊपर हम जोर देकर कहेंगे कि यदि वह वास्तव में प्रत्येक परमाणु में व्यापक है तब तो वह साकार है क्योंकि वह ठहरा व्यापक और परमाणु ठहरे व्याप्य, व्यापक का व्याप्य शरीर हुआ करता है। इसको आप इस प्रकार समझें कि एक पण्डित मोहनलाल नामक सज्जन हैं यह सज्जन साढ़े तीन हाथ के हैं, ये तो साढ़ेतीन हाथ के क्या हैं साढ़े तीन हाथ का तो इनका शरीर है इन महात्मा का तो पता ही नहीं कि कितने लम्बे चौड़े हैं इनके नाम का भी पता नहीं और पण्डित मोहनलाल जो इनका नाम कहा जाता है यह नाम तो इनके माता पिता ने कल्पित कर लिया है अपने मन से ही गढ़कर जबरदस्ती का सांड़ नियत किया है, वास्तव में तो यह फ़र्ज़ी पं० मोहनलाल नामशून्य, रूपशून्य, निराकार जीव हैं। निराकार होने पर भी अब यह साढ़े तीन हाथ के शरीर में व्यापक होगये हैं। यह व्यापक हैं शरीर व्याप्य है इसी कारण से इनका यह शरीर है क्योंकि यह सर्व तंत्र सिद्धान्त है कि व्यापक का व्याप्य शरीर होता है। यह शरीर इनका है घसीटू धोबी का नहीं है क्योंकि जिसका कल्पित नाम घसीटू धोबी है वह आत्मा इस शरीर में व्यापक नहीं है दूसरे शरीर में व्यापक है। जिस शरीर में घसीटू धोबी नामक आत्मा व्यापक है वह शरीर घसीटू धोबी का है। इसी प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त, कृष्णदत्त आदि नाम वाले आत्मा जिस जिस शरीर में व्यापक हैं वह वह उनका शरीर है। अब उत्तम रीति से सिद्ध हो गया कि व्याप्य, व्यापक का शरीर होता है तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और पृथ्वी व्याप्य है इस कारण पृथ्वी उसका शरीर है। तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और जल व्याप्य है इस कारण जल उसका शरीर है। तुम्हारा ईश्वर व्यापक है अग्नि व्याप्य है इस कारण अग्नि उसका शरीर है। तुम्हारा ईश्वर व्यापक है वायु व्याप्य है इस कारण वायु उसका शरीर है। तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और आकाश व्याप्य है इस कारण आकाश उसका शरीर है।

अब सिद्ध हुआ कि जहां केवल ब्रह्म रहेगा, जहां पर सर्वथा ही सृष्टि का अभाव होगा वहां पर ब्रह्म निराकार होगा और जहां पर सृष्टिरचना हो गई है, पंचतत्व विद्यमान हैं वहां पर ब्रह्म सृष्टि के तत्वों में व्यापक होकर रहेगा अतएव वहां पर साकार होगा। कई एक सज्जनों का यह कथन है कि इस युक्ति में वेद प्रमाण नहीं है और यह

युक्ति तुमने अपने मनसे बनाकर तैयार की है फिर हम इस सिद्धान्त को कैसे मानलें। इसके ऊपर हमारा कथन यह है कि यह युक्ति अकाट्य है तुम्हारे पास इसका कुछ भी उत्तर नहीं अतएव तुमको विवश होकर मानना ही पड़ेगा और यदि आप अड़ियल टट्टू की भाँति आग्रह ही कर बैठें कि हम वेद प्रमाण के बिना कदापि नहीं मानेंगे तो फिर घबराने की कोई बात ही नहीं वेद प्रमाण भी नीचे देख लीजिये—

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥७॥ योऽप्सु तिष्ठन् अद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽपोऽन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥८॥ योऽग्नौ तिष्ठन् अग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥९॥ य आकाशे तिष्ठन् आकाशादन्तरो यमकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥१०॥ यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं योवायुमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥११॥

श० कां० १४ अ० ६, ७, ६

जो पृथिवी में ठहरा हुआ पृथिवी के मध्य में जिसको पृथिवी नहीं जानती पृथ्वी जिसका शरीर है जो पृथ्वी को अपनी अनंतशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥७॥ जो जल में ठहरा हुआ जल के मध्य में जिसको जल नहीं जानता जल जिसका शरीर है जो जल को अपनी अनंतशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥८॥ जो अग्नि में ठहरा हुआ अग्नि के मध्य में जिसको अग्नि नहीं जानती अग्नि जिसका शरीर है जो अग्नि को अपनी अनंतशक्ति में थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥९॥ जो आकाश में ठहरा हुआ आकाश के मध्य में जिसको आकाश नहीं जानता आकाश जिसका शरीर है जो आकाश को अपनी अनंतशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥१०॥ जो वायु में ठहरा हुआ वायु के मध्य में जिसको वायु नहीं जानता वायु जिसका शरीर है जो वायु को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥११॥

श्रुति के प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि में ईश्वर व्यापक है अतएव वह साकार है। व्यापकत्वेन ईश्वर को साकार कह दिया। अब यह दिखलावेंगे कि सृष्टि

में जितने आकार हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे ब्रह्म को छोड़ कर अन्य कोई रूप ही संसार में नहीं है जितने रूप दृष्टिगत होते हैं ये समस्त रूप ईश्वर के निज रूप हैं इसके विवेचन को आप नीचे देखने की कृपा करें।

हमको सब से पहिले यह जानना चाहिये कि पृथ्वी किस चीज से बनी है। जब हम पृथ्वी के बनने की खोज को उठाते हैं तो पता चलता है कि पृथ्वी जल से बनी इसमें प्राचीन और नवीन किसी को भी विरोध नहीं। अब हमको इतना ज्ञान हुआ कि वास्तव में पृथ्वी कोई चीज नहीं है किन्तु जब जल में सञ्चलन शक्ति उत्पन्न होती है, सञ्चलन शक्ति के अभाव से जल कठोर हो जाता है और वही पृथ्वी रूप धारण कर जाता है पृथ्वी को सत्ता कोई भिन्न सत्ता नहीं है किन्तु जलसत्ता का कठिन रूप पृथ्वी कहलाती है।

अब जल का विवेचन करिये। जल क्या चीज है अग्नि में संचलन उत्पन्न होने से जल बन जाता है, अग्नि का रूपान्तर ही जल है पाश्चात्य विद्वानों का सिद्धान्त है कि यह पृथ्वी प्रथम आग का गोला थो उस अग्नि से जल बना, जल कठोर होकर पृथ्वी बनी, जल कोई वस्तु नहीं है किन्तु अग्नि का रूपान्तर ही जल है, जल का कारण अग्नि हुआ। अब अग्नि के निर्णय करने में हम इस फल पर पहुंचते हैं कि दो विरुद्ध धर्म वाले वायु के मिलने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, अग्नि कोई पृथक् चीज नहीं है वायु का दूसरा रूप हो अग्नि है। अब यह विचार करना है कि वायु क्या चीज है ? इस निर्णय में हम यह जानते हैं कि आकाश के जो सूक्ष्म परमाणु हैं उनमें जब सञ्चलन शक्ति (हरकत) उत्पन्न होती है तो आकाश के सूक्ष्म परमाणु कुछ कठोर हो जाते हैं और वे धक्का देने लगते हैं इसी का नाम वायु है। प्रत्यक्ष में आप हाथ में पंखा ले लीजिये और उसको हिलाइये, पंखे के हिलने से आकाश के परमाणुओं में संचलन शक्ति उत्पन्न हो जावेगी वे परमाणु धक्का देंगे वही वायु कहलावेगा। सिद्ध हुआ कि वायु कोई भिन्न सत्ता वाला पदार्थ नहीं है किन्तु आकाश का रूपान्तर है। बस फल निकला कि पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई, जल अग्नि से बना, अग्नि वायु का कार्य है, वायु आकाश से बन जाता है अब निर्णय यह करना है कि आकाश किस चीज से बनता है। इसके ऊपर फ़्लासफरों की और साइंसवेत्ताओं की बुद्धि विचार छोड़ देती है। यहां पर वेद से काम लेना होगा। कारण इसका यह है कि जहां पर संसार की फ़्लासफियां चीं बोल जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं वहां से वैदिक विज्ञान का आरंभ होता है सर्वोपरि विज्ञान वैदिक ज्ञान बतलाता है कि वह जो निराकार ब्रह्म है, जहां पर सृष्टि नहीं है, जिसको अमृत

कहा है उससे और यह जो दृश्य ब्रह्माण्ड रूप ईश्वर है इससे आकाश उत्पन्न होता है अब सिद्ध होगया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं वे सब ब्रह्म के रूप से उत्पन्न हुये हैं ब्रह्म से भिन्न किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि, इन तीन ही तत्वों में रूप हैं और यह तीनों हो ब्रह्म से बने हैं अतएव पृथ्वीरूप ब्रह्म, जलरूप ब्रह्म, अग्निरूप ब्रह्म साकार है। इसको वेद ने जिस प्रकार लिखा है उसको हम नीचे लिखते हैं--

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः।
वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी ॥

तैत्ति० १ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १

उस अदृश्य अमृत ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

संसार में जितने रूप दृष्टिगोचर होते हैं ये सब ईश्वर के रूप हैं अतएव सर्व स्वरूपता को लेकर इसको साकार मानते हैं। जब समस्त रूप ब्रह्म के रूप हैं सृष्टि हो ब्रह्म रूप है तब इस ईश्वर को निराकार कहना भूल है, प्रमाद है, मूर्खता की पराकाष्ठा है। पंचतत्व को वेद ने ईश्वर के रूप बतलाये हैं उस बतलानेवाली श्रुति को हम नीचे लिखते हैं आप पढ़ने की कृपा करें--

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च। तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षात् ॥ अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षम्।

बृह० अ० ४ ब्रा० ३ कं० १।२।३।

ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त (साकार) दूसरा अमूर्त (रूपरहित)। वायु और अन्तरिक्ष से भिन्न पृथ्वी, जल, तेजात्मक ब्रह्म का मूर्त रूप हैं—आकाश वायु ये अमूर्त हैं।

पाँच तत्वों की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है जिनमें से आकाश, वायु ये दो रूप अमूर्त हैं और अग्नि, जल, पृथ्वी, ये तीन रूप मूर्तिमान् हैं। मूर्तिमान और अमूर्त दोनों प्रकार के तत्वों का उपादान कारण ब्रह्म है इस कारण तत्वों के रूपों को ब्रह्म के रूप कहा गया। जब तत्वात्मक ब्रह्म है तत्वों से भिन्न ब्रह्माण्ड में ब्रह्म है ही नहीं तो फिर उसको केवल निराकार कहना क्या प्रमाद नहीं है। जब कि मूर्त रूप से ब्रह्म दृश्यमान है तब तो साकार सिद्ध ही है। कोई कोई सज्जन मेरे घोड़े के तीन टांग इस न्याय को लेकर केवल मंत्रभाग को ही प्रमाण मानते हैं उनके तोष के लिए हम यजुर्वेद के पुरुष सूक्त का एक मंत्र लिखे देते हैं—

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

यजु० अ० ३१

जो भूत हो चुका है और जो आगे को होगा यह समस्त पुरुष ही है।

जितने रूप संसार में दृष्टिगोचर होते हैं ये समस्त ब्रह्म के रूप हैं क्योंकि ब्रह्म इनका उपादान कारण है। जिस प्रकार घट, नाद, सराव, आदि वर्तन मिट्टी के रूप होते हैं तथा जिस प्रकार कटक, कुंडल आदि आभूषण सुवर्ण के रूप होते हैं क्योंकि वर्तनों का उपादान कारण मृत्तिका है वे मृत्तिका के रूप हैं, आभूषणों का उपादान कारण सुवर्ण है वे सुवर्ण के रूप हैं। वेद कहता है कि पंचतत्वों का उपादान कारण ब्रह्म है इस कारण ये सब ब्रह्म के रूप हैं। ब्रह्माण्ड में जितने रूप हैं वे सब ब्रह्म के रूप हैं जब कि ब्रह्म के सैकड़ों, सहस्रों, असंख्यक रूप हैं फिर वह निराकार कैसा ? यह समझ में नहीं आता। जब कि सर्व आकृतियां ब्रह्म की ही हैं तबतो ब्रह्म सर्वस्वरूप है अतएव वह साकार है। अब सिद्ध हो गया कि जिस अंश में सृष्टि नहीं है उस अंश में ब्रह्म निराकार है और जिस अंश में सृष्टि है उस अंश में व्यापक और सर्वस्वरूप होने से ब्रह्म साकार है।

व्यापक और सर्वस्वरूप से हमने ब्रह्म की साकारता वेद विज्ञान से सिद्ध कर दी। अब यह सिद्ध करेंगे कि ईश्वर अवतार लेता है अतएव वह साकार है। अवतार के विषय में लिखे हुए प्रमाणों को नीचे देखिये—

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तर्जायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वाः ॥

यजु० अ० ३९

प्रजापति ईश्वर गर्भ में आता है अजन्मा होकर भी [वह बहुत प्रकार से जन्म धारण करता है उसके शरीर को धीर भक्त पुरुष देखते हैं वह कौन ईश्वर है जिसमें ये समस्त ब्रह्माण्ड ठहरे हैं।

यद्यपि ईश्वर के गर्भ में आने के बहुत मंत्र हैं तथापि माननेवालों के लिए एकही प्रमाण तोषदायक होजाता है इसी न्याय को आगे रखकर हमने केवल एक मंत्र प्रमाण में दिया है। प्रजापति ईश्वर गर्भ में कैसे आता है, अजन्मा होकर वह किस प्रकार जन्म धारण कर लेता है इसको वेद स्पष्ट रूप में दिखलाता है। पढ़िये—

ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

अथर्व० १९। २३। ३०

(ब्रह्म) ब्रह्म ने (ज्येष्ठा) बड़े (वीर्याणि) बल (संभृता) धारण किये हैं (ब्रह्म) ब्रह्म ने ही (अग्रे) सृष्टि के आरंभ में (ज्येष्ठं दिवम्) बड़े द्युलोक को (आततान) विस्तार किया है (भूतानाम्) सब प्राणियों में (प्रथमोत) पहले वही (ब्रह्म) ब्रह्मा रूप से (जज्ञे) प्रकट हुआ है (तेन) उस (ब्रह्मणा) ब्रह्म से (स्पर्धितुम्) स्पर्धा करने को (कः) कौन समर्थ है।

वेद ने गर्भ में आने और प्रकट होने को स्पष्ट करने के लिये सब से पहले प्रथमावतार ब्रह्मा को लिखा है वही ब्रह्मावतार हमने पाठकों के आगे रख दिया। कई एक पाठक तो हमारे इस लेख को देख कर प्रसन्न होंगे और कई एक अप्रसन्न होकर इसका परिश्रम करेंगे कि किसी प्रकार इस मंत्र का और अर्थ करदें जिससे वेद में अवतार सिद्ध न हो। आजकल इस बात का रिवाज हो गया है कि वेद के अर्थ का विचार न करना, वेद की आज्ञा को न मानना किन्तु जहाँ तक बन सके वेद मंत्र को तोड़ मरोड़ कर अपनी इच्छा के अनुसार मनमाना अर्थ गढ़ लेना इसी प्रणाली को स्वीकार करके आजकल के लोगों ने वेद में रेल, तार, ट्राम्वे, मोटर, स्वराज्य, एकता बना कर वेदमहत्व को मिट्टी में मिला दिया। हमको सन्देह है कि कहीं हमारे सत्य अर्थ को विगाड़ कर मनमाना अर्थ न कर बैठें इस सन्देह को दूर करने के लिये हम ब्रह्मा के अवतार की इतनी पुष्टि करेंगे कि सारा संसार मिल कर भी हमारे अर्थ को न बिगाड़ सके। हम अपने मंत्र की पुष्टि में ब्रह्मा के अवतार धारण करने में फिर दूसरा प्रमाण देते हैं देखिये—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।

मुण्डकोपनिषद्।

ब्रह्माजी सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुये जो संसार के रक्षक और विश्व के बनानेवाले हैं।

जिस ब्रह्मावतार को अथर्ववेद ने कहा था उसी ब्रह्मावतार को मुण्डकोपनिषद्द ने कहा और मुण्डकोपनिषद्द ने यह भी बतलाया कि जिस ब्रह्मा ने अवतार धारण किया है वह कोई मनुष्य अथवा देवता नहीं है किन्तु वह विश्व का बनानेवाला और भुवनों की रक्षा करनेवाला साक्षात् ईश्वर है अब हम इसको और पुष्ट करते हैं।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यजु० १३ । ४

हिरण्यगर्भ प्रजापति सब से पहले वर्तमान था ब्रह्मा रूप से प्रकट होकर सबका पति हुआ वह ब्रह्मा पृथ्वी, दिवलोक को धारण किये है उस ब्रह्मा के निमित्त हम हवि देते हैं ।

ब्रह्मावतार की और भी पुष्टि देखिये—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ मनु० अ० १ । ९

वह जो सुवर्ण की कान्तिवाला सूर्य के समान तेजधारी अण्ड था उस अण्ड में सर्व लोक का पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुआ ।

कोई कोई सज्जन यह कह दिया करते हैं कि ब्रह्मा का अवतार तो पुराण में नहीं है किन्तु उनका यह कहना सर्वथा ही मिथ्या है पुराणों में ब्रह्मा का अवतार स्पष्ट रूप से लिखा है, नीचे देखिये—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिन्द्रां वितन्वतः ।
नाभिहृदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥
श्रीमद्भा० स्कं० १ अ० ३

वाष्परूप जल में शयन करनेवाले योगनिद्रा में निमग्न पुरुष के नाभिहृद कमल से समस्त विश्व का रचनेवाला ब्रह्मा प्रकट हुआ ।

ऊपर दिये हुये प्रमाणों से ब्रह्मावतार इस प्रकार पुष्ट है कि किसी के हिलाये नहीं हिलता । न तो कोई यह कह सकता है कि ये प्रमाण वैदिक साहित्य में नहीं हैं और न कोई यह कह सकता है कि इनमें ब्रह्मावतार नहीं है और न कोई चालाकी से इन प्रमाणों के अर्थ को ही बदल सकता है यदि वह वेद को प्रमाण मानता है तो उसको विवश होकर ब्रह्मावतार मानना होगा या वेद को ही छोड़ देना होगा इससे अधिक अवतार की पुष्टि हम क्या कर सकते हैं । अब वाराह अवतार लिखते हैं—

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥७॥ श्रीमद्भा० स्कं० १ अ० ३

इस विश्व के उत्पन्न के निमित्त रसातल में गई हुई पृथ्वी को उठाते हुये यज्ञेश भगवान् ने द्वितीय सूकर शरीर को धारण किया। जिस अवतार को श्रीमद्भागवत ने कहा है उसी को वैदिक सिद्धान्त में इस प्रकार लिखा है—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।

तैत्ति० अ० प्र० १ अनु० १ मं० ३०

हे भूमि तुमको असंख्य भुजावाले कृष्ण वाराह ने उद्धार किया है। और देखिये—

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्या स प्रादेशमात्री तामेमूषइति वराह उज्जघान सोस्या पतिः प्रजापतिरिति ॥

श० १४। १। २। ११

पहले भूमि प्रादेश मात्र प्रकट हुई उसको वराह ने उद्धार किया सो इसका पति प्रजापति है। और देखिये—

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय ॥४८॥

अथर्व० कां० १२ अनु० १

अर्थात् वाराह सूकररूपधारी प्रजापति ने यह पृथिवी उद्धार की है। अब वामन अवतार का आलोचन करते हैं—

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० १ अ० ३

प्रभु पंद्रहवां वामनावतार धारण करके याञ्चा करने के लिये बलि की यज्ञ में गये तीन पैर पृथ्वी मांगने के बहाने से बलि को स्वर्गाधिप बनाया। इसमें वैदिक प्रमाण देखिये—

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।

कठ उ० वल्ली ५ श्रु० ३

मध्य में बैठे हुये वामन की विश्वेदेव उपासना करते हैं। और प्रमाण देखिये—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥

यजु० ५ मं० १५

विष्णु ने इस दृश्यमान् ब्रह्माण्ड को नापा और तीन प्रकार से पद रक्खा इसके पद में समस्त संसार स्थित है।

यह मंत्र यजु, साम, ऋग् इन तीनों वेदों में आया है और जो अर्थ हमने किया है वही अर्थ इस मंत्र का सायण ने किया है निरुक्तकार मुनि यास्क ने इसके ऊपर जो लिखा है उसको पढ़िये--

यदिदं किं च तद्विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसी-त्यौर्णनाभः। समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यते। अपि वोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यते इति। पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा।

इसी विषय में शतपथ लिखता है कि--

"वामनो ह विष्णुरास"।

यद्यपि वैदिक सिद्धान्त में पुराणोक्त समस्त ही अवतारों का वर्णन आता है तो भी हमने यहाँ पर तीन ही अवतारों का वर्णन लिखा है इसका कारण यह है कि जिन लोगों को वेद प्रमाण है या यों कहिये कि वेद पर जिनका विश्वास है वे लोग वेद के एक मंत्र से ही मानने को तैयार हैं और जो लोग संसार को दिखलाने के लिये तो वेद मानना स्वीकार करते हैं और वास्तविक में अपने मानसिक सिद्धान्तों के सन्मुख वेद का कुछ भी गौरव नहीं समझते उनको वेद तो क्या समझावेगा यदि ईश्वर भी अवतार धारण करके आवे और उनको समझाने लगे तो वे अपनी मानसिक कल्पना के सन्मुख ईश्वरीय ज्ञान को भी तुच्छ समझेंगे। ऐसे महानुभावों के समझाने के लिये समस्त वेद मन्त्रों के प्रमाणों में भी शक्ति नहीं है। वाराह अवतार हमने इस कारण से लिखा कि आजकल वैदिक होने का दावा करनेवाले वाराह अवतार को आगे रख पुराणों की हंसी उड़ाया करते हैं अतएव हमने वेद से वाराह अवतार लिख कर यह सिद्ध कर दिया कि तुम पुराणों की हँसी नहीं उड़ाते किन्तु हँस हँस कर तुम संसार से वेद का गौरव मिटा देना चाहते हो। कई एक सज्जन ऐसे भी हैं कि जिनके चित्त में वेद का भी कोई गौरव नहीं है उनका कहना यह है कि यदि आप युक्ति द्वारा हमारी शंकाओं को मिटा दें तो फिर हम ईश्वर साकारवाद को मान लें। प्रायः उनकी शंकाओं को हम आगे रख कर उत्तर देने का उद्योग करेंगे (१) ईश्वर को अवतार धारण करने की

क्या आवश्यकता है, (२) यदि अवतार धारण करेगा तो कर्मबन्धन के बिना किस प्रकार शरीर ग्रहण कर लेगा, (३) जब ईश्वर अजन्मा है तो फिर उसका जन्म कैसा, (४) निराकार ईश्वर साकार किस प्रकार होगा, (५) एकरस ईश्वर का अवतार कैसा, (६) जब ईश्वर शरीर धारण करके अयोध्या में आ गये तो अयोध्या को छोड़ कर शेष भूतल तो बिना ईश्वर का हो गया और (७) एक ही समय में ईश्वर के आठ आठ अवतार इतना अन्धेर, इसका क्या उत्तर है ?

अब हम क्रम से इन सातों प्रश्नों का उत्तर देंगे। प्रथम प्रश्न ईश्वर को अवतार धारण करने की क्या आवश्यकता है, इसका उत्तर देने से पहिले हम इनसे एक प्रश्न करेंगे कि तुम्हारा ईश्वर कैसा है इस प्रश्न के ऊपर हमको उत्तर मिलता है कि ईश्वर तो सर्वशक्तिमान् है इस उत्तर को पाकर हमारा प्रश्न होता है कि वह अवतार धारण करता है या नहीं उत्तर मिलता है कि नहीं इसके ऊपर हमारा कहना यह है कि फिर वह सर्वशक्तिमान् कैसा क्योंकि उसमें अवतार धारण करने की तो शक्ति ही नहीं आप क्या उसको झूठ ही सर्वशक्तिमान् कहते हैं जब अवतार धारण करने की उसमें शक्ति नहीं तब तो एक शक्ति कम सर्वशक्तिमान् हुआ, इसका इनके पास क्या उत्तर है ? दूसरा प्रश्न यह है कि ये जो अवतार की आवश्यकता पूछते हैं इन्होंने क्या ईश्वर के और कार्यों की आवश्यकताओं को जान लिया है यदि ये कहें कि हमने ईश्वर के किसी कार्य की आवश्यकता को नहीं जाना है तो फिर केवल अवतार की आवश्यकता जानने की इच्छा क्यों ? ईश्वर के समस्त कार्यों की आवश्यकता जानना चाहिये। यदि ये कहें कि और आवश्यकतायें तो हमने जान लीं केवल अवतार की आवश्यकता शेष है तो फिर हम प्रश्न करेंगे कि ईश्वर अनेक ब्रह्माण्डों को रचे और इनके पालन पोषण का भार अपने ऊपर रक्खे इसकी क्या आवश्यकता ? जल के "ग्राह" और "शेर" "सर्प" जो दुनियां के प्राणियों को यमराज की डाक में भेज दें इनकी क्या आवश्यकता ? कोई यही बतला दे कि ईश्वर ने कई एक प्राणियों की ऐसी प्रकृति क्यों करदी कि जो अन्य प्राणियों का भोग लगा कर ही अपना पेट भरें ? ईश्वर ने "वर्र" "ततैया" "बिच्छू" क्यों बनाये ? इनके ज़रा से छूने पर मनुष्य गौहरजान के नाच को मात कर देता है। भगवती प्लेग और उसके दादा इनफ्लूंजा की क्या आवश्यकता ? आप चार मनुष्य योरुप से और चार विद्वान् अमेरिका से और चार लामा जापान से और चार पण्डित भारतवर्ष से इकट्ठे करके इन सोलह के आगे यह प्रश्न कीजिये कि बबूर (कीकर) के काँटा क्यों लगाया सबकी वाणी बन्द, सब की विद्या खतम, इतने विद्वान् होकर भी बबूर के काँटे की आवश्यकता को नहीं जानते। जब ईश्वर के किसी कार्य की आवश्यकता को भी मनुष्य नहीं जानता तो फिर अवतार की आवश्यकता को तत्काल समझ जावेगा यह

हमारी बुद्धि में नहीं आता अस्तु इस अवतार की आवश्यकता पर एक मंत्र वेद ने लिखा है हम उसी को आगे रक्खे देते हैं—

रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश॥

ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८

(इन्द्रः) परमेश्वर (मायाभिः) अपनी अनंत सामर्थ्यों से (पुरुरूपः) अनेक देहों के रूपवाला (ईयते) होता है (तत्) सो (अस्य) इस अपने (रूपम्) रूप को (प्रतिचक्षणाय) सब भक्तों पर विख्यात करने के लिये (रूपं रूपं प्रतिरूपः) जैसे जैसे रूप की इच्छा हो तैसा तैसा (वभूव) हुआ (हि) निश्चय (अस्य) इस परमेश्वर के (हरयः) रूप (शत) सैकड़ों हैं (दश) दश मुख्य हैं।

इस मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि अपने भक्तों के दर्शनार्थ प्रभु रूप धारण करते हैं। गीता में लिखा है कि—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

सज्जनों की रक्षा के निमित्त, दुरात्माओं के नाशार्थ, धर्म की स्थापना के लिये हम समय समय पर अवतार लेते हैं।

यह मोटा लक्षण अवतार का मिलता है सूक्ष्म लक्षण प्रत्येक अवतार का पृथक् पृथक् है जैसे ब्रह्मा होकर ईश्वरीयज्ञान संसार को उपदेश किया। नर नारायण होकर अखंडित ब्रह्मचर्य की रक्षा कर आदर्श दिखलाया। जिस वेद धर्म का ब्रह्मा ने उपदेश किया था उसकी पूर्ण मर्यादा दिखलाने के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र का अवतार धारण किया। वह सर्वशक्तिमान् हैं इसका परिचय देने के लिये वामनावतार। ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु में ईश्वर व्यापक है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देने के लिये नृसिंहावतार। ईश्वर के दर्शन से भववन्ध टूट कर निर्वाणपद की प्राप्ति होती है इसको दिखलाने के लिये तथा ब्रह्मविद्या को गौ बना कर दूध निकाल कर दूध का पवित्र मक्खन गीता संसार को देने के लिये प्रभु कृष्णचन्द्रजी का अवतार। प्रजा की रक्षा के लिये आप विष खा जाना, संसार को विभूतियां देकर आप आत्माराम रहना इसकी शिक्षा के लिये शंकरावतार। ये समस्त कार्य भूतल पर तब तक नहीं हो सकते थे जब तक कि इनका प्रकाश करके ईश्वर अपने शरीर से न दिखला दे इन कारणों से प्रभु के अवतार हुये हैं।

बिना कर्मबन्धन के ईश्वर का संसार में आना इसके ऊपर एक श्लोक कहे देते हैं—

> कारागृहे गच्छति भूमिपालो
> हेतुर्दया तत्र न कर्मबन्धः ।
> एवञ्च सर्वेश्वरदेवदेवो
> दयावतारो न च कर्मतन्त्रः ॥

जैसे राजा कारागृह में बिना अपराध के जाता है उसके वहां जाने में कानून तोड़ने का अपराध हेतु नहीं है किन्तु कैदियों के ऊपर जो दया है वही हेतु है इसी प्रकार समस्त देवों का देव जगदीश्वर दया को हेतु बना कर अवतार लेता है उसके शरीर धारण का हेतु कर्मबंधन नहीं है ।

अजन्मा ईश्वर का जन्म कैसा ? इसके उत्तर में हमको इतना ही कहना है कि जिस प्रकार ईश्वर अजन्मा है उसी प्रकार जीव भी अजन्मा है । अजन्मा जीव मनुष्य बन कर विद्या पढ़े, विवाह करे, दर्जनों बाल बच्चे पैदा कर दें, अदालत का हाकिम और महा-महोपाध्याय बन जाय, लँगड़ा हो जाय, दांत टूट जायँ, अन्धा हो जाय, मर जाय इतने पर भी अजन्मा का अजन्मा बना रहे सब खेल खेल गया परन्तु अपने अजन्मापने को नहीं छोड़ा इसमें तुमको कभी शंका न हुई । ईश्वर शरीर धारण कर ले तो तुम्हारे दिमाग में टोकरा भर शंका क्यों आ जाती हैं क्या ईश्वर जीव कितनी भी शक्ति नहीं रखता ।

निराकार ईश्वर साकार किस प्रकार होगा ? इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त है कि दियासलाई जलाते समय निराकार अग्नि साकार कैसे हो जाता है । निराकार बिजली गिर जाने से वृक्ष में आग लग कर प्रत्यक्ष अग्नि कैसे बन जाता है । दो अरणियों के रगड़ करने से उन अरणियों में व्याप्त निराकार अग्नि साकार बन कर रुई में जलता हुआ कैसे दीख जाता है । लोहे को पत्थर में मारने से उसमें से निराकार अग्नि निकल कर साकार बन चिलम कैसे प्या जाता है । सोच लीजिये कि जब निराकार अग्नि साकार बन जाता है, जब निराकार जीव साढ़ेतीन हाथ का बन जाता है तो निराकार ईश्वर के शरीर धारण करने में क्या कोई पुलिस का कानून लग जाता है कि जो बलात्कार निराकार ईश्वर को शरीर धारण करने नहीं देता ।

और जो तुम कहते हो कि एकरस ईश्वर का साकार कैसा तो क्या तुम्हारी सम्मति में षट्रस ईश्वर का अवतार होता है । बांस में मूल से लेकर शिरोभाग पर्यन्त

एकरस अग्नि रहता है फिर दो बांसों के घिसने से अग्नि शरीर धारण कर वन को क्यों फूँक देता है। बांस में एकरस रहनेवाले अग्नि ने स्वरूप धारण क्यों किया। नीबू के पेड़ में एकरस रहनेवाली खटाई खटाई का स्वरूप लेकर नीबू के फल में क्यों आ गई ? इत्यादि उदाहरणों से सिद्ध है कि एकरस से व्याप्त वस्तु भी रूप धारण कर लेती है। इत्तु में रस एकरूप से रहता है यदि वह रूप धारण न करता तब तो तुम गुड़, शकर आदि मिठाई को तरस कर मर जाते। दूध में एकरस घृत यदि अपने साकार रूप को न बनाता तो तुम्हें हलुआ पूरी भी न मिलती। सांभर झील में एकरस रहने वाला क्षार यदि नमक न बनता तब तो तुम्हारी जीभ बुखारवालों की जीभ की तुल्यता धारण कर लेती। एकरस का रूप बना कर मजा उड़ाओ और फिर शंका भी करो, तुम बड़े बुद्धिमान् हो।

ईश्वर अवतार धारण करके जब अयोध्या में आगया तब अन्य देश में नहीं रहा यह तुम्हारा विचार बड़ा अच्छा है तुम बड़े बुद्धिमान् हो परन्तु अपने मन में ही बुद्धिमान् बने रहो इसके उत्तर में हम एक ही तर्क देते हैं उसी से प्रश्न गायब--

अग्निर्यथैकः परिदृश्यतेऽत्र
मुंगेरदानापुरवंगदेशे।
पेशावरे झेलम इन्द्रप्रस्थे
तथैव विष्णुश्च शरीरधारी॥

जैसे एक निराकार अग्नि जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक है सायंकाल मुंगेर में साकार बन कर सैकड़ों दीपों से प्रकाश करने लगा। वही अग्नि दानापुर में सहस्रों रूप धारण करके प्रकाश कर बैठा। बंगाल में इसने करोड़ों स्वरूपों से प्रकाश किया पेशावर, झेलम और दिल्ली में लक्षों रूपों से इसने रात्रि का दिन बना दिया। इसके करोड़ों रूप धारण करने पर भी क्या अब संसार में निराकार व्याप्त अग्नि नहीं रहा यदि है तो दो चार अवतार धारण करने से व्यापक ईश्वर सब जगह से खिंच के एक ही स्थान में आ जाता है इसमें कोई प्रमाण है ? बस ईश्वर के व्यापक और प्रकाश होने में अग्नि का ही एक दृष्टान्त पर्याप्त है कि उसके रूप धारण करने पर भी उसकी व्यापकता में किञ्चित् भी न्यूनता नहीं होती।

सातवें प्रश्न के उत्तर में यही युक्ति पर्याप्त है। जैसे एक निराकार अग्नि ने करोड़ों रूप धारण किये और वे छोटे बड़े सब प्रकार के किये और एक रूप ने दूसरे रूप का अवरोध नहीं किया, करोड़ों रूप धारण करने पर कोई दोष नहीं आया फिर एक

ईश्वर ने शंकर, ब्रह्मा, राम, आदि अनेक रूप धारण कर लिये तो यहाँ शंका क्यों टूट पड़ी विचार कर प्रश्न करिये।

हमको इस पाद में इतना और कहना है कि जो लोग ईश्वर को साकार नहीं मानते वे ईश्वर के सर्वव्यापक होने में कोई प्रमाण नहीं रखते दूसरे जो लोग अवतार नहीं मानते उनके यहां ईश्वरीय ज्ञान, जो ईश्वर ने मनुष्यों के लिये दिया है उसकी सत्यता में कोई प्रमाण भी नहीं रखते। हम आगे इसी बात को स्पष्ट करेंगे। जो लोग ईश्वर को सृष्टि का उपादान कारण नहीं मानते या इसको यों समझिये कि जिन्होंने पंचतत्त्वों की उत्पत्ति ईश्वर से नहीं मानी वे भिन्न भिन्न प्रकार से सृष्टि की रचना मानते हैं किन्तु विद्वानों के सम्मुख वह अपने सिद्धान्त को दृढ़ नहीं बना सकते उनका सिद्धान्त विचार करने पर कल्पित ठहर जाता है। आप इसको इस प्रकार समझें कि ये लोग समस्त स्थान में अपने सिद्धान्त की पुष्टि करते करते तुम्हारा ईश्वर कहां है इस प्रश्न के उत्तर में गिर जाते हैं यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसको आगे रख कर वैदिक सिद्धान्त के आगे संसार के समस्त मत पांच मिनट में अपनी भूल सिद्ध कर बैठते हैं। हम समस्त मतों का उदाहरण न देकर केवल दो मतों का उदाहरण देंगे (१) वह मत है जो ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीन को अनादि मानता है (२) वह मत है जो ईश्वर की आज्ञा से सृष्टि का होना समझता है।

प्रथम मत का कहना यह है कि ईश्वर, जीव, प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं, सृष्टि के आरंभकाल में ये तीनों विद्यमान थे उस अवसर पर ईश्वर की इच्छा हुई कि हम सृष्टि को रचें। ईश्वर ने प्रकृति को लेकर अपनी अनेक शक्ति से ब्रह्माण्ड तैयार किया इस प्रकार यह संसार रचा गया। जैसे कुंभकार मिट्टी को लेकर घट बना दे, जिस प्रकार स्वर्णकार सुवर्ण को लेकर कटक, कुण्डल बनादे, जिस प्रकार तन्तुवाय सूत को लेकर वस्त्र बना दे उसी प्रकार ईश्वर ने प्रकृति को लेकर संसार रचा। जैसे घट का कुलाल, आभूषण का स्वर्णकार, वस्त्र का तन्तुवाय निमित्त कारण है उसी प्रकार संसार का निमित्त कारण ईश्वर है।

ऐसा माननेवाले महानुभावों से हमारा प्रश्न है कि जिस ईश्वर ने यह संसार बनाया है वह तुम्हारा ईश्वर कहाँ रहता है इसके ऊपर इनका उत्तर होता है कि ईश्वर तो समस्त ब्रह्माण्ड में है ऐसा कोई परमाणु भी न निकलेगा कि जिस स्थान में ईश्वर न हो इनके इस उत्तर को सुन कर हम यही कहेंगे कि बस हो चुका अब तुम्हारा मत विद्वानों के मानने योग्य नहीं रहा, असत्य सिद्ध हो गया।

यदि कोई हमसे पूछे कि यह क्या बात है, आपका मिज़ाज क्यों बिगड़ गया,

आपने यह कैसे जान लिया कि इनका मत विद्वानों के मानने के योग्य नहीं रहा और वह असत्य हो गया। इस प्रश्न पर हमारा उत्तर यह है कि कल्पना करो हम अपने पांच सात मित्रों सहित बुद्धू कुम्हार के यहाँ गये हमें बुद्धू कुम्हार से काम था, उससे मिलना था। जब हम दरवाजे पर पहुंचे तो कुम्हार हमको न मिला उसका लड़का मिला हमने उस लड़के से पूछा कि तुम्हारे पिता कहां गये हैं उसने उत्तर दिया कि कल एक घट बनाया था उस घट के प्रत्येक अणु में हमारे पिता व्यापक होगये हैं हमारे कई वार पूछने पर भी बार बार उसने यही उत्तर दिया हमने समझा कि यह भंग पी गया है अतएव कुछ का कुछ वकता है क्या कभी घट के एक एक अवयव में कुलाल धँस सकता है। हम आगे को चल दिये। थोड़ी दूर चलने से एक जुलाहे का घर आ गया हमको उससे भी कुछ काम था हमने उसको बुलाया तन्तुवाय कहीं गया था मकान के अन्दर से उसकी स्त्री निकली हमने उससे पूछा कि तेरा पति कहाँ है उसने उत्तर दिया कि कल कपड़ा बुना था उस कपड़े के एक एक सूत में धँस बैठा। हमने फिर पूछा कि हम तेरे पति को पूछते हैं स्त्री ने उत्तर दिया कि जी हां मैंने उसी को बतलाया है हम समझ गये कि यहाँ तो आज आवा का आवा ही बिगड़ गया जैसे कुम्हार का लड़का प्रमाद में था वैसे ही यह स्त्री भी है। आगे बढ़े। चलते चलते एक बढ़ई का घर आ गया हमको उससे भी काम था किन्तु वह मिस्त्री कहीं गया था और उसके घरके पास एक पं० बैठा था पं० जी से हमने पूछा कि यह बढ़ई कहां गया है पं० जी ने कहा कि कल एक साहब की मेज बनाई थी उसके ज़र्रे २ में धँस बैठा। यह सुनकर हमको बड़ा आश्चर्य हुआ और हमने पं० जी से कहा कि अगर कुम्हार का लड़का कहे तो कोई आश्चर्य नहीं, तन्तुवाय की स्त्री कहे तो कोई शोक नहीं, शोक तो इस बात का है कि तुम लिखे पढ़े विद्वान् होकर कहते हो कि बढ़ई मेज के एक एक अवयव में धँस गया यह कभी सम्भव है, कभी आज तक ऐसा हुआ है कि आज ही अनोखा मिस्त्री मेज में लम्बी तानेगा। पं० जी को बड़ा क्रोध आया और आप बोल उठे कि वाह वाह शास्त्री जी आप भी खूब कहते हैं यदि घट का निमित्त कारण कुलाल घट में नहीं धँस सकता, वस्त्र का निमित्त कारण तन्तुवाय वस्त्र में व्यापक नहीं हो सकता, मेज का निमित्त कारण रथकार मेज में व्यापक नहीं हो सकता तो फिर याद रखिये कि संसार का निमित्त कारण ईश्वर भी संसार में व्यापक न हो सकेगा। जब कमण्डलु का बनानेवाला ठठेरा कमण्डलु में नहीं धँसता, आभूषण का बनानेवाला सुनार आभूषण में व्यापक नहीं होता, कुठार का निर्माता अयस्कार कभी कुठार में नहीं धँसा। जब कोई भी निमित्त कारण कार्य कर्त्ता कार्य में नहीं धँसता तो फिर संसार का बनानेवाला ईश्वर संसार में कैसे धँसेगा। इस उदाहरण से पाठक समझ गये होंगे कि वस्तुओं के बनानेवाले जब

वस्तुओं में नहीं धँसते तो फिर ईश्वर कैसे धँसेगा। बस, जो ईश्वर को निमित्त कारण मानते हैं वे त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं कर सकते कि ईश्वर संसार में व्यापक है उनका ईश्वर कहां रहता है इसका प्रमाण दें सर्वव्यापक ईश्वर को न सिद्ध करने से विद्वानों के सन्मुख इनका सृष्टिक्रम सोलह आने असत्य और अमान्य हो गया। अब "कुन" वालों की कथा सुनिये इनका कथन है कि जब ईश्वर की सृष्टि रचने की इच्छा हुई तब ईश्वर ने कहा कि कुन (हो जा) ईश्वर के इतना कहने पर संसार बन गया ६ दिन में संसार बन गया और सप्तम दिन ईश्वर ने आराम किया। इनसे भी हमारा प्रश्न है कि जिस ईश्वर ने संसार के बनने की आज्ञा दी है वह तुम्हारा ईश्वर कहां है यह भी उत्तर देते हैं कि सब जगह किन्तु इनका यह कहना पागल के भाषण से अधिक कुछ भी गौरव नहीं रखता। इसमें उदाहरण देखिये—भारतवर्ष में जो रेल बिछी है यह किस के हुक्म से बिछी है आप कहेंगे कि भारत गवर्नमेन्ट की आज्ञा से। हमने एक पुरुष से प्रश्न किया कि भारत गवर्नमेन्ट कहां रहती है उसने उत्तर दिया कि रेल के एक एक परमाणु में व्यापक है क्या यह उत्तर ठीक है। रेल के बनने की आज्ञा देनेवाली भारत गवर्नमेन्ट रेल में धँस बैठेगी यदि नहीं धँसती तो फिर संसार के बनने की आज्ञा देनेवाला ईश्वर संसार में किस न्याय से धँसेगा।

दूसरा उदाहरण देखिये—कल्पना करो कि हम और आप शक्खर शहर के सिंध नदी के पुल पर पहुंचे। अद्वितीय पुल को देख कर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। हमने वहां पर खड़े हुए एक मनुष्य से पूछा कि यह पुल किसके हुक्म से बना उसने उत्तर दिया कि ब्रिटिश गवर्नमेंट के हुक्म से। हमने फिर प्रश्न किया कि वह ब्रिटिश गवर्नमेंट कहां है उसने उत्तर दिया कि इस पुल में व्यापक है हमने उससे पूछा कि क्या तुम पागल हो गये हो ब्रिटिश गवर्नमेंट इसमें कैसे धँसेगी उसने उत्तर दिया कि यदि पुलके बनने की आज्ञा देनेवाली ब्रिटिश गवर्नमेंट पुल के एक एक ज़र्रे में नहीं धँसती तो फिर संसार के बनने की आज्ञा देनेवाला ईश्वर संसार के एक एक परमाणु में व्यापक कैसे होगा?

वास्तव में संसार में जितने पदार्थ बनते हैं उनके बनने की आज्ञा देनेवाला कोई भी सज्जन पदार्थ में नहीं धँसता तो फिर संसार के बनने की आज्ञा देनेवाला ईश्वर संसार में कैसे धँसेगा ज़रा इसका भी तो पता लगे। इन दो प्रकार की सृष्टि को मानने वाले सज्जन सृष्टि में ईश्वर के व्यापक होने का प्रमाण न आज तक दे सके हैं न आगे को दे सकेंगे। इनका ईश्वर कहां रहता है यह प्रश्न ज्यों का त्यों बना है ठीक उत्तर न होने से विद्वानों की दृष्टि में ये दोनों मत कल्पित और असत्य ठहर जाते हैं तभी तो हम कहते हैं कि यदि ईश्वर को उपादान कारण न मानोगे, समस्त ही रूप ईश्वर के

रूप से बने हैं ऐसा सिद्धान्त न मानोगे, ईश्वर को साकार न मानोगे तो सृष्टिक्रम ही नहीं बनेगा।

अब हम पुराण के सिद्धान्त को लिखते हैं देखिये—

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति
स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० २

गर्भ में आये हुये पूर्णावतार प्रभु कृष्णचन्द्र की स्तुति करने के लिये समस्त देवता इकट्ठे होकर आये और स्तुति करते हुये कहते हैं कि भगवन् ये जो सत्प्रपंच है इसके केवल आपही प्रसूति हैं। जिस प्रकार घट की प्रसूति मृत्तिका है उसी प्रकार इस प्रपंच के जन्मदाता आप हैं और आपही इसके सन्निधान हैं जैसे ध्वंस के पश्चात् सूक्ष्म कण बन कर घट मृत्तिका में लय हो जाता है इसी प्रकार ये समस्त प्रपंच आप में लय हो जाता है और इस प्रपंच पर अनुग्रह करनेवाले भी केवल आप ही हैं और आपकी माया से आच्छादित हो गया है चित्त जिनका वे आपको ईश्वर प्रकृति प्रभृति भेदों से अनेक देखते हैं किन्तु जो विद्वान् हैं वे अनेक नहीं देखते वे तो एक ही देखते हैं।

यह पुराणों का सिद्धान्त है यही सिद्धान्त वेदों का है जिसको हम "तस्माद्वा एतस्माद्वा" इस श्रुति से साकार सिद्धि में दिखला आये हैं। पुराण और वेद ईश्वर को संसार का निमित्त कारण ही नहीं मानते किन्तु निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों ही मानते हैं इसको संस्कृत में "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" कहते हैं अर्थात् वेद पुराण का यह सिद्धान्त है कि इस प्रपंच का बनानेवाला ईश्वर है और इस प्रपंच की बनने की सामग्री उपादान कारण भी ईश्वर है इसको यों समझिये कि ईश्वर ने अपने शरीर से मेटर तैयार करके और अपने आप संसार को रचा है इसमें मकरी का दृष्टान्त है कि जाला किसने ताना मकड़ी ने जाला तैयार होने की सामग्री क्या चौपटलाल पंसारी के यहां से आ गई, नहीं नहीं जाले की सामग्री मकड़ी के एक देश में विद्यमान है मकड़ी ने ही जाला ताना है और मकड़ी में से ही जाले का मेटर निकला है। इसी प्रकार संसार के बनने की सामग्री ईश्वर में से आई और प्रपंच ईश्वर ने बनाया। यह सिद्धान्त ईश्वर के व्यापक होने का प्रमाण देता है। इस सिद्धान्त से पूछिये कि तुम्हारा ईश्वर कहां है यह कहेगा कि संसार के एक एक परमाणु में विद्-

मान है। फिर प्रश्न करिये कि कैसे तो इस सिद्धान्त के लोग उत्तर देते हैं कि जिस प्रकार घट के एक एक परमाणु में मिट्टी है क्योंकि घट मिट्टी से बना है और जिस प्रकार कपड़े के एक एक अणु में सूत है क्योंकि कपड़ा सूत से बना है और जिस प्रकार आभूषण के एक एक ज़र्रे में सोना है क्योंकि आभूषण सोने से बना है उसी प्रकार संसार के एक एक परमाणु में ईश्वर है क्योंकि संसार ईश्वर से बना है। पुराण और वेद का सृष्टिक्रम ही ईश्वर के सर्वव्यापक का प्रमाण दे सकता है क्योंकि इसने ईश्वर को संसार रूप से साकार माना है जो केवल निराकार मान गये वे व्यापक का प्रमाण न देकर त्रिशंकु की भांति बीच में ही लटके रह गये।

जो लोग ईश्वर को सर्वथा ही निराकार मानते हैं उनके यहां ईश्वरदत्तज्ञान मनुष्यों के पास पहुंचने में बड़े बड़े सन्देह पैदा हो जाते हैं उनकी मान्य रीति से आये हुये ज्ञान को निर्भ्रान्त ज्ञान नहीं कह सकते। इसको इस प्रकार समझिये कि ईश्वर के ज्ञान के संसार में आने के तीन मार्ग हैं (१) इलहाम (२) पैगाम (३) स्ववाच्य अर्थात् जो ईश्वर को निराकार मानते हैं उनके यहां ईश्वर ज्ञान या तो इलहाम से आवेगा या फिर पैगाम से आवेगा। जैसे कोई एक मनुष्य बैठा है उसमें ईश्वर की शक्ति आ गई जैसे किसी मनुष्य पर भूत चढ़ बैठे। वह मनुष्य उस ईश्वर की शक्ति से संसार को ईश्वरीय ज्ञान समझाने लगा इसका नाम है इलहाम। इस इलहाम के आये हुये ज्ञान में कई एक सन्देह रहते हैं (१) यह वास्तव में ईश्वरशक्ति से कह रहा है या बेहोश होकर कह रहा है (२) वास्तव में इसमें ईश्वरशक्ति आई है या ईश्वरशक्ति आने का इसने ढोंग रचा है इन दो सन्देहों में तोषदायक कोई प्रमाण ऐसा नहीं मिलता कि जो दोनों सन्देहों को दूर कर दे अन्धविश्वास से भले ही मानलो किन्तु वलात्कार मनवाने का कोई प्रमाण नहीं है अतएव इस मार्ग से आये हुये ईश्वरीय ज्ञान को निर्भ्रान्त नहीं कह सकते।

दूसरा प्रकार पैगाम का है। इसमें यह होता है कि ईश्वर अपने ज्ञान को लिखकर किसी मनुष्य के ज़रिये से अपने प्रेमी भक्त के पास भेज देता है और वह भक्त संसार को बतला देता है इसमें भी बड़े सन्देह हैं (१) जब ईश्वर निराकार है, जब उसके हाथ ही नहीं तो ईश्वर ने इबारत कैसे लिखी क्या झगड़ू धोबी के हाथ से लिखदी (२) वह मनुष्य जो आदेश को लेकर आया है सम्भव है कि किसी मनुष्य ने उसको धोका दिया हो अर्थात् बनावटी ईश्वर बन गया हो (३) यह भी सम्भव है कि आदेश लानेवाले ने चलाकी की हो अपने आप अपने घर से लिख लाया हो और ईश्वर का नाम ले दिया हो इत्यादि कई एक भ्रम हो जाने से इसको भी निर्भ्रान्त ज्ञान नहीं कह सकते जिनके यहाँ ईश्वर स्वरूप धारण नहीं करता उनके यहाँ ईश्वरीय ज्ञान आने के जितने मार्ग हैं वे सब अमान्य हैं।

तीसरा मार्ग ईश्वरीय ज्ञानप्राप्ति का यह है कि ईश्वर मनुष्यशरीर धारण करे और मनुष्यों को ईश्वर होने की शक्ति दिखलावे और इसके पश्चात् फिर वह ईश्वरीय ज्ञान का उपदेश करे तिस ज्ञान का नाम स्ववाच्य ज्ञान है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता अतएव यह ज्ञान निर्भ्रान्त ज्ञान है। वेद पुराणों का सिद्धान्त है कि ईश्वर ब्रह्मा रूप में प्रकट हुआ और उसने अपने अलौकिक ज्ञान को ऋषियों से कहा इस निर्भ्रान्त मार्ग में कोई शंका ही उत्पन्न नहीं हो सकती। सिद्ध हुआ कि जो ईश्वर का अवतार नहीं मानते उनके मार्ग से आया हुआ ईश्वरीयज्ञान भी निर्भ्रान्त नहीं है। आकारवाद के ऊपर यह कुछ थोड़ा सा लेख लिख कर, ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से अब इसको यहां पर ही समाप्त किये देते हैं।

इतिश्रीकालूरामरचितपुराणवर्मणिईश्वरस्वरूपपादःषष्ठः ॥

श्रीगणेशाय नमः

ईश्वरचरित्रपादः

वृन्दारका यस्य भवन्ति भृङ्गा
मन्दाकिनी यन्मकरंदविन्दुः ।
तवारविंदाक्ष पदारविन्दं
वन्दे चतुर्वर्गचतुष्पदं तत् ॥ १ ॥

नास्तिकता की सभ्यता में रंगे हुए सज्जनवर्ग जब ईश्वर के रूप को साकार समझ लेते हैं या विवश मूकता धारण करते हैं तब कह बैठते हैं कि पुराणों में ईश्वर का चरित्र इतना घृणित और भ्रष्ट दृष्टिगोचर होता है कि जिसको आजकल का कोई भी सभ्य पढ़ नहीं सकता लज्जित हो कर पुस्तक उठा कर ताक में रख देता है। एक चरित्रभ्रष्ट हो तो सह्य हो सकता है किन्तु जब वार वार इसी प्रकार की घटनायें पुराणों के पढ़ने से दृष्टिगोचर होती हैं तो फिर हम पुराणों को किस प्रकार सत्य मानें। उन समस्त घटनाओं को हम आगे दिखलावेंगे। जितने अवतार हुये हैं प्रायः उन सब को पुराणों ने कलंक लगाया है।

* पुराण *

यदि ईश्वर के इन रूपों ने ऐसा किया हो और पुराणों के कर्ता वेदव्यास ने उसको यथातथ्य लिख दिया हो तो सत्यतापूर्वक लिखनेवाले पुराणों को कलंकित क्यों वतलाया जाता है। यह तो पुराणों की गौरवता है कि जैसी घटना हुई उसमें किसी प्रकार का न्यूनाधिक न करके सर्वथा सत्य लिख दिया तो पुराण घृणित और बुरे क्यों। क्या आपकी यह इच्छा है कि पुराण इन घटनाओं को दबा कर लिखते। सत्यतापूर्वक लिखनेवाले पुराणों को कोई भी विचारशील बुरा नहीं कह सकता यदि कोई बुरा कहेगा तो वही कहेगा जो सत्यता का गला घोटना चाहता हो और सत्य होने पर भी किसी न किसी बहाने से पुराणों से पिण्ड छुड़ाना चाहता हो। सत्यता पूर्वक लिखने पर पुराणों का निःपक्षपात सिद्ध है अतएव वे मान्य हैं।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक

अग्रवाल-वैश्य-वंश-भूषण

श्रीबाबू केदारनाथजी गोयनका

रईस—मुंगेर



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

कौन कहता है कि पुराण मिथ्या हैं। पुराण कभी मिथ्या हो नहीं सकते। इनकी सत्यता में वेद का ब्राह्मणभाग लिख रहा है कि—

अरेस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोका सूत्राण्यनु व्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳहुतमाशितं पायित गयंच लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यै वैतानि सर्वाणि निश्वसितानि।

मरचैंट प्रेस, कानपुर।

* ब्रह्मा और वालखिल्य *

(१) शंकर और पार्वती का विवाह करवाने के लिये आचार्य ब्रह्मा बने ब्रह्मा का मन विचलित हो गया पश्चात् ब्रह्मा का रेत गिर गया इस रेत से वालखिल्य ऋषि पैदा हुये यह कथा पुराण में है।

उत्तर—जो जो कलंक ईश्वरावतारों पर लगाये जाते हैं वे इस कारण से नहीं लगाये जाते कि पुराणों में घृणित रूप से लिखे गये हैं किन्तु उनके लगाने का कारण दूसरा ही है। वह यह है कि आजकल कुछ भारतवासी योरुप की सभ्यता में रंगे गये हैं उनको धर्म कर्म बंधन बहुत बुरा प्रतीत होता है इस बंधन को उड़ाने के लिये वे वेद, पुराण आदि समस्त धर्मविधायक ग्रन्थों को ही उड़ा देना चाहते हैं। जब वे सभी को उड़ाना चाहते हैं तब पुराणों को क्यों नहीं उड़ावेंगे। पुराण संसार से उठ जावें इस अभिप्राय को आगे रख कर वे पुराणों की ऐसी कथाओं को आगे रखते हैं, उन कथाओं में जितना अंश उत्तर का है या अच्छा है उसको छिपा लेते हैं और जो चरित्र उनको भद्दा समझ पड़ता है जोर देकर उसको और घृणित बना देते हैं। साधारण मनुष्य जिन्होंने कभी धार्मिक शिक्षा नहीं पाई, पुराण नहीं पढ़े और अँगरेजी पढ़े हुओं की संगति की है मलीन हृदय होने के कारण वह बनावटी भ्रष्टता उनके चित्त में भर जाती है उसके ऊपर विचार, श्रवण आदि कुछ न करके दूसरों के बहकाये हुये एकदम पुराणों को भ्रष्ट मान बैठते हैं।

आप ब्रह्मा के चरित्र को ही देख लीजिये। एक साधारण सी बात है और इसका उत्तर भी शास्त्रों में लिखा है किन्तु न तो कथा देखेंगे और न उत्तर सुनेंगे। ब्रह्मा व्यभिचारी था, पुराणों में बहुत बुरी शिक्षा लिखी है यह गली गली में कहते फिरते हैं। ब्रह्मा की ऐसी मति क्यों हो गई इसका विवेचन करता हुआ "विवाह वृन्दावन" नामक ग्रन्थ लिखता है कि—

प्राचेतसः प्राह शुभं भगर्क्षं
सीता तदूढ़ा न सुखं सिषेवे।
पुष्यस्तु पुष्यत्यतिकाममेव
प्रजापतेराप स शापमस्मात् ॥ १ ॥

प्रश्न यह उठा कि प्राचीन गृह्यसूत्रों में विवाह के तेरह नक्षत्र लिखे हैं किन्तु

पश्चात् के बने हुए ग्रन्थ विवाह के नक्षत्र ग्यारह बतलाते हैं इसका कारण क्या है। इस कारण को बतलाते हुये "विवाह वृन्दावन" ग्रन्थ के ग्रन्थकार यह श्लोक लिखते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि पूर्वाफाल्गुणी नक्षत्र को केवल प्राचेतस ऋषि विवाह में शुभ मानते हैं। प्रथम तो समस्त ऋषियों का मत नहीं है कि पूर्वाफाल्गुणी में विवाह करो फिर इस नक्षत्र में विवाही हुई सीता ने कभी सुख नहीं पाया इस कारण इसको छोड़ देना और इसमें विवाह न करना। एक नक्षत्र का तो पता लग गया अब दूसरे नक्षत्र को छोड़ने का कारण बतलाते हैं। पुष्य नक्षत्र जो है यह कामदेव को अत्यन्त पुष्ट कर देता है इस कारण ब्रह्मा ने इसको शाप दे दिया है। पुराण में कथा यह है कि ब्रह्मा का विवाह पुष्य नक्षत्र में हुआ इनका कामदेव बहुत बढ़ गया पार्वती के विवाह में वीर्य स्खलित हो गया। ब्रह्मा ने सोचा कि मेरा तो इस प्रकार का आचरण नहीं था कामवृद्धि में कारण क्या है। विचार से जाना कि पुष्य नक्षत्र में तुम्हारा विवाह हुआ है और पुष्य नक्षत्र कामदेव की वृद्धि करता है इसी के प्रभाव से तुम्हारी यह गति हुई आगे को किसी की ऐसी दुर्गति न हो इसको ध्यान में रख के ब्रह्मा ने पुष्य नक्षत्र को शाप दे दिया कि अब तुझ में श्रौत स्मार्त धर्म का माननेवाला कोई भी मनुष्य विवाह नहीं करेगा अतएव पूर्वाफाल्गुणी और पुष्य ये दो नक्षत्र छोड़ कर नवीन ग्रन्थ-कारों ने विवाह के ग्यारह ही नक्षत्र रक्खे।

अब पाठक विचार करें कि ब्रह्मा के वीर्य स्खलित होने में कारण क्या था, कारण था पुष्य नक्षत्र का विवाह, यदि पुष्य नक्षत्र में विवाह न होता तो फिर ब्रह्मा के कामदेव की भी वृद्धि न होती। यदि कोई काल के प्रभाव से दुर्घटना हो जावे तो फिर उसका दोष काल पर रहेगा कि नहीं। कई एक सज्जन यह कहते हैं कि आपने ज्योतिष पर टाल दिया हम ज्योतिष के फल को कभी भी सत्य नहीं मानते। इसके ऊपर हम यही कहेंगे कि तुम मानो या न मानो किन्तु ज्योतिष के फल को संसार के समस्त मजहब और वेद भगवान् सत्य मानता है देखिये—

सुहवमग्ने ! कृत्तिका रोहिणी चास्तु
भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो
भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥

हे अग्नि आदि नक्षत्र देवताओ ! कृत्तिका रोहिणी मृगशिर आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा मघा ये नक्षत्र मेरे लिये शुभ हों।

पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्त-
श्चित्रा शिवा स्वातिसुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा
ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ॥

नोट

पुराणवर्म के पृष्ठ १६४, १६५ तथा १६६ में जो फलित ज्योतिष की पुष्टि में वेद-मंत्र दिये गये हैं वे अथर्ववेद के हैं और उनका पता यह है—

'सुहवमग्ने०' कां० १९ अनु० १ मं० २ ।
'पुण्यं पूर्वा०' कां० १९ अनु० १ मं० ३ ।
'अन्नं पूर्वा रासनां०' कां० १९ अनु० १ मं० ४ ।
'आमे महच्छत०' कां० १९ अनु० १ मं० ५ ।
'ज्येष्ठघ्न्यां जातो०' कां० ६ अनु० ११ मं० २ ।
'व्याघ्रे अन्हि०' कां० ६ अनु० ११ मं० ३ ।
'मा ज्येष्ठं०' कां० ६ अनु० ११ मं० १ ।

मूलवर्हणात्परिपाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी और मूल नक्षत्र को विचृत कहते हैं इनमें हुआ पुत्र

पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्त-
श्चित्रा शिवा स्वातिसुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा
ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ॥

पूर्वाफाल्गुनी हस्त चित्रा स्वाति राधा विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा अरिष्टकारक मूल मेरे लिये शुभ हों ।

अन्नं पूर्वा रासनां मे अषाढ़ा
ऊर्जं देव्युत्तरा आवहं तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव
श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥

पूर्वाषाढ़ नक्षत्र मेरे लिये अन्न दे, उत्तराषाढ़ पराक्रम दे, अभिजित् पुण्य बढ़ावे, श्रवण बल दे, यह नक्षत्रों का अदृश्य फल है ।

आमे महच्छतभिषग्वरीय
आमे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आरेवतीचाश्वयुजौ भगं मे
आमे रयिं भरण्य आवहन्तु ॥

शतभिषा मुझे सुन्दरता दे, दोनों प्रोष्ठपदा सुख दें, रेवती अश्वयुज ऐश्वर्य दें, भरणी मुझको धन से पूरित करें ।

नक्षत्रों से उत्थित भावी दुष्टफल को दूर करने के लिये वेद में विस्तृत रूप से उपाय लिखा है जिसको हम नीचे लिखते हैं पाठक अवलोकन करने की कृपा करें ।

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य
मूलवर्हणात्परिपाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी और मूल नक्षत्र को विचृत कहते हैं इनमें हुआ पुत्र

(मूलवर्हण) अर्थात् वंशोच्छेदक होता है। हे यम इन दोनों से इस बालक की रक्षा करो, इसके समस्त दुरित दूर करो और इसको दीर्घायु बनाओ।

व्याघ्रे अन्हि अजनिष्ट वीरो
नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स माऽवधीत्पितरं वर्धमानो
मा मातरं प्रमिनीज्जनित्रीम्॥

व्याघ्र के समान क्रूर नक्षत्रवाले दिन में उत्पन्न हुआ यह बालक मूलनामक पाप नक्षत्र से न मरे और उत्पन्न होकर माता पिता को (मा प्रमिनीत्) न मारे।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां
मूलवर्हणात्परिपाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान्विचृत प्रजानन्
तुभ्यं देवा अनुजानन्तु विश्वे॥

हे अग्ने! मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र बड़े भाई का मारक न हो, वंश का उच्छेद न करे (ग्राह्या) ग्रहण करनेवाली जो पिशाची है वह इसके पाशों को काट दे इस कार्य में सब देवता अनुमोदन करें।

अब सिद्ध हो गया कि ज्योतिष सत्य है और नक्षत्रादि काल का प्रभाव जड़ चेतन पर पड़ता है अतएव इस विषय में जो ब्रह्मा की मानसिक वृत्तियाँ बिगड़ीं उसका एक मात्र कारण पुष्य नक्षत्र का विवाह था। कई एक सज्जन यह कहेंगे कि अच्छा मान लिया कि काल का प्रभाव जड़ चेतन पर होता है किन्तु काल का प्रभाव ईश्वर पर भी पड़ता है। इस विषय में हम यह कहेंगे कि काल का प्रभाव ईश्वर पर नहीं पड़ता इस विषय में तुम्हारे पास कोई प्रमाण है या जबर्दस्ती ही कहते हो कि काल का प्रभाव ईश्वर पर नहीं पड़ता। काल का प्रभाव ईश्वर पर अवश्य पड़ता है। जब काल की श्रेष्ठता मिट कर दुष्टकाल आ जाता है तब ईश्वर अवतार लेता है। जब दुष्टकाल मिट कर फिर श्रेष्ठ बनता है तब ईश्वर अपने प्रत्यक्षरूप को तिरोधान कर लेता है। जब संसार की वृद्धि का काल आता है तब ईश्वर मनुष्यादिकों के शरीरों को बड़े रूप में रचता है इसके विरुद्ध मनुष्यादिकों के शरीर दिनोदिन छोटे होने लगते हैं यह काल का प्रभाव है। काल के प्रभाव से ही ईश्वर सृष्टि की रचना करता है। काल

ही के प्रभाव से ईश्वर सृष्टि का प्रलय कर देता है फिर यह कौन कहता है कि ईश्वर पर काल का प्रभाव नहीं होता। कई एक मनुष्य यह कहेंगे कि काल तो ईश्वर का रचा है फिर ईश्वर का रचा काल ईश्वर के ऊपर किस प्रकार प्रभाव डालेगा। इसके उत्तर में हमको इतना ही कह देना तोषदायक है कि संसार में मनुष्य की रची हुई वस्तुयें रचने वाले मनुष्य के ऊपर प्रभाव डाल सकती हैं। जैसे एक सुनार ने सुवर्ण की अंगूठी बनाई, बनने में वह भद्दी रह गई, सुनार के चित्त में खिन्नता हो गई उसने यह संकल्प कर लिया कि अब हम अंगूठी न बनावेंगे क्योंकि जितने बार हमने अंगूठी बनाई सर्वदा ही भद्दी बनी, भद्दी अंगूठी से हमारी अयोग्यता सिद्ध होती है अतएव अब हम अंगूठी न बनावेंगे। एक दर्जी ने कोट सिया, जब कोट तैयार हुआ तब बड़ा बढ़िया बना, दर्जी का हौसला बढ़ गया कि अब तो हम कोट बनाया करेंगे हमको बनाना आगया। यहाँ पर सुनार और दर्जी दोनों पर ही उनकी बनाई वस्तुओं का प्रभाव पड़ा अतएव सुनार का साहस गिर गया और दर्जी का साहस बढ़गया। जब संसार में अपनी बनाई हुई वस्तुओं का प्रभाव पड़ता है तो फिर ईश्वर के बनाये हुये कालका प्रभाव ईश्वर पर नहीं पड़ता यह किस न्याय को आगे रख कर कहते हो। अब सिद्ध हो गया कि ब्रह्मा के मन में जो मलीनता आई उसमें ब्रह्मावतार ईश्वर के मन की चंचलता नहीं थी किन्तु पुष्यनक्षत्र में विवाह होने का फल था। काल ने प्रभाव डाल कर ब्रह्मा के मन को दूषित कर दिया अतएव इस घटना में ब्रह्मा दूषित नहीं कहा जा सकता। इतना विचार जिनकी बुद्धियों में नहीं है ऐसे ही सज्जन ब्रह्मा पर दोष लगाने को कमर बांध बैठते हैं। यहाँ पर ब्रह्मा का दोष नहीं है किन्तु बुद्धि के विचार का दोष है।

* दुहितृगमन *

दूसरा प्रश्न यह है कि ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती के साथ में व्यभिचार करने के लिये दौड़ पड़ा। इसका लेख श्रीमद्भागवत स्कन्ध तृतीय अध्याय १२ श्लोक २८ में इस प्रकार है--

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः।
अकामां चकमेक्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम्॥

अर्थ--वाणी जब अपनी लड़की मन को हरण करने लगी तो बिना इच्छा वाली लड़की के साथ में इच्छा रखनेवाले ब्रह्मा ने कामवेग से उसकी इच्छा की।

यह कथा श्रीमद्भागवत में है। अब इसका उत्तर सुनिये। सृष्टिके आरंभ में सभी

मजहबों में यही बात पाई जाती है। ईसाई मुसलमान मजहब में ईश्वर ने एक मुट्ठी खाक से आदम को बनाया। आदम की बाईं पसली से हव्वा बनाई। आदम के शरीर से हव्वा पैदा हुई अतएव हव्वा आदम की पुत्री है। आदम और हव्वा इन दोनों बाप बेटियों का विवाह हुआ और इन दोनों से जो संतान हुई वह संतान आदमी कहलाये। सरस्वती के साथ ब्रह्मा का मन दूषित हो गया तो शंका टूट पड़ी और आदम का विवाह उसकी पुत्री हव्वा से हो गया, दोनों से संतान भी हुई इस पर भी शंका न हुई किन्तु ब्रह्मा सरस्वती पर यह शंका मानसिक दोष होने पर ही टूट पड़ी यह खुल्लमखुल्ला मुसलमानों का पक्षपात और हिन्दू धर्म से द्वेष है।

कोई कोई सज्जन यह कहेंगे कि हव्वा आदम की पुत्री नहीं थी उसके किसी शरीर के अंश से उत्पन्न हुई थी तब तो हम भी यही कहेंगे कि ब्रह्मा ने विवाह नहीं किया था उसके घर में स्त्री भी नहीं थी ब्रह्मा के वाम भाग से सरस्वती की उत्पत्ति है। वहाँ वाम पसली है यहां वाम भाग है कथा दोनों एक सी हैं इसी कारण तो हम कहते हैं कि वह कौन कारण है जिस कारण से ब्रह्मा सरस्वती पर शंका और आदम हव्वा पर शंका नहीं।

स्वामी दयानंद का सृष्टिक्रम सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखा है कि "(प्रश्न) सृष्टिकी आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ? (उत्तर) अनेक, क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्चये। ततो मनुष्या अजायन्त"। यह यजुर्वेद में लिखा है इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों, सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुये और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा बाप के सन्तान हैं। (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में ? (उत्तर) युवावस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती इस लिये युवावस्था में सृष्टि की है"।

(बनावटी सत्यार्थप्रकाश समु० ८ पृ० २२३)

हम यहां पर यह न कहेंगे कि "ततो मनुष्या अजायन्त" यह मंत्र यजुर्वेद में नहीं है लोगों ने यजुर्वेद का नाम मिथ्या ही लिख दिया है। हम यह भी न कहेंगे कि जवान जवान मनुष्य और स्त्रियाँ कैसे आ कूदीं और ये निराकार के जोड़े किसके घर में से निकल भागे। हम तो यही कहेंगे कि आरंभकाल में पैदा हुए स्त्री और पुरुष एक ही बाप की संतान थे अतएव यह परस्पर में भाई बहिन थे, इनका विवाह हुआ, यहाँ पर इनके संतान पैदा हुई। भाई ने बहिन में संतान पैदा करदी इस पर शंका न हुई, शंका

हुई तो केवल ब्रह्मा सरस्वती पर हुई यह पक्षपात नहीं है तो और क्या है ?

साइंस की सृष्टि में भी प्रथम जो मनुष्य स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं उनकी उत्पत्ति एक ही स्थान से हुई और उन सब का पिता एक ही था। यहाँ पर भी भाई बहिनों का विवाह हुआ। यहां पर भी शंका न आई।

अब वेद का सृष्टिक्रम देखिये--

स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत् स ह एतावानास, यथा स्त्रीपुमांसौ परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्विधा पादयत् ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम् ततो मनुष्या अजायन्त ॥

शतपथ सृष्टिक्रम।

उसको अकेले में आनन्द नहीं आया, इसीलिये संसार में भी अकेले में आनन्द नहीं आता है। उसने दूसरे को चाहा वह इतना मोटा हुआ जितने दो स्त्री पुरुष मिल कर होते हों। फिर उसने अपने मोटे शरीर के दो भाग किये। एक भाग पुरुष और दूसरा भाग पत्नी बना। उससे मनुष्य पैदा हुये।

वेद के सृष्टिक्रम में भी पिता पुत्री का विवाह सिद्ध है, इस पर भी शंका नहीं। शंका है तो केवल पुराण पर है। ब्रह्मा सरस्वती के पीछे भागा इस घृणित कथा से पुराण अमान्य हो गये। यदि इस घृणित कथा से ग्रन्थ अमान्य हो जाता है तब तो वेद भी अमान्य हो जावेंगे क्योंकि ब्रह्मा सरस्वती के पीछे पुराणों ही में नहीं भागा किन्तु वेदों में भी भागा है फर्क इतना है कि पुराणों में कथा सूक्ष्म है और वेद में इसका विस्तार है किन्तु कथा वही है, तिल भर अंतर नहीं और इंच भर फर्क नहीं। देखिये ऋग्वेद में लिखा है कि—

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्।

अर्थ—पिता अपनी पुत्री के पीछे भागा।

यह कथा वेद में तीन स्थान पर आई है। ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण। तीनों ही स्थान में इस कथा पर सायण भाष्य है और तीनों ही सायण भाष्यों का एक अभिप्राय है। अब हम यहां इस कथा को शतपथ से उद्धृत करते हैं—

प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति ताᳬसम्बभूव ॥ १ ॥

तद्वै देवानामागऽआस । यऽइत्थꣳस्वां दुहितरमस्माकꣳ स्वसारं करोतीति ॥ २ ॥

ते ह देवा ऊचुः । योऽयं देवः पशूनामीष्टेऽतिसन्धं वाऽअयं चरति यऽइत्थꣳ स्वां दुहितरमस्माकꣳ स्वसारं करोति विध्येममिति तꣳ रुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामि रेतः प्रचस्कन्द तथेन्नूनं तदास ॥३॥

अर्थ— (प्रजापतिः) प्रजापतिदेव ने (ह) इतिहासद्योतक अव्यय है (वै) निश्चय वाचक अव्यय है (स्वां) अपनी (दुहितरं) बेटी की (अभिदध्यौ) स्पृहा की अर्थात् कामेच्छा से उसको चाहा (दिवं) द्युलोक को (वा) और (उषसं) उषःकाल को (मिथुनी) मैं अकेला हूँ इससे जोड़ा (स्याम्) हो जाऊं (इति) इससे (तां) उससे (सम्बभूव) मिला अर्थात् संगम किया (तद्) वह (वै) ही (देवानां) देवताओं का (आगः) अपराध अर्थात् पाप (आस) हुआ ब्रह्माजी से (यः) जो यह प्रजापति (इत्थम्) इस प्रकार (स्वां) अपनी (दुहितरं) बेटी को (अस्माकं) हमारी (स्वसारं) बहन को (करोति) करता है अर्थात् अपनी बेटी से जो हमारी बहन लगती है उससे ऐसा करता है (इति) बस (ते) वे निश्चय करके (ह) प्रसिद्ध है कि (देवाः) देव लोग (ऊचुः) बोले उससे (यः) जो (अयं) यह (देवः) देव (पशूनां) पशुओं का (ईष्टे) मालिक है ईश्वर है अर्थात् शिवजी ने उनसे कहा कि (वै) निश्चय करके (अयं) यह प्रजापति (अति सन्धं) सन्ध्या मर्यादा उसको उल्लंघन करके (आचरति) आचरण करता है (इत्थम्) इस प्रकार (यः) जो यह प्रजापति अपनी पुत्री जो हमारी बहन है उसको मैथुनार्थ चाहता है (इति) इसलिये (इमम्) इसको (विध्य) बींधो अपने बाण से अनन्तर (रुद्रः) शिव (तं) उसको (अभ्यापत्य) उसके पास में चारो तरफ से पहुंच (विव्याध) बींधते हुये और इस समय ही (तस्य) उस प्रजापति का (सामि) अधम्मे हो अर्थात् बीच में ही (रेतः) वीर्य्य (प्रचस्कन्द) गिर गया (तथा) वैसे (इत्) ही (नूनं) निश्चय (तत्) वह (आस) हुआ।

ब्रह्मा सरस्वती की जैसी कथा पुराण ने लिखी थी वैसी ही यह वेद ने लिखी है। वेद प्रजापति को इस प्रपंच का उपादान कारण मानता है इस कारण से जितने पुरुषवाचक पदार्थ हैं वेद की दृष्टि में वे सब प्रजापति हैं और उन पदार्थों से उत्पन्न होने वाली जो स्त्रीवाचक सत्तायें हैं वे प्रजापति की पुत्री हैं। इसी भाव को आगे रख कर दिव दिन को प्रजापति और उषः प्रभातकाल को उसकी पुत्री माना है। ब्रह्मा रूप से प्रजापति सरस्वती के पीछे भागता है, दिव रूप से प्रजापति ईश्वर अपनी पुत्री उषः के पीछे भागता है। इसी भाव को आगे रख कर यज्ञ को प्रजापति माना है और पृथ्वी

को उसकी पुत्री माना है। यज्ञ रूप प्रजापति पृथ्वी रूप पुत्री के पीछे दौड़ता है। इसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न हुये समस्त पदार्थ प्रजापति हैं और उनसे उत्पन्न हुई स्त्री शक्तियां पुत्रियां हैं अतएव प्रजापति अनन्त रूपों से अनन्त पुत्रियों के पीछे भागता है। इन श्रुतियों को सायणादि भाष्यों ने इस प्रकार से लगाया है किन्तु देवता और ऋषियों की दृष्टि में ब्रह्मा ने बुरा किया और यह काम निन्दनीय है यह कथा पूर्ण रूप से प्रजापति ब्रह्मा और उसकी दुहिता सरस्वती इन्हीं में ही क्यों चरितार्थ होगी।

अब सिद्ध हो गया कि जो कथा वेद में है वही पुराण में है फिर वह कौन न्याय है कि जिस न्याय से ब्रह्मा सरस्वती की कथा आ जाने पर पुराण अमान्य हो गये और वेद मान्य हो गया। पुराणों पर मिथ्या कलंक लगानेवाले न तो वैदिक साहित्य को ही जानते हैं और न इन्होंने पुराणों का ही अनुशीलन किया है। दूसरों के बहकाने पर मनमानी शंकायें कर बैठते हैं यह इनकी अनभिज्ञता है। कई एक सज्जन यह कहेंगे कि यदि यह कथा वेदों में है तो हम वेदों को भी नहीं मानेंगे। यह कथा क्या हुई कोई भयंकर खूंख्वार जानवर हुआ जो जीवित को ही पकड़ कर खा जावेगा। इसमें कौन सी बुराई है। क्या वास्तव में सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री थी और यदि ऐसा ही है तो ब्रह्मा की स्त्री कौन थी जिसके गर्भ से यह सरस्वती उत्पन्न हुई। आप कहेंगे कि ऐसा तो नहीं था, यदि ऐसा नहीं था तो पुत्री कैसे हुई। कोई कोई यह कह देंगे कि ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुई इस कारण यह पुत्री थी। यदि ऐसा है तब तो मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाली जुआं आदि अनेक जन्तु मनुष्य की पुत्रियां हो जांयगी, मनुष्य को फिर उनके विवाह करने होंगे, कन्यादान लेने होंगे। यदि ऐसा नहीं होता, शरीर से उत्पन्न हुई जुआं मनुष्य की पुत्रियां नहीं होतीं तो फिर सरस्वती भी ब्रह्मा की पुत्री न हो सकेगी। सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री नहीं है किन्तु धर्मपत्नी है फिर सरस्वती को पुत्री क्यों कहा जाता है।

यदि कोई यह कहे कि हमने तो नहीं कहा किन्तु ऋषियों ने और देवताओं ने सरस्वती को अपनी बहिन और ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। इसके ऊपर हम यह उत्तर देंगे कि वे देवता और ऋषि निवृत्तिमार्ग के भक्त थे इस कारण उनकी दृष्टि में पुत्री होना ठीक ही है किन्तु ब्रह्मा ने प्रवृत्तिमार्ग को स्वीकार कर रक्खा था इस कारण वह उसको पुत्री नहीं समझता था। आज भी संसार में दोनों मार्गों के आचरण करनेवाले मनुष्य पाये जाते हैं। निवृत्तिमार्गवालों की दृष्टि में संसार की समस्त स्त्रियां बहनें हैं वे मानते हैं कि हम ईश्वर के पुत्र हैं और स्त्रियां ईश्वर की पुत्रियां हैं हमारा इनका पिता एक है अब बहिन होने में संदेह ही क्या है किन्तु प्रवृत्तिमार्गवाले संसार को प्रवृत्ति से देखते हैं वह समझते हैं कि हम शंभुनाथ के पुत्र हैं और यह गिरिधारीलाल की

लड़की है ऐसा समझ कर विवाह करवा लेते हैं, व्यवाय करते हैं फिर सन्तानें उत्पन्न होती हैं बस यही दशा ब्रह्मा सरस्वती की कथा में है। प्रवृत्तिमार्गवालों की दृष्टि में न ब्रह्मा पिता है न सरस्वती पुत्री है केवल देश में फूट फैलाने के लिये कथा आगे रक्खी जाती है।

* विष्णु *

तीसरा प्रश्न है कि विष्णु ने कृष्णावतार में चोरी की। जिन ग्रन्थों में आदर्श पुरुषों का इतना पतित चरित्र हो वे ग्रन्थ सभ्य लोगों की दृष्टि में सदा और सर्वथा अमान्य रहते हैं।

* टेढ़ापन *

सामान्य लोगों के लिए भगवान् श्रीकृष्ण बड़े टेढ़े हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के टेढ़ेपन को क्या कहूं, कैसे कहूं। भगवान् कृष्ण की कभी आपने प्रतिमा देखी है ? यदि देखो होगी तो आपको मालूम होगा कि वास्तव में भगवान् श्रीकृष्ण टेढ़े हैं। खड़े रहते भी उनकी एक टांग टेढ़ी है, टांग ही नहीं टेढ़ी है बल्कि बंशी भी टेढ़ी है, मुख भी टेढ़ा, मुकुट भी टेढ़ा और हाथ भी टेढ़े हैं जिस प्रकार यह स्वतः टेढ़े हैं। जो लोग मर्यादावतार, लीलावतार प्रभृति अवतारों के भेद को नहीं जानते उनकी दृष्टि में उसी प्रकार इनकी कथा भी टेढ़ी है।

जब बच्चा गर्भ में आता है तब उसको बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता है। एक तो माता के गर्भ में निवास करना कालकोठरी की सजा से भी कठिन है, कालकोठरी में हाथ पैर हिल सकते हैं किन्तु गर्भ में हिलने की जगह ही नहीं, इतने पर भी समाप्ति नहीं गठरी बंधकर उलटा लटकना और भी कठिन है। इतनाही दुःख नहीं, माता की जठराग्नि के मारे शरीर में आंच लगती है फिर माता जो तीक्ष्ण पदार्थ खाती है उसकी तीक्ष्णता शरीर में आग लगा देती है इससे अधिक गर्भ के छोटे छोटे प्राणी नोंच नोंच खाते हैं इससे और भी पीड़ा बढ़ जाती है, जी घबड़ा उठता है, ऐसे समय में जब उसको कोई रक्षक नहीं मिलता तब वह अपनी प्राचीन कथा को आगे रख जगदीश्वर से पुकार करता है और उस पुकार के साथ ही साथ अपने इकरारनामे को भी ईश्वर के कान तक पहुंचाता है इसका विवरण निरुक्त में इस प्रकार है--

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥

आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातगे विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः।
साङ्ख्यं योगं समभ्यस्येत्पुरुषं वा पञ्चविंशकम् ॥

अर्थ—मरा हुआ मैं फिर उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होकर फिर मरा, अनेक सहस्र योनियाँ मैंने धारण कीं, अनेक प्रकार के आहार खाये, अनेक प्रकार के स्तनों का पान किया, अनेक प्रकार की मातायें देखीं, अनेक प्रकार के पिता और मित्र मिले। आज मैं नीचे को मुख करके लटका हूं और पोड़ाओं से पीड़ित हो रहा हूं ऐसा हो कर के यह प्राणी जीव ईश्वर से कहता है कि यदि मैं इस बार गर्भ से छूट जाऊंगा तो फिर सांख्य योग और पुरुष का अभ्यसन करूंगा।

इस विषय में गर्भोपनिषद्ध ने यह लिखा है—

पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ॥
जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः।
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिनः।
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नरायणम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्साख्यं योगमभ्यसे।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्यामि ध्याये ब्रह्म सनातनम्।

जीव गर्भ के दुःख से दुखी होकर ईश्वर की शरण में जाता है और ईश्वर से अनेक प्रार्थनायें करता है किन्तु जिस समय भगवान् कृष्ण गर्भ में आते हैं वे किसी

की भी स्तुति नहीं करते इसके विरुद्ध ब्रह्मा, महादेव समस्त देवता भगवान् की स्तुति करने को आते हैं और बड़ी लम्बी चौड़ी स्तुति करके अन्त में प्रार्थना करते हैं कि—

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेष
भारं भुवो हर यदूत्तम वंदनं ते ॥

ईश ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, रामचंद्र, परशुराम, वामन अवतार धारण करके आप हमारी और त्रिभुवन की रक्षा करते हो ऐसी ही अब आप रक्षा करना और पृथ्वी का भार उतारना हम आप को प्रणाम करते हैं ।

संसार में जो बच्चा पैदा होता है दाई उसको साफ करती है, नाल काटती है, दो एक महीने के पश्चात् उसको कपड़े पहनाये जाते हैं । पांच छः महीने में वह बैठना सीखता है, आठ नौ महीने का जब हो जाता है तब वह घुटनों से चलता है, वर्ष सवा वर्ष के पश्चात् खड़ा होना आता है किन्तु उत्पन्न होते ही भगवान् कृष्ण को जब वसुदेव ने देखा तो वह कैसे थे इसको देखिये—

तमद्भुतं वालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुंतलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥

वसुदेव ने कमल कैसे नेत्र चतुर्भुजाधारी चारों भुजाओं में क्रम से शंख चक्र गदा पद्म धारण किये छाती में श्रीवत्स चिन्ह और गले में कौस्तुभ मणि, पीतपट धारण किये, नीलमेघ सदृश स्वरूप, बड़े मूल्य की वैदूर्य मणि मुकट में लगाये, कुंडल पहिने, मुकट और कुंडलों के प्रकाश से चमक रहे हैं ग्रथित केश जिनके, बड़े मूल्य की कर्धनी और बाजूबंद तथा कंकणों से मकान को प्रकाशित कर देनेवाले अद्भुत बालक को देखा । यहां पर गर्भ में आने में टेढ़ापन और उत्पत्ति काल के स्वरूप में टेढ़ापन ।

संसार में जो बचा पैदा होता है उसके कुछ बड़े होने पर पिता माता उसको संसारी पदार्थों का ज्ञान करवाते हैं जब वह रोटी दाल लोटा गिलास प्रभृति वस्तुओं का ज्ञान पा चुकता है तब उसको अक्षर सिखाते हैं किन्तु प्रभु श्रीकृष्णजी प्रकट होते ही माता पिता को कहते हैं कि—

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति ।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥

प्रभु श्रीकृष्णचन्दजी माता से कहते हैं कि माता ! इस सृष्टि से पहिली सृष्टि में जब कि स्वायंभुव मनु वर्तमान थे उस समय जो आपका जन्म हुआ आपका नाम पृश्निः था और पिताजी का नाम सुतपा था आप दोनों ने घोर तप किया उस तप से मैं जगन्नियन्ता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ । मैंने कहा कि वर मांगो तुमने वर मांगा कि तुम्हारे ही जैसा हमारे पुत्र हो । मेरे जैसा तो मैं ही हूं यह समझ कर मैंने आपके यहां जन्म लिया । तुम्हारे यहां मेरे दो जन्म और हो चुके हैं अब यह तीसरा जन्म है । जिस चतुर्भुजी रूप से मैंने तुमको वरदान दिया था उसी चतुर्भुजी रूप से मैं आपके आगे खड़ा हूं आपने दर्शन कर लिये अब मैं प्राकृत शिशु बनता हूं । कहिये कुछ टेढ़ापन है या नहीं ?

संसार में तीन महीने के बच्चे में कुछ भी शक्ति नहीं होती । हमने ग्रामों में सुना है कि अमुक पुरुष का तीन महीने का बच्चा था उसको जम्बुक (गीदड़) भगवान् उठा कर ले गये किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी तीन महीने की अवस्था में भयंकरी प्राणघातिनी देवदैत्यमदमर्दिनी पूतना की छाती पर चढ़े हुये हैं वह बलवती छुड़ाना चाहती है किन्तु यह छोड़ना नहीं चाहते आखिर वह विकल होकर कहने लगी—

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी,
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥

वह पूतना चिल्ला कर कह रही है कि छोड़ दे, छोड़ दे, मेरे मर्म स्थानों में पीड़ा हो रही है, इतने पर भी जब नहीं छोड़ा तो मारे कष्ट के शरीर में पसीना आ गया, हाथ पैर फेंकने लगी, आंखें फट गईं अन्त में प्राण त्याग कर दिये । यह भगवती स्तनों पर विष लगाकर दूध पिलाने आई थी इसको ऐसे गुरू मिले कि दूध के साथ प्राण भी पी गये । है बात टेढ़ी । व्यासजी लिखते हैं कि "क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम्" कहां सात वर्ष का बच्चा और कहां उसका गोवर्धन पर्वत उठा लेना क्या इसमें टेढ़ापन नहीं है ?

आजकल हम और आप माया के फन्दे में फंस कर बन्दर की भांति नाच नाचते

हैं। हम आये थे मोक्षपद पाने के इरादे से उसको तो गये भूल किन्तु नाच में फंस गये हमारी वही दशा हुई कि "आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास" भगवान् कृष्ण का कथन है कि तुमको नाच नाचते कई जन्म बीत गये किन्तु तुमको नाच नाचना न आया आओ अब हम तुम्हें नाच सिखावें। प्रभु इतना कह कर यमुना के दह में कूद गये फिर वंशी में राग को गाते हुये सर्प के फन पर वह नाच नाचा कि संसार दंग हो गया। संसार में बहुत से नचैया हैं क्या इन नचैयों में से कोई सांप के फन पर नाचने को तैयार है? तैयार क्या है सच पूछिये तो सर्प के दर्शन होते ही सारे नाच पर धूल फिर जाती है, जितना नाच हमने सीखा है वह भूल जाता है, छाती धड़कने लगती है, होश ठिकाने नहीं रहता। कहिये सांप के फन पर नाचना कुछ टेढ़ा है या नहीं? प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रजी की तो सभी कथा टेढ़ी हैं आप ईश्वरचरित्र को मनुष्यचरित्र से मिलावेंगे तो बराबर धोखा खायेंगे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी तो जगन्नियन्ता हैं इनका चरित्र तो विलक्षण ही हुआ करता है। यह लीलावतार हैं इनका चरित्र तो मर्यादावतार से भी नहीं मिलेगा फिर आप मनुष्यों से कैसे मिलाते हैं।

* माखनचोरी *

आप अपने मन में कहते होंगे कि जिन भगवान् कृष्ण ने चोरी की उनको आप जगन्नियंता कहते हैं। इसके उत्तर में हम यह कहेंगे कि भगवान् चोर तो जरूर हैं किन्तु जगन्नियंता भी जरूर हैं। आप जो भगवान् को चोर कहते हैं आपका क्या कोई ट्रंक चुरा लिया या भैंस खोल ली। यदि ऐसा नहीं किया तो आप उनको चोर क्यों कहते हैं आपका क्या सत्व है कि आप विना सिद्ध किये किसी को चोर की डिगरी दे दें। आपका केवल यही कथन होगा कि हमारा तो कुछ नहीं चुराया किन्तु गोपियों का तो मक्खन चुराया क्या मक्खन चुराने से चोर नहीं कहलावेंगे। क्या मसखरी की बात है, इसको हम एक दृष्टान्त से समझावेंगे, सुनिये--

एक रोज सात बजे प्रातःकाल बा० शंभूनाथ जी बी० ए० थाने में पहुंचे और वहां पर सब-इन्सपेक्टर से कहा दरोगाजी! हमारे यहां चोरी हो गई है रिपोर्ट लिख लीजिये। दरोगाजी बोले क्या सच ही चोरी हो गई? बा० शंभूनाथ बोले जी हां, सच नहीं होती तो रिपोर्ट लिखवाने क्यों आते। जाड़े के दिन थे, दरोगाजी पाखाने भी नहीं गये थे बेचारे वैसे ही बैठ गये। कलम, दावात, रजिस्टर मंगवाया और लिखने लगे कि बोलिये आपका क्या नाम है? बाबू जी ने कहा शम्भूनाथ, आपके पिता का क्या नाम? बाबूजी ने कहा कि लाला रामसहाय, आपकी उम्र क्या है? बाबूजी बोले

३६ वर्ष की। दरोगाजी ने पूछा कौन जात ? बाबूजी ने कहा वैश्य, आप कहां रहते हैं ? बाबूजी ने उत्तर दिया इसी अलीगढ़ शहर के जयगंज मुहल्ले में, दरोगाजी ने पूछा आपका मकान नम्बर ? लालाजी ने कहा २४०, दरोगाजी ने पूछा कि क्या चोरी घर से हुई है ? शम्भूनाथजी ने कहा कि जी हां, किस वक्त चोरी हुई ? बाबूजी ने कहा कि अठारह मिनट मुझको घर से चले हुये हुआ और उससे दो मिनट पहिले चोरी हुई, दरोगाजी ने पूछा क्या क्या माल गया ? बाबूजी बोले लिखिये मैं सब लिखवाये देता हूं। पैसा डबल २, इकन्नी १, दुअन्नी ३, चवन्नी १, अठन्नी २, पन्द्रह रुपये की सोने की अंगूठी १, घड़ी १ पौनेचार रुपये की, बस इतना ही माल गया है दरोगाजी बोले किसी पर शुभा भी है ? बाबूजी बोले अजी चोर ही आंख से देख लिया, मैं पाखाने के हाथ धो रहा था कि इतने में चोर आया, चारपाई के पाये पर वास्कट रक्खी थी उस पर हाथ मारा और लेकर भागा मैं जब तक उठा तब तक चोर भाग गया। वास्कट तो दरवाजे पर पड़ी मिली और उसकी जेब में का इतना माल गायब होगया। वास्कट की जेब में २६) रुपये और भी थे वे वहीं पड़े मिल गये। दरोगाजी बोले चोर का क्या नाम ? बाबूजी ने कहा बंशीधर, अच्छा चोर के बाप का क्या नाम ? बाबूजी ने कहा आनरेबिल रायबहादुर लाला धर्मदत्त, दरोगाजी ने कहा कि चोर की उम्र क्या ? बाबूजी ने कहा करीबन पौने पांच वर्ष की। इतना सुनते ही दरोगाजी झुंझला कर बोले कि बड़े बेवकूफ हो, मनहूस कहीं के सुबह ही सुबह चल दिये और साथ ही साथ हमारी भी अक्क मारी गई कागज पर लिख लेते तो फाड़ कर ही फेंक देते, हमने तुमको ग्रेजुवेट समझ कर रजिस्टर पर ही लिख लिया था अब जिस समय सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब रजिस्टर को देखेंगे हमको क्या कहेंगे, चले आये सुबह ही रिपोर्ट करने जाहिल कहीं के, वह कौन दफा है कि जिसके जरिये से पौने पांच वर्ष के बच्चे को हम चोर ठहरा दें, जाइये कदम बढ़ाइये हमारा जो कुछ होना होगा सो होता रहेगा किन्तु अब आप यहां तशरीफ न रखिये आपको देख कर हमको गुस्सा आता है।

पाठक वर्ग ! आज भी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के कानून में कोई भी ऐसी दफा नहीं है कि जिसके ज़रिये से हम पांच वर्ष के बच्चे को चोर करार दे दें। जब कोई भी कानून पाँच वर्ष की उम्र से कम मनुष्य को चोर करार नहीं देता फिर साढ़े तीन वर्ष की उम्र में या चार वर्ष की उम्र में भगवान् कृष्ण ने किसी गोपी का मक्खन चुरा लिया तो वे उस मक्खन के चुराने से किस तरीके से चोर कहला सकते हैं। हमको संसार में कोई भी कानून ऐसा नहीं दीखता कि जिसके ज़रिये से चार वर्ष की उम्र में मक्खन चुरानेवाले कृष्ण को चोर कहा जावे।

गोपियां बैठी बैठी अपने मन ही मन प्रार्थना किया करती थीं कि नहीं मालूम वह दिन कब आवेगा कि जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र जी माखन खाने के लिये पधारेंगे और हमारे अपवित्र घर को पवित्र करेंगे। जब इस तरह की प्रार्थना करती हैं और प्रार्थना करने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी पधारते हैं फिर हमको नहीं मालूम कि इनको चोर क्यों कहा जाता है? क्या कोई मनुष्य अपने घर में चोर के बुलाने की प्रार्थना करता है, क्या आपने भी कभी प्रार्थना की है कि हे चोर जी! तुम हमारे घर में आना और बक्स में जो नोट और गिन्नियां रक्खी हैं उनको उठा ले जाना, अलमारी में का सब ज़ेवर भी उठा लेना, शाल दुशाला सब कपड़े ले लेना, तुम जल्दी आना और हमारे घर को पवित्र करना, आप के आये बिना हम बड़े दुःखी हैं।

चोर को कोई बुलाता नहीं और जो हजार बार बुलाने पर आवे वह चोर नहीं हो सकता फिर नहीं मालूम संसार के पालक श्रीकृष्ण भगवान् पर माखन चोरी का दोष क्यों आरोपण करते हैं?

यदि कहो कि भगवान् कृष्ण चोर हैं इस बात को तुमने क्यों स्वीकार कर लिया। तुमने पीछे कहा था कि कृष्ण चोर भी हैं और जगन्नियंता भी हैं। इसका उत्तर यह है कि चोर हीं नहीं किन्तु भगवान को तो हम चोरराज मानते हैं। कहो क्यों? उत्तर होगा कि "तस्कराणांपतये नमोनमः" वेद लिखता है यों। (भगवान् को वेद ने चोरराज बतलाया है। चोर तो दीखनेवाली वस्तुओं को ही चुराता है किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी उस वस्तु को चुराते हैं कि जो कभी आँख से दीख नहीं सकती)।

हमको वेद का एक एक अक्षर प्रमाण है। वेद कहता है कि ईश्वर चोरराज हैं फिर वह कौन कारण है कि जिस से हम वेद को न मानें और जगदीश्वर भगवान् कृष्णचंद्र को चोरराज न कहें। वेद के मानने में हमको लज्जा नहीं आती, वेद के मानने में हम अपनी अक्ल को नहीं लगाते, वेद के अक्षरों के हम अर्थ नहीं बदलते वरन् वेद के सीधे सीधे अर्थ मानने में हम अपना गौरव समझते हैं और यही कारण है कि जिससे हम भगवान् श्रीकृष्णचंद्र को चोरराज मानते हैं। भगवान् को वेद ने चोरराज बतलाया है। चोर तो दीखनेवाली वस्तुओं को चुराता है किन्तु भगवान् कृष्णचंद्रजी उस वस्तु को चुराते हैं कि जो कभी आँख से दीख नहीं सकती। नीचे देखिये वह क्या चुराता है—

नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसञ्चयं हरत्यशेषं स्मरतां सदैव॥

मनुष्यों के नायक जो नारायण हैं वे संसार में प्रसिद्ध चोर हैं जिसके अन्तःकरण में एक बार धँस बैठते हैं फिर वे अनेक जन्मों के कर्मों को एकदम चुरा ले जाते हैं और मनुष्य के कर्मबंधन को काट कर फेंक देते हैं इसी से उनको चोरराज कहा गया है।

दुष्ट पापों को चुराने से भगवान् चोरराज कहे गये हैं, मक्खन चुराने से नहीं। यह तुम्हारी बुद्धि की जड़ता है जिससे तुम असली भाव को न समझ कर मक्खन चुराने से चोर कहते हो। मक्खन के चुराने से तुम भगवान् कृष्णचंद्रजी को तो क्या चोर ठहरा सकोगे तुम आज भी उसी उम्र के किसी साधारण बच्चे को भी चोर नहीं ठहरा सकते।

एक दिन दोपहर में जब कि भयंकर धूप पड़ रही थी भगवान् कृष्ण एक गोपी के घर में मक्खन खाने को घुसे। भगवान् ने मक्खन का लोंदा उठाया ही था कि भीतर की कोठरी से गोपी निकल आई, भगवान् उस गोपी को देख कर भागे, मक्खन हाथ में है और पैर जल रहे हैं इतना होने पर भी कृष्ण जोर से भाग रहे हैं इस प्रकार भागते हुए कृष्ण को देख कर गोपी भगवान् कृष्ण से कहती है कि—

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं च किं तेन।
आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव॥

प्यारे कृष्ण तैंने मक्खन ले लिया, यदि मक्खन ले लिया तो इससे क्या हो गया। हे माधव मक्खन तो घर ही का है इसको लेकर तप्तभूमि में क्यों दौड़ते हो आपके पैर जलते होंगे। इसका नाम प्रेम है। आज घर का बच्चा भी माखन ले ले तो माता भी अपने प्राणप्यारे दुलारे आंखों के तारे को मारने और पीटने को तैयार है, मातृप्रेम से अधिक प्रेम संसार में कहीं नहीं किन्तु गोपियों में कृष्ण का प्रेम बच्चे में माता के प्रेम से बढ़ कर है। जब कि भगवान् चोर ही थे तो गोपियों को इतनी करुणा क्यों। क्या चोर के ऊपर करुणा आती है? दैवयोग से आप के घर में चोर धँस जाय और आपका सर्वस्व अपहरण कर गठरियों में बांध ले और इतने में आप जाग उठें तो फिर आप चोर के ऊपर करुणा करेंगे? क्या यह कहेंगे कि चोर साहब आपने माल ले लिया तो कोई क्षति नहीं किन्तु अब इस अंधेरी रात में आप कहां जाओगे कहीं ठोकर लग कर गिर पड़ोगे अतएव प्रातःकाल चले जाइये। यदि आप नहीं मानते तो लाओ यह माल हम आपके घर रख आवें। यदि आप यह भी नहीं मानते तो लीजिये हम लालटेन जलाये देते हैं इसको लेते जाइये, इसके जरिये से मार्ग में किसी प्रकार का दुःख न होगा और

कृपा करके यह भी बतलाते जाइये कि अब दुबारा आपका आगमन कब होगा तथा हमारे ऊपर कृपा बनाये रखिये।

एक गोपी की और कथा सुनिये। भगवान् ने देखा कि इस घर में गोपी नहीं है सूना जानकर लगे धीरे धीरे किवाड़ खोलने। कभी भीतर को देखते हैं कभी बाहर को देखते हैं और किवाड़ खोलते जाते हैं। किवाड़ खोल कर मक्खन की हंड़िया के पास पहुंचे और फौरन मक्खन उठाया। मक्खन उठा ही रहे थे कि बाहर से गोपी आगई। कृष्ण ने सोचा कि आज हो गई कुगत, आप मक्खन को लेकर एक अंधेरी कोठरी में भागे, भागते हुये कृष्ण को देख कर गोपी बोली—

क्षीरसारमपहृत्य शङ्कया,
स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मम मानसे नितान्ततामसे,
नन्दनन्दन कुतो न लीयसे॥

भगवन् आप मक्खन लेकर अंधेरी कोठरी में छिपते हो यदि आप को अन्धकार में ही छिपना स्वीकार है तो फिर कोठरी में न छिपें किन्तु जन्मजन्मान्तर के दुष्ट कर्मबंधनों से अन्धकारमय बना जो मेरा चित्त है उसमें छिप जाइये।

एक कथा और भी सुन लीजिए। किसी दिन कोई गोपी एक गली में होकर जा रही थी। बराबर के घर से एक दूसरी गोपी निकल आई और इस जाती हुई गोपी से कहने लगी कि—

कुन्दकुञ्जममुं पश्य सरसीरुहलोचने।
अमुना कुन्दकुञ्जेन किं सखि मे प्रयोजनम्॥

हे कमलनयनी गोपी! हमारे यहाँ कुन्द वृक्षों की बड़ी सुहावनी कुञ्ज है इसको आप देखें। इस प्रेममयी प्रार्थना को सुन कर गोपी ने कहा कि हे सखि "मु" रहित इस कुन्दकुञ्ज से मेरा कौन प्रयोजन है मैं कुंदकुंज को देखना नहीं चाहती मेरा तो मन मुकुंदकुञ्ज में ही लगा है।

कई एक सज्जन यह कहेंगे कि आपने गोपियों के उत्कट प्रेम के जो श्लोक लिखे हैं वे श्लोक श्रीमद्भागवत के नहीं हैं। इसके ऊपर हम यह कहेंगे कि क्या श्रीमद्भागवत में गोपियों का कृष्ण में उत्कटप्रेम नहीं है। श्रीमद्भागवत में तो इससे अधिक प्रेम है देखिये—

अटति यद्भवानह्नि काननं,
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते,
जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥

द० अ० ३१ श्लो० १५

जिस समय आप दिन में बन को जाते हो तब आपको न देख कर एक त्रुटिकाल युग के तुल्य बीतता है । जिन आंखों से हम आपको देखते हैं निरन्तर देखने में जो ब्रह्मा ने पलक लगा कर विघ्न किया है यह ब्रह्मा की जड़ता (मूर्खता) है । क्या चोर में किसी का ऐसा उत्कट प्रेम होता है ? इस उच्चश्रेणी का प्रेम रखनेवाली गोपियों के यहां का खाया हुआ माल कभी चोरी का माल कहला सकता है ? यदि ऐसा है तब तो घर का खाया हुआ माल भी चोरी का हो जावेगा । प्रेमी का खाया हुआ माल चोरी उसी समय कहलावेगी जब खानेवाला खाने से इनकार करदे अर्थात् मैंने नहीं खाया ऐसा कह दे । हम दोनों ही दशाओं में मक्खन खाने से भगवान् कृष्ण को चोर नहीं कह सकते । वे लोग अविवेकी हैं जो भगवान् कृष्ण की आयु और गोपियों के प्रेम को नहीं जानते ।

* चीरहरण *

शंका करनेवाले जब चोरी रूप कलंक लगाने में असमर्थ हो जाते हैं तब कह बैठते हैं कि (४) जिनको आप भगवान् कृष्णचन्द्र कहते हैं उन्होंने स्नान करती हुई गोपियों के चीर हरण किये और उनको नग्न देखा । क्या ऐसे कृत्य करनेवाले को कोई भगवान् कह सकता है ?

चीर हरण की कथा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार है कि गोपियों ने जगन्मोहन भगवान् कृष्ण के रूप को देख कर कृष्ण की प्राप्ति का उद्योग रूप भगवती कात्यायनी देवी का व्रत और पूजन प्रारम्भ किया--

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥१॥

हेमन्त के प्रथम मास में नन्द के व्रज की कन्यायें हविष्य भोजन करती हुई कात्यायनी का व्रत और पूजन करने लगीं ।

पूजन के अन्त में गोपियां प्रार्थना करती थीं कि—

नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥४॥

हे देवि ! मैं तुझे प्रणाम करती हूं तू नंदगोप के पुत्र को मेरा पति कर।

इस कर्म को नित्य करते देख श्रीकृष्ण के चित्त की वृत्ति गोपियों की तरफ खिंची उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने विचारा कि इनके कर्मफल में "नग्न होकर स्नान करना" ही प्रतिबन्धक है। नग्न होकर स्नान करना यह निकृष्ट कर्म है। वर्तमान समय में भी पंजाब, कुरु, जाङ्गल, मरुस्थल आदि देशों में अब भी यह कुप्रथा देखने में आती है इसी प्रकार उस समय ब्रज में भी थी। भगवान् ने उन गोपियों का सुदृढ़ अनुराग देख कर यह उचित समझा कि इस परिपाटी को हटा दिया जावे। ये भोली भाली गोपियां इसको नहीं जानतीं कि यह कार्य निन्दनीय है, इस निन्दनीय काम से इनके कर्तव्य में भी हानि पहुंचती है, इसको विचार भगवान् आये और इन गोपियों के वस्त्र लेकर कदम्ब पर चढ़ गये। जब गोपियों ने बहुत कुछ प्रार्थना की कि हमारे वस्त्र दे दो तब भगवान् ने उनसे कहा कि--

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।
बध्वाऽञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः
कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ ११ ॥

व्रत करनेवाली तुम जल में नंगी धँसी हो तुमने देव का अनादर किया है अतएव तुम दोनों हाथों की अंजुली बांध कर मस्तक पर रख अपने पाप के प्रायश्चित्त में सूर्य भगवान् को प्रणाम करो और फिर अपने वस्त्र ले जाओ।

श्रीमद्भागवत के दशवें स्कंध के बाईसवें अध्याय में यह कथा लिखी है। समस्त कटाक्ष इसी के ऊपर हैं। इन महात्माओं से यह तो पूछो कि गोपियों को नग्नस्नान का निषेध किया यह भला किया या बुरा ? यदि ये कहें कि यह तो अच्छा किया किन्तु नग्न करके प्रणाम क्यों कराया ? तब मैं पूछता हूँ कि किसी बुरे काम का प्रायश्चित्त करवा देना अच्छा है या बुरा ? यदि ये यह कहें कि यह सब ठीक किन्तु श्रीकृष्णजी ने गोपियों को नग्न क्यों देखा ? इस पर मेरा उत्तर यह है कि अब तक भाई बन्धु ग्रामवासी कृष्ण आदि सभी नंगी गोपियों को रोज देखते थे इस पर शंका न कर आज के देखने पर शंका कैसी ? हम और आप अपनी छोटी छोटी पुत्रियों या पड़ोसियों की पुत्रियों को

रोज नग्न देखते हैं इस पर शंका न कर भगवान् कृष्णचन्द्र पर शंका कैसी ? यदि कहो कि हम कामभावना से तो नहीं देखते। आप काम भावना से नहीं देखते तो कृष्ण गोपियों को काम भावना से देखते थे इसमें कोई प्रमाण है ? कुछ नहीं, केवल मनकी तरंग। मन से तरंग उठा कर भगवान् या अपने मान्य को झूठा कलंक लगा देना क्या यह किसी की सभ्यता है ? इनसे यह पूछो कि तुम श्रीकृष्ण को मनुष्य मानते हो या ब्रह्म। यदि ये कहें कि हम तो मनुष्य मानते हैं तो इनसे कहो कि आपने किसी वैद्य, हकीम या डाक्टर से पूछा कि क्या छः वर्ष की उम्रवाले बच्चे के भोगादि ज्ञानोत्पादक मानसिक भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं ? चीरहरण के समय भगवान् कृष्ण की आयु छः वर्ष की है और इसके पश्चात् जो गोवर्धन पर्वत धारण किया है उस समय श्रीकृष्ण की आयु सात वर्ष की थी। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि "क सप्तहायनो बालः क महाद्रिविधारणम्" कहाँ सात वर्ष का बच्चा और कहाँ बड़े भारी पर्वत का धारण करना। सिद्ध हो गया कि छः वर्ष की उम्र में कामोत्पादक मानसिक शक्तियों का संचार ही नहीं होता। जब इस अवस्था में मानसिक भावनायें कामोत्पादक नहीं बन सकतीं तब तो यही कहना पड़ेगा कि इन सज्जनों ने विचार को ताक में रख कर ही मिथ्या कलंक लगाने का साहस किया है। और यदि ये यह कहें कि हम तो कृष्ण को ब्रह्म मानते हैं तो इन कृपा की भोजों से पूछो कि ब्रह्म तो सर्वदा सबके सब अंगों को देख ही रहा है फिर शंका कैसी ? यदि ये लोग यह प्रश्न करें कि ऐसा किया क्यों ? तो इसके उत्तर में इतना ही कहना तोषदायक होगा कि ब्रजभूमि में प्रचलित नग्नस्नान की कुरीति को दूर कर देने के लिये। अब इनका कोई भी प्रश्न शेष नहीं रहता। बस सिद्ध हो गया कि कुरीति हटानेवाली एक साधारण सी घटना को आगे रख ये लोग कृष्ण को कलंकित करने का साहस करते हैं जिसमें ये विफल हो जाते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण के चीरहरण में किसी प्रकार का कलंक नहीं रहता।

❀ रासक्रीड़ा ❀

जब ये लोग चीरहरण पर भी मौन धारण कर लेते हैं तब एक दौड़ रासलीला पर लगाते हैं और कहने लगते हैं कि (५) रासलीला की भ्रष्ट कथा को सभी जानते हैं।

रासलीला में कथा भ्रष्ट नहीं है मन भ्रष्ट होने के कारण कथा भ्रष्ट प्रतीत होती है। जैसे तिरछे शीशे में मुख तिरछा दीखने लग जाता है उसी प्रकार भ्रष्ट मन में पवित्र चरित्र भी भ्रष्ट दीखने लगते हैं, यही दशा रासक्रीड़ा में है। श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार स्वामी श्रीधरजी रासपंचाध्यायी का टीका करते हुये लिखते हैं कि—

ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा ।
जयति श्रीपतिर्गोपी रासमंडलमंडनः ॥

कामदेव ने ब्रह्मा से लेकर पशु पक्षियों तक का विजय कर लिया इससे कामदेव का दर्प बढ़ गया और वह कामदेव भगवान् कृष्ण के पास आया। कामदेव की इच्छा थी कि हम भगवान् कृष्ण का भी विजय करें। इसी अभिप्राय से कामदेव कृष्ण के पास आया और आकर बोला कि हमने समस्त संसार को विजय कर लिया अब हमारी इच्छा है कि हमारा और आपका संग्राम हो जाय किन्तु हम मैदानी लड़ाई लड़ेंगे, लंबा चौड़ा मैदान हो, आपके सामने हमारे बड़े बड़े सेनापति खड़े हों, हमारे बड़े बड़े वीर सिपाही हों, हमारे योग्य काल हो और हमारी विजय कर देनेवाली समस्त युद्ध की सामग्री हो, तब हमारा आपका युद्ध हो, फिर देखिये किसका विजय होता है। किले के युद्ध में धोका खा चुके हैं इस करण हम किले की लड़ाई नहीं लड़ेंगे। एक दिन दिव्य दिव्य अपने युद्ध के शस्त्र और बड़े बड़े वीर सिपाहियों को लेकर हम महादेव पर चढ़े। उस समय शंकर महादेव समाधिरूप किले में छिप गये, हमारे योद्धा काम न कर सके, हम लाचार हो गये। फिर महादेव ने समाधि खोल कर एकदम हमको भस्म कर दिया अतएव इस प्रकार के किले की लड़ाई न लड़ कर आपके साथ में हमारा मैदान का समर होगा फिर हम देखेंगे कि आपका विजय होता है या हमारा। मैदान का युद्ध ठना और उसमें भगवान् कृष्ण ने कामदेव के घमंड को चूर कर दिया। ऐसे श्रीपति भगवान् गोपियों के रासमंडल के मंडल की जय हो। श्रीधरजी इस भाव को लेकर ऊपर का श्लोक लिखते हैं और रासमंडल रूपी युद्ध में कृष्ण का विजय दिखलाते हैं। यह एक ही श्लोक पता देता है कि रासमंडल में कामदेवने भगवान् को नहीं जीत पाया किन्तु जितेन्द्रिय रह करके कामदेव के घमंड को चूर कर दिया। जब ऐसा हुआ है तब तो रासमंडल में व्यभिचार की शंका करना अविवेक और अनभिज्ञता सिद्ध कर रही है।

* अजेय काम *

वास्तव में कामदेव का विजय करना कुछ हँसी खेल नहीं है। जिस समय यह हज़रत हाथ फेंकते हैं उस समय बड़े बड़े काम धूल में मिल जाते हैं और इनका शिकार हो जाना पड़ता है। इसकी पुष्टि में कुछ उदाहरण हम नीचे लिखते हैं, देखिये—

उडुराजमुखी मृगराजकटी, गजराजविराजतमंदगती ।
यदि सा वनिता हृदये रमिता, क्व जपः क्व तपः क्व समाधिरतिः ॥

चन्द्रमा के तुल्य मुख और सिंह के तुल्य कमर, हस्ति के तुल्य मस्त चाल चलनेवाली यदि ऐसी वनिता एक बार हृदय में समा जावे फिर जप कहाँ, तप कहाँ, समाधि का रमण कहाँ। सब छूट जाते हैं और यह हज़रत मनीराम वनिता के सच्चे भक्त बन जाते हैं। इस हज़रत कामदेव ने कैसे कैसे तपस्वियों को धूल में मिलाया है, ज़रा उनका भी फोटू देखिये—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना।
स्तेपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः॥
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा।
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम्॥

विश्वामित्र, पराशर प्रभृति अनेक ऋषि कितने ही केवल वायु मात्र का भक्षण करते और कितने ही केवल जल पान करते तथा कितने कई एक सूखे पत्ते ही खाते ऐसे ऋषि भी शोभन स्त्रीमुखकमल को देख कर मोह को प्राप्त हो गये। जो लोग घृत दुग्ध दधि मिश्रित तण्डुल खाते हैं यदि वे कहें कि हम इन्द्रियों को जीत लेंगे तो उनकी इन्द्रियों का निग्रह हो जाना उतना ही असंभव है जितना कि विंध्याचल पर्वत का हिन्दमहासागर तैर कर पार होना है।

तावदेव विदुषां विवेकनी,
बुद्धिरस्ति भवबन्धभेदिनी।
यावदिन्दुवदना न कामिनी,
वीक्षिता रहसि हंसगामिनी॥

विद्वानों की बुद्धि विवेकवाली तथा संसारबंधन को तोड़नेवाली तभी तक रहती है जब तक हंस की चाल चलनेवाली चंद्रमुखी वनिता का एकान्तदेश में समागम नहीं होता। इस दुर्जेय कामदेव ने केवल मनुष्यों को ही अपने वश में नहीं किया किन्तु इसके पंजे से पशु पक्षियों का बचना भी असाध्य है। मान्य योगी भर्तृहरि एक दिन किसी गाँव के करीब बैठे थे उनके सामने से एक कुत्ता निकला उस कुत्ते की दशा को वर्णन करते हुये इस प्रकार लिखते हैं—

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः।

क्षुधाक्षामो जीर्णोऽपि करकपालार्पितगलः
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥

दुर्बल, एकाक्षी, लंगड़ा, दोनों कान कटे हुये, पूंछ कटी हुई, जिसके शरीर में सैकड़ों घाव हो रहे हैं और उन घावों से पीब निकल रहा है तथा उन घावों में सैकड़ों कीड़ा पड़े हैं, भूखा हो रहा है, बूढ़ा और दुर्बलेन्द्रिय है, किसी ने उस कुत्ते के हंड़िया मारी है, हंड़िया तो फूट गई है और हंड़िया का गला कुत्ते के गले में उलझ गया है, इस दुर्दशा में पड़ा हुआ कुत्ता भी कुतिया के पीछे भागता चला जाता है। भर्तृहरि कहते हैं अरे दुष्ट कामदेव इस मुर्दा कुत्ते को तू क्यों मारता है। ऐसे दुर्जेय काम को जीतने का कौन साहस कर सकता है? जो समस्त संसार को विजय करता है उसको रासमंडल में भगवान् कृष्णचन्द्रने विजय किया है। इसो से स्वामी श्रीधरजी भगवान् के लिये जय शब्द लिखते हैं और एक ही श्लोक में यह सिद्ध कर देते हैं कि भगवान् कामदेव के पंजे में नहीं आये किन्तु कामदेव को ही उनके चरण चूमने पड़े। अब हम ऐसा कोई कारण नहीं देखते कि जिससे रासक्रीड़ा में भगवान् कृष्ण को व्यभिचार का कलंक लगा सकें तो भी साधारणजन के बोधके लिये हम रासपंचाध्यायी के कुछ प्रकरण पाठकों के आगे रखते हैं, देखिये—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

भगवान् ने शरदऋतु की मल्लिका जिनमें फूल रही है और जिन रात्रियों में कामदेव से युद्ध का वचन दे दिया उन रात्रियों को देख कर योगमाया का आश्रय लेकर रमण करने की इच्छा की। यहां पर योगमाया का आश्रय इस कारण लिया कि योग दशा में पहुंच कर कोई भी कामदेव के वश में नहीं आ सकता। भगवान् ने अपनी मजबूती पहले की पश्चात् क्रीड़ा को तैयार हुये। फिर देखा कि कामदेव का जैसा कथन था समय उसके अनुकूल है या नहीं इसको दूसरे श्लोक में दिखलाते हैं—

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

उसी समय उन श्रीकृष्णजी की प्रीति के निमित्त, जैसे बहुत दिनों में दर्शन देनेवाला प्रियपति विनोद के समय अपनी स्त्री का मुख लालवर्ण के केशर से लिप्त करता है तैसे ही सब प्राणियों के ताप और ग्लानि को दूर करनेवाला वह प्रसिद्ध चन्द्रमा अपनी अति सुखकारिणी किरणरूप हाथों से उदय के रंग करके पूर्वदिशा रूप स्त्री का मुख लाल लाल करता हुआ उदय हुआ ॥२॥ तब श्रीकृष्णजीने लक्ष्मी के मुख कान्ति के समान कान्तिवाले नवीन केशर के समान लाल लाल और कमलिनियों को प्रफुल्लित करनेवाले तिस पूर्ण चन्द्रमा को देख कर और उसकी सुखकारी किरणों से शोभायमान हुये बृन्दाबन को देख कर स्त्रियों के मन को हरनेवाला मधुरगान करा॥३॥ भगवान् ने काल सर्वथा कामदेव के अनुकूल समझा तबहीं वंशी बजाई। भगवान् समझते थे कि ऐसा न हो कि किसी प्रकार की त्रुटि रह जाय और कामदेव हमको उलहना दे कि इतनी कमी के कारण हमारा पराजय हो गया। प्रथम तो शरदऋतु यह स्वतः ही कामोत्पादक होती है फिर शरदऋतु में भी रात्रि यह उससे भी अधिक कामोत्पादक है और फिर चंद्रमा का प्रकाशयुक्त दर्शन जो विरही मनुष्य के लिये यमराज का दादा बतलाया गया है इससे भी अधिक कामोत्पादक बन और उसमें भी असंख्य प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि जो स्वभावतः ही विषयवर्द्धिनी है फिर मंद, शीतल, सुगन्धियुक्त वायु का संचलन ये समस्त साधन युद्ध में कामदेव के सहायक हैं इनको समझ करके ही आज कामदेव को ससैन्य युद्ध में उतारने के लिए भगवान् ने मनमोहिनी वीणा बजा दी। यह वीणा थी, होगी योगियों के लिये वीणा, यह तो कामदेव के लिये संग्राम का बिगुल है। बिगुल के बजते ही कामदेव की सेना में उद्विग्न होगया तत्काल ही तैयारियां, फौरन ही चढ़ाई के सामान हो गये। जब युद्ध का बिगुल बज जाता है फिर जो सिपाही खाना खाता हो खाने को छोड़ कर वर्दी पहन लेता है। रोटी पकानेवाला सिपाही चौका छोड़ युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाता है। बन्दूक का साफ करनेवाला सिपाही हाथ में बंदूक लेकर तुरंत खड़ा हो जाता है। अभिप्राय यह है कि युद्ध के बिगुल को सुन करके सिपाही लोग समस्त कार्मों को छोड़ देते हैं और अति शीघ्रता से युद्धस्थल में पहुंचने का उद्योग करते हैं। इस वर्तमान नियम के अनुसार कामदेव के प्रबल योद्धा भ्रूभंगमात्र से इन्द्रादिकों का विजय कर देनेवाले गोपियों

के यूथ वंशी के बजते ही अपने कृत्यों को छोड़ कर जिस प्रकार समर की उपस्थिति में शीघूता करते हैं उनकी शीघूता का वर्णन भगवान् वेदव्यास जिस प्रकार लिखते हैं उसके पढ़ने का पाठक कष्ट उठावें।

निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥
दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥
परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययंत्यः शिशून्पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥
लिंपन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अंजंत्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥
ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तंत मोहिताः ॥ ८ ॥

उस कामदेव की वृद्धि करनेवाले गान को सुनकर जिनके मन कृष्ण ने खींच लिये हैं और सापत्न्यभाव उत्पन्न न हो इस प्रकार जिन्हों ने अपना कृष्ण के समीप जाने का उद्योग परस्पर जताया नहीं है ऐसी वह गोकुल में की स्त्रियें जहाँ वह श्रीकृष्ण जी थे तहां गान की ध्वनि के मार्ग से चली गईं उस समय जाने की शीघूता से उनके कानों के कुंडल हिलते थे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णजी को जतानेवाले शब्द के सुनने से श्रीकृष्णजी की ओर को चित्त लगानेवाले पुरुषों के धर्म, अर्थ, काम के प्रतिपादन करनेवाले कर्मों की तत्काल निवृत्ति होती है यह दिखाने के लिये गोपियें आधा आधा हुआ ही अपना काम छोड़ कर चली गईं यह वर्णन करते हैं, कितनी ही गोपियें गौओं का दूध दुह रही थीं उन्होंने आधा दूध दुहा इतने ही में श्रीकृष्ण की मुरली का शब्द सुनाई दिया सो वह श्रीकृष्णजी को पाने में उत्कंठित होकर वह दूध का पात्र तहाँ ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही गोपियें दूध की हाँडी में के दूध को चूल्हे पर चढ़ा कर वह औट गया या नहीं सो बिना देखे ही तैसे ही चली गईं, दूसरी कितनी ही गोपियें चूल्हे के ऊपर होते हुये हलुआ को बिना उतारे तैसे ही चली गईं ॥ ५ ॥

कितनी ही पति पुत्रों को भोजन परोस रही थीं सो अध-परोसा ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही अपने बालकों को स्तनों का दूध पिला रही थीं सो तैसा ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही अपने पति की सेवा कर रही थीं वह अधबीच में ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही भोजन कर रही थीं वह भोजन को छोड़ कर चली गईं ॥ ६ ॥ कितनी ही शरीर में चन्दन आदि मल रही थीं, कितनी ही शरीर में उबटना लगा रही थीं और दूसरी कोई नेत्रों में काजल आँज रही थीं वह अपना काम आधा आधा ही छोड़ कर उन श्रीकृष्णजी के समीप को चली गईं, कितनी ही वस्त्र आभूषण धारण कर रही थीं वह उलटे ही वस्त्र पहिन कर गले के आभूषण चरणों में और चरणों के आभूषण गले में पहिन कर, नाक की नथ कानों में और कानों की बाली नाक में पहिन कर श्रीकृष्णजी के समीप को चली गईं ॥ ७ ॥ अब जिनके मन श्रीकृष्णजी ने खींचे हैं उनको विघ्न नहीं होते हैं ऐसा वर्णन करते हैं। गोविंद द्वारा चित्त को खिंचने के कारण मोहित होकर श्रीकृष्णजी के समीप को जानेवाली वह स्त्रियें पति माता पिता और भाई बान्धवों के निषेध करने पर भी पीछे को न लौटीं किन्तु श्रीकृष्णजी के समीप को ही चली गईं ॥ ८ ॥ जो दशा समरभूमि में युद्ध का बिगुल सुन कर सिपाहियों की होती है वही दशा आज गोपियों की हो गई है। कई एक गोपियों को उनके बान्धवों ने नहीं जाने दिया उनकी भी दशा देखिये—

अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥
दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्याक्षीणमंगलाः ॥ १० ॥
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबंधनाः ॥ ११ ॥

उस समय कितनी ही गोपियें तो घर में ही थीं उनको उनके पति-पुत्रादिकों ने द्वारों में ज़ंजीर ताले आदि लगा कर कृष्ण के समीप जाने से रोक लिया इस कारण उनको मार्ग नहीं मिला सो वह पहिले ही श्रीकृष्ण का ध्यान करनेवाली थीं परन्तु उस समय उन्हों ने नेत्र मूँद कर एकाग्रता से श्रीकृष्णजी का ध्यान करा ॥ ९ ॥ और वह अति प्रिय श्रीकृष्णजी के दुःसह विरह से होनेवाली तीव्र ताप करके अनेक जन्मों के इकट्ठे हुये पाप कर्मों का फल (दुःख) एक साथ भोग कर शुद्धचित्त हुईं तैसे ही ध्यान से प्राप्त हुये श्रीकृष्णजी के आलिंगन के परमसुख करके अनेक

जन्मों के इकट्ठे हुये पुण्य कर्मों का फल (सुख भी) भोग कर क्षीणपुण्य हुईं इस प्रकार तत्काल जिनके पुण्य पापरूप बंधन सर्वथा दूर हो गये हैं ऐसी वह गोपियें जार बुद्धि से भी इन परमात्मा श्रीकृष्णजी को प्राप्त होकर अपने गुणमय शरीर को त्याग सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुईं ॥ १० । ११ ॥

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हंत शिरसा तत्रापि याचे वरम् ।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकरे ज्योतिस्तदीयाङ्गणे
व्योम्नि व्योमतदीय वर्त्मनि धरा तत्तालवृन्ते निलः ॥

भीतर घर में बंद हुई गोपी मरने के समय प्रार्थना करती हैं कि मेरा जो शरीर है वह पंचतत्व को प्राप्त हो और मेरे शरीर में जो तत्व समूह है वह अपने अपने तत्व में प्रवेश करे ऐसा होते समय में भी मैं नम्र होकर के अपने शिर को जगदीश्वर के चरणों में झुकाती हुई एक वर माँगती हूँ कि मेरे जो शरीर का जल है वह उस वापी के जल में जाय जिसमें कृष्ण स्नान करते हैं, मेरे शरीर की जो ज्योतिः है वह उस दर्पण में जावे जिसमें भगवान् मुख देखते हैं, मेरे शरीर का जो आकाश है वह उस आँगन में जाय जिसमें भगवान् खेलते हैं, मेरे शरीर का जो पृथ्वी तत्व है वह उस मार्ग में जाय जिस पर भगवान् चलते हैं, मेरे शरीर का जो वायु तत्व है वह उस तालवृन्द में जाय जहाँ भगवान् को शीतल मंद सुगंध वायु स्पर्श करता है । मुरली की ध्वनि से मोहित होकर अपने समीप आई हुई उन गोपियों का देख कर कहनेवालों में श्रेष्ठ वह भगवान् श्रीकृष्ण जी अपनी वाणी की छटाओं से उनको मोहित करते हुये कहने लगे ॥१७॥ श्रीभगवान् ने कहा कि हे महाभाग्यवतियो तुम मेरे समीप आईं यह बड़ा सुंदर हुआ, मैं तुम्हारा प्रिय कौन सा कार्य करूँ इतने ही में सब गोपियाँ घबड़ाई हुई सी आई हैं ऐसा देख कर भयभीत हुये से कहने लगे कि हे गोपियो मेरे प्रिय गोकुल का कल्याण तो है, तुम्हारे आने का क्या कारण है सो कहो ॥१८॥ लज्जा से मंद मंद हँसती हुई गोपियों को देख कर कहने लगे कि अरी सुकुमारियो इस बन में स्त्रियों को रहना उचित नहीं है इससे तुम लौट कर गोकुल को चली जाओ क्योंकि यह रात्रि भयंकर है और इसमें व्याघ्र आदि भयंकर प्राणी फिरते हैं ॥१९॥ और तुम्हें न देखते हुये तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता और पति तुम्हें ढूँढते होंगे इससे उन बांधवों को अपने न मिलने का कष्ट न दो ॥२०॥ तब वह थोड़े से प्रेमयुक्त कोप से दूसरी ओर को देखने लगीं तब उनसे कहने लगे कि तुमने पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित हुये और यमुना के जल को स्पर्श करके आनेवाले मंद मंद पवन से कंपायमान होनेवाले वृक्षों के पत्तों से

शोभायमान दीखनेवाले और प्रफुल्लित हुये बृन्दावन को भी देख लिया ॥२१॥ इससे हे सतियो तुम अब गोकुल में जाओ, विलंब न करो, पतियों की सेवा करो, तुम्हारे बालक भूंखे होकर रो रहे होंगे उनको दूध पिलाओ और गौओं के बछड़े रंभाते होंगे उनको दूध पिला कर गौओं को दुहो ॥२२॥ फिर आवेश से क्षुभित दृष्टिवाली देख कर गोपियों से कहने लगे अथवा मेरे स्नेह से तुम मेरे वश में चित्त हो जाने के कारण आई होओ तो यह तुम्हें योग्य ही है क्योंकि मुझमें सब ही प्राणी प्रीति करते हैं ॥२३॥ हे कल्याणियों निष्कपट भाव से पति की सेवा करना और पति के जो बंधु आदि हों उनसे प्रेमभाव के साथ यथायोग्य वर्ताव करना और बालकों का पालन करना यह स्त्रियों का उत्तम धर्म है ॥२४॥ जुआ आदि खेलनेवाला होने के कारण दुष्ट स्वभाव वाला, भाग्यहीन, बृद्ध, मूर्ख, रोगी और दरिद्री भी पति को, पुण्यलोक की इच्छा करने वाली स्त्रियें न त्यागें, ब्रह्महत्यादि महापातकों से दूषित हो तब भी उसकी दूर से ही सेवा करें संपर्क न करें ॥२५॥ कुलीन स्त्री को परपुरुष से मिलनेवाला जो सुख वह परलोक में स्वर्ग का और इस लोक में यश का नाश करनेवाला, तुच्छ, दुःखदायक, भयकारी और लोक में तथा स्त्रियों में भी निन्दित है ॥२६॥ हे स्त्रियो मेरे विषे जैसा सुनने से, देखने से, ध्यान से और मेरे गुणों को वर्णन करने से स्नेह अधिक होता है तैसा अंग के संग से नहीं होता है इस कारण तुम अपने अपने घर को चली जाओ ॥२७॥

पिछले लेख से यह भली प्रकार सिद्ध हो गया कि गोपियों में भक्ति और कामभावना विद्यमान है किन्तु भगवान् में कामभावना का लेशमात्र नहीं है। इस अध्याय के अंत तक जो कुछ गोपियों ने कहा उसमें भक्ति और कामभावना ये दोनों ही स्पष्ट रूप से झलकते हैं। अंत में जब गोपियाँ अत्यन्त दुखी हुई तब भगवान् कृष्ण आत्माराम होकर भी रमण को तैयार हुये। भगवान् कृष्ण के पवित्र वायु के स्पर्श से गोपियों की कामभावना क्षय होने लगी तब श्रीकृष्णजी ने गोपियों की कामभावना को फिर उद्दीपन किया। इसका विवरण इस प्रकार है—

> बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरु
> नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
> क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणा
> मुत्तंभयन् रतिपतिं रमयांचकार ॥

दूरवाली को पकड़ने के निमित्त भुजा फैलाना, बलात्कार से खींच कर आलिंगन करना, हाथ, केश, जंघा, वस्त्र का बंधन और स्तनों का स्पर्श करना, हास्य की वार्ता

करना, नखों के अग्र भागों से नोचना, क्रीड़ा के साथ देखना और हँसना, इस प्रकार उन व्रज सुंदरियों के कामदेव को उद्दीपित करते हुये श्रीकृष्णजी ने उनको क्रीड़ा कराई ॥४६॥

भगवान् कृष्ण से आदर मिलने पर गोपियों को अभिमान हो गया। भगवान् कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये, गोपियाँ बड़ी दुखी हुईं। वन वृक्षों से पूछती हुईं यमुनातट पर पहुंचीं वहाँ कृष्ण की विविध प्रकार की लीला की फिर कृष्ण को खोजती हुई वन को चलीं। ज्ञात हुआ कि एक गोपी कृष्ण के साथ गई है वह भी मिल गई, यमुना तट में आकर कृष्ण के गुणगान करने लगीं। इकत्तीस के अध्याय में गोपियों ने कृष्ण में अलौकिक प्रेम दिखलाया है किन्तु इस अध्याय में भी गोपियों में कामभावना सिद्ध होती है। बत्तीस के अध्याय में कृष्ण का प्रादुर्भाव होना और गोपियों के साथ में कृष्ण के वार्तालाप का वर्णन है और तेंतीस के अध्याय में रासक्रीड़ा है। इन पाँच अध्यायों में एक भी श्लोक ऐसा नहीं है कि जिसको आगे रख कर कोई भी गोपियों के साथ कृष्ण का व्यभिचार सिद्ध कर सके। भगवान् कृष्ण शुद्ध थे और वे किसी प्रकार से भी काम के वश में नहीं हुये। इसकी पुष्टि में श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार स्वामी श्रीधर जी नीचे लिखे प्रमाण देते हैं (१) "भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः। वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः" ॥ इस श्लोक में भगवान् व्यासजी ने "योगमायामुपाश्रितः" पद दिया है अर्थात् रासक्रीड़ा करने के लिये भगवान् ने योगमाया का आश्रय लिया। योगमायी पुरुष को "विषय" अपने काबू में नहीं कर सकते क्योंकि सांसारिक विषय में उस आनंद का लेश मात्र नहीं है जो आनंद योग में होता है।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा
स्वयं तदन्तःकरणे न गृह्यते ॥

समाधि से हुये पवित्र मन को जिसने आत्मा में लगा दिया उसको जो सुख होता है उस सुख को जबान से नहीं कह सकते, वह सुख अन्तःकरण से ग्रहण होता है।

इस अलौकिक आनंद में मग्न होकर भगवान् ने रासक्रीड़ा का आरंभ किया। इसका अभिप्राय यह है कि योगियों को काम सता नहीं सकता जब तक भगवान् रासक्रीड़ा में रहेंगे योगमाया का आश्रय लिए रहेंगे। इस भाव को दिखलाने के लिए व्यासजी ने "योगमायामुपाश्रितः" यह पद दिया है (२) फिर भगवान् वेदव्यासजी ने

"इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः। प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्" इस श्लोक को लिख कर यह सिद्ध किया है कि भगवान् कृष्णचंद्र आत्माराम हैं। जो आत्माराम है उसको सांसारिक विषय अपने काबू में नहीं ला सकते। इस विषय में प्रमाण भी मिलता है—

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रू प्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

हे वरद! आप कैसे हैं कि यदि कोई आपके घर की सामग्री की संभाल करे तो आपके घर में इतनी सामग्री पावे। बूढ़ा बैल, खटिया का एक पाया, कुठार, मृगचर्म, भस्म, सांप, मुर्दे की खोपड़ी बस आपके घर में इतनी सामग्री है और देवता लोग आपकी भ्रूकुटि के चलाने से उत्पन्न हुई बड़ी बड़ी ऋद्धि सिद्धियों को धारण करते हैं यह बात क्या है ? बात यह है कि आत्मा में है रमण जिसका उसको यह मृगतृष्णा अपने चक्कर में नहीं डाल सकती ॥ ३ ॥ वेदव्यासजी लिखते हैं कि "तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः। पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः। इस श्लोक में वेदव्यासजी ने यह सिद्ध किया है कि जीवों के मन को कामदेव मथ डालता है और कामदेव को चूर्ण कर देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी हैं। जब "मन्मथमन्मथः" पद श्लोक में विद्यमान है फिर किस हेतु को लेकर भगवान् कृष्ण पर व्यभिचार का कलंक लगा सकते हैं (४) आगे वेदव्यासजी लिखते हैं "एवं शशांकांशुविराजिता निशा स सत्यकामोऽनुरतावलागणः। सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः॥ इस प्रकार प्रेम करनेवाली स्त्रियों के समूह में रहनेवाले, सत्यसंकल्प और अपने में ही वीर्य को रोकनेवाले (अस्खलितवीर्य) तिन श्रीकृष्णजी ने चंद्रमा की किरणों करके प्रकाशयुक्त हुई और शरद ऋतु में होनेवाले तथा काव्य में कहे हुये रसों की आश्रय उन सकल रात्रियों में इस प्रकार क्रीड़ा करी।

इन चार प्रमाणों से श्रीमद्भागवत संहिता के निर्माता भगवान् वेदव्यास और श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार स्वामी श्रीधरजी भगवान् कृष्ण को अखंडित ब्रह्मचर्य सिद्ध करते हैं। वर्तमान समय में जो भगवान् की पवित्र लीला मर्यादा को कलंकित करने का मिथ्या साहस करते हैं उनके पास उनके पक्ष की पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं है। उनके मन स्वतः अपवित्र हो गये हैं इस कारण उनको समस्त संसार

और भगवान् कृष्णचंद्र की लीला भी अपवित्र जान पड़ती है। इससे भिन्न और इनके पास एक भी प्रमाण नहीं है। श्रीधरजी इस विषय में जो लिखते हैं वह लेख यह है—

ननु विपरीतमिदं परदारविनोदेन कंदर्पविजेतृत्वप्रतीतेः। मैवम्। योगमायामुपाश्रितः। आत्मारामोऽप्यरीरमत्। साक्षान्मन्मथमन्मथः। आत्मन्यवरुद्धसौरत इत्यादिषु स्वातंत्र्याभिधानात्। तस्माद्रासक्रीड़ाविडंबनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्त्वम्। किंच। शृंगारकथोपदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पंचाध्यायीति व्यक्तीकरिष्यामः॥

दूसरे की स्त्रियों के साथ विनोद करके कामदेव का विजय करना यह भी विपरीत है अर्थात् दूसरे की स्त्रियों के साथ में रह कर कामदेव का विजय करना असंभव है। यदि कोई इस प्रकार की शंका करता हो तो मत करे क्योंकि "योगमायामुपाश्रितः" "आत्मारामोऽप्यरीरमत्" "साक्षान्मन्मथमन्मथः" "आत्मन्यवरुद्धसौरत" इत्यादि श्लोकों में कृष्ण को स्वातन्त्र्य कहा है इस कारण से रासक्रीड़ा जो है काम के विजय करने के लिये है यही हम टीका में स्पष्ट करेंगे और शृङ्गाररस के उद्देश से रासपंचाध्यायी निवृत्तिपरक है प्रवृत्तिपरक नहीं है।

(५) राजा परीक्षित का प्रश्न है कि—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः॥ २७॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम्॥ २८॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत॥ २९॥

हे शुकदेवजी धर्म को भली प्रकार स्थापन करने और अधर्म को दूर करने को ही अपने अंशरूप बलरामजी के साथ उन जगदीश्वर भगवान् ने अवतार धारा था॥२७॥ फिर हे ब्रह्मन् उपदेश करके दूसरों से धर्म की मर्यादा को प्रवृत्त करनेवाले, आप आचरण करके दिखानेवाले और विरोधियों का तिरस्कार करके सब प्रकार के धर्म की रक्षा करनेवाले उन श्रीकृष्णजी ने ही परस्त्री का स्पर्शरूप यह बड़ा धर्म विरुद्ध कार्य कैसे किया यदि कहो कि पूर्ण मनोरथों को यह अधर्म नहीं होता है तो पूर्णकाम भी

निन्दित कर्म नहीं करते हैं तब पूर्ण मनोरथ श्रीकृष्णजी ने किस अभिप्राय से यह परस्त्री स्पर्शरूप निन्दित कर्म करा, हे सदाचार इस हमारे संदेह को तुम काटो ॥२९॥

इसका उत्तर श्रीशुकदेवजी ने जो दिया है वह यह है—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

सामर्थ्यवालों का साहस और धर्मव्यतिक्रम भी देखा जाता है किंतु तेजधारियों को उसका कुछ दोष नहीं होता जैसे अग्नि दूषित पदार्थ को खाकर दूषित नहीं होता।

सामर्थ्यवान् को दोष नहीं होता शास्त्र में इसके तीन दृष्टान्त आते हैं एक अग्नि का, दूसरा सूर्य का और तीसरा गङ्गाजी का। हिन्दी साहित्यके सम्राट गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी तुलसीकृत रामायण में तीनों दृष्टान्त इकट्ठे कर दिये हैं। चौपाई इस प्रकार है—

समरथ को नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

समरथ को दोष नहीं होता जैसे सूर्य अग्नि और गंगाजी को दोष नहीं लगता। पृथ्वी पर पड़े हुये "मल" से जब सूर्य संयोग करता है तो उसके बदबूदार गीलेपन को मल से खींच लेता है फिर प्रशंसा यह है कि अपने में उसको ग्रहण नहीं करता। यह सूर्य में सामर्थ्य है कि जिस दूषित पदार्थ के साथ वह संयोग करे दूषित अंश को उसमें रहने नहीं देता और अपने में आने नहीं देता। यही सामर्थ्य अग्नि में भी है। कल्पना करो कि अग्नि में किसी ने सूखा "मल" डाल दिया वह अग्नि सूखे मल में उस दूषित पदार्थ को रहने नहीं देगा और अपने में ग्रहण नहीं करेगा किन्तु मल में प्रवेश करके दूषितांश को हाइड्रोजन बना के उड़ा देगा। यही सामर्थ्य गंगाजी में भी है। गंगाजी में जब दूषित पदार्थ पड़ेगा तो संयोग करते ही गंगाजी उसमें से दूषितांश के निकालने का उद्योग आरंभ कर देगी और शनैः शनैः उसको शुद्ध बना देगी और वह दूषितांश अपने में आने नहीं देगी। इस प्रकार की सामर्थ्य जिसमें हो उसको समर्थ कहा गया है। धन, विद्या, राज्य आदि सामर्थ्य को लेकर यहां सामर्थ्यवान् नहीं लिया जाता है। सूर्य, अग्नि, जान्हवी में जो यह सामर्थ्य है कि संयोगवाले पदार्थ में से दूषितांश निकाल देंगे और संयोगवाले पदार्थ में से दूषितांश को अपने में लेंगे नहीं। भगवान् कृष्ण ने रासपंचाध्यायी में इसी शक्ति को दिखलाया है। गोपियों में उत्कट भक्ति रहने पर भी कामभावना थी इस कामभावना को जगदीश्वर ने गोपियो में से निकाल डाला और अपने तक आने नहीं दिया इसी भाव को लेकर श्रीशुकदेवजी लिखते

हैं कि "तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा" सिद्ध होगया कि गोपियों में काम भावना थी और कृष्ण में काम के विजय करने की इच्छा थी। अखंड ब्रह्मचर्य धारण किये रहते गोपियों के काम को विजय किया है जैसा कि कोई भी सामान्य पुरुष कर नहीं सकता। इसी गूढ़ अभिप्राय को आगे रख भगवान् को "जार शिरोमणि" कहा गया है।

* कुब्जासमागम *

(६) किसी किसी सज्जन का कथन है कि कुब्जा के साथ में तो कृष्ण का व्यभिचार मानोगे ? इसका निर्णय करने के लिये हम कुब्जा की आख्यायिका लिखते हैं।

अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः।
सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥१॥
महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम्।
मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ॥
धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गंधैरपिमंडितम् ॥२॥

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासना-
त्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा।
यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं-
सभाजयामास सदासनादिभिः ॥३॥
तथोद्धवः साधु तयाभिपूजितो
न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम्।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं
विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥४॥
सा मज्जनालेपदुकूलभूषणा-
स्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं
सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥५॥

आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया
विशंकितां कंकणभूषिते करे ।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥६॥
साऽनंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णो-
र्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजंती ।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्त-
मानंदमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥७॥
सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ।
अंगरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥८॥
आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥९॥

श्रीमद्भा० स्क० १० अध्या० ४८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! तदनन्तर सर्वात्मा और सर्वदर्शी उन भगवान् श्रीकृष्णजी ने कामतप्त हुई कुब्जा का कामसंताप जान कर उसका प्रिय करने के निमित्त उसके घर गमन करा ॥१॥ वह उसका घर बहुत मूल्य के पात्र आदिकों से युक्त कामशास्त्र में कहे हुये कामोद्दीपक पदार्थों से बढ़ा हुआ और मोतियों की माला, ध्वजा, कपड़छत, शय्या, कोमल आसन, अगर के धूप, मणियों के दीपक, फूलों की माला और चंदन के लेप आदि से शोभित था ॥२॥ घर आनेवाले उन श्रीकृष्ण को देखते ही घबड़ाई हुई वह कुब्जा आसन पर से उठ कर सखियों के साथ यथायोग्य रीति से सन्मुख जाकर उसने श्रीकृष्णजी की उत्तम प्रकार से आसनपाद्य आदि सामग्री समर्पण करके पूजा करी ॥३॥ तैसे ही उद्धवजी का भी उसने उत्तम प्रकार से पूजन करा सो वह आसन को स्पर्श करके भूमि पर ही बैठ गये तदनन्तर लोकरीति का वर्ताव करनेवाले श्रीकृष्णजी ने भी नवीन (जिसके ऊपर पहले किसी ने भी शयन नहीं करा ऐसे) बहुत मूल्य के पलंग पर प्रवेश करा ॥४॥ तब वह कुब्जा भी स्नान करना, अंगको उबटन लगाना, उत्तम वस्त्र पहिरना, भूषण और माला धारण करना, ताम्बूल और अमृत की समान मधुर मदकारी वस्तु का सेवन करना इत्यादि प्रकारों से भगवान् के साथ क्रीड़ा करने को अपने शरीर को सम्हाल कर, लज्जायुक्त मंदहास्य

और विलास के साथ देखती हुई श्रीकृष्णजी के समीप आई ॥५॥ श्रीकृष्णजी के नवीन समागम के कारण लज्जा से स्वयं समीप आने में लज्जायुक्त हुई तिस कुब्जा को श्रीकृष्णजी ने अपने समीप बुला कर उसके कंकणों से भूषित हाथ को पकड़ कर शय्या पर बैठाया और उसके साथ क्रीड़ा करी, चंदन का लेपन करने के सिवाय जिसका दूसरा कोई भी पुण्य नहीं था, उस कुब्जा का देखो कितना भाग्य है ॥६॥ तदनन्तर अनन्तशक्ति श्रीकृष्णजी के चरणों की सुगंध ही सूंघती है मानो ऐसी तिस कुब्जा ने मदन से तप्त हुए अपने स्तन वक्षःस्थल और नेत्रों में उनके चरणों को रख कर तिससे अपने स्तनादि की कामपीड़ा दूर करके स्तनों के मध्यभाग में प्राप्त हुये उन आनन्द मूर्ति अतिप्रिय श्रीकृष्णजी के भुजाओं से आलिंगन करके अपना बहुत दिनों का ताप दूर करा ॥७॥ अहो ! इस प्रकार चंदन का लेपन अर्पण करने से ही उन दुष्प्राप्य भी मोक्ष के स्वामी श्रीकृष्णजी को पाकर भाग्यहीन भी वह कुब्जा उनसे यह याचना करने लगी कि ॥८॥ हे अतिप्रिय कमलनयन ! तुम्हारा संग छोड़ने को मैं उत्साह नहीं कर सकती हूं इस कारण कुछ दिनों पर्यन्त तुम मेरे साथ क्रीड़ा करो और इस मेरे घर में ही रहो ॥९॥

मैं आप से पूछता हूं कि ये जो श्रीमद्भागवत पर व्यभिचार का दोष लगाते हैं इनको इतना भी तो विचारना चाहिए कि श्रीमद्भागवत के वक्ता कौन ? और श्रोता कौन ? तथा समय क्या ? श्रीमद्भागवत के वक्ता वह श्रीशुकदेवजी हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मज्ञानी, जिनको कभी स्वप्न में भी संसारी विषय मोहित नहीं कर सकते, जो स्त्री पुरुषों के ज्ञान से भी अनभिज्ञ हैं, जो संसारी विषयों की तरफ से बिल्कुल मन इन्द्रियों को हटा कर ब्रह्म में लीन कर बैठे हैं, जिनको बड़े बड़े ऋषि, मुनि जीवनमुक्त की दृष्टि से देख रहे हैं यह कथा तो रही वक्ता की। अब ज़रा एक दृष्टि श्रोता पर भी डालें। श्रोता कौन हैं, वही राजा परीक्षित, जो यह जानते हैं कि अब मेरी आयु सात दिन की है, अब मुझे क्या करना चाहिये कि जिससे आत्मा को सद्गति मिले, इसी विचार में जिसने राज्य पूज्य देवश्लाघ्य राजसिंहासन और संसारी विषयों पर लात मार दी, जो बिल्कुल संसार से विमुख हो गया, वही राजा परीक्षित श्रोता हैं। समय भी वह है कि एक दिशा में परमपावनी भारतवर्ष के यज्ञोपवीत का स्वरूप धारण करनेवाली भागीरथी बह रही है और तट पर श्रीशुकदेवजी के सम्मुख परीक्षित बैठा हुआ है तथा आस पास ऋषि मुनियों के आसन लगे हैं। क्या कोई बुद्धिमान, सभ्य, विचारशील यह अनुमान कर सकता है कि यह समय व्यभिचार की बातें करने का है। क्या राजा परीक्षित ने अपना घर, संतान, स्त्री आदि इसी कारण से छोड़े थे कि व्यभिचार की दो दो बातें सुनेंगे। क्या राजा परीक्षित ने बड़े बड़े ऋषि मुनियों को इसी कारण

बुलाया था कि दौड़ो यहां पर व्यभिचार की कथा होगी। क्या श्रीशुकदेवजी इसी कारण से विरक्त और ज्ञानी, जितेन्द्रिय हुये थे कि परीक्षित के यहां व्यभिचार की कथा बांचनी होगी। इस समय इस सभा में अत्यन्त व्यभिचारी भी उपदेशवश या लज्जावश उसकी बात भी न करेगा। भला अब इनसे पूछो तो सही कि क्या आपने कभी एक दृष्टि इस पर डाली, कभी नहीं। यदि इस पर जरा भी विचार करते तब तो व्यभिचार की शंका ही न उठती।

(२) यह व्यभिचार का दोष किस पर है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर? इन्द्रियों को अपने आधीन लाकर विषय से विमुक्त होना ही जिनका दृढ़ सिद्धान्त है क्या वही श्रीकृष्णचन्द्रजी व्यभिचारी हैं? यह कथन बच्चों का सा बकवाद नहीं तो और क्या है? गीता के प्रकरण पर भी एक दृष्टि डालें।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने प्रश्न किया कि—

अथ केनप्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय वलादिव नियोजितः ॥३६॥

श्रीकृष्णचन्द्र! भला यह तो बतलाओ कि यह पुरुष किसके उभारने (उस्काने) से पाप करता है। हे वार्ष्णेय! यह पाप करना चाहता भी नहीं तथापि इसको कोई दूसरा ही पाप करने में जबरन प्रवृत्त करता है वह कौन है ॥३६॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी की तरफ से उत्तर—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥३७॥

रजोगुण से उत्पत्ति जिसकी बहुत खानेवाला यह काम (मन की इच्छा) और बड़ा पापी यह क्रोध जबर्दस्ती पाप करवाता है इसको ही तू शत्रु जान ॥३७॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथा दर्शो मलेन च।
यथोल्वेणावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

जैसे धुआं आग को ढक लेता है और जैसे मैल शीशे को आच्छादित कर लेता है। जैसे झिल्ली बच्चे को ढक लेती है ठीक उसी प्रकार यह पवित्र आत्मा को आच्छादित कर लेता है ॥३८॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

इस कामरूप ने जो ऐसी आग है जिसका भरना कठिन है और जो ज्ञानी का सदा वैरी है, ज्ञान को ढक रक्खा है ॥३९॥

इन्द्रियाणिं मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

इन्द्रियां और मन तथा बुद्धि इसके रहने की जगह हैं इन में बैठ कर इनके द्वारा यह ज्ञान को दबा कर और इनको उभाड़ कर आत्मा को इन्द्रियों के विषय में मोहित कर देता है ॥४०॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

श्रीमद्भाग० अ० ३

हे भरत के वंश में श्रेष्ठ ! इस लिये तू पहिले इन्द्रियों को रोक कर इस ज्ञान और विज्ञान के नाश करनेवाले इस पापी का नाश कर ॥४१॥

इन सज्जनों को इतना भी तो सोचना चाहिए था कि इन्द्रियों को वश में कर लेना ही जिनका इष्ट है क्या वे ही श्रीकृष्ण इन्द्रियों में फँस कर व्यभिचार करेंगे । धन्य है इनके विचार को और इनकी विचारशालिनी बुद्धि को जो किंचित् भी विचार नहीं करते ।

इस कथा में भगवान् का कुब्जा के यहाँ आना और शय्या पर बैठना, कुब्जा को भी शय्या पर बिठलाना, कुब्जा का आलिंगन करना इतना सिद्ध है, भोग करना नहीं । यदि कोई यह कहे कि हम "रमस्व" क्रिया से भोग भी ले लेंगे । इसका उत्तर यह है कि रमस्व क्रिया "रमु क्रीड़ायाम्" धातु की है जिसका अर्थ मैथुन नहीं होता (२) कृष्ण अकेले नहीं थे साथ में उद्धव भी थे (३) कुब्जा भी अकेली नहीं थी उसके साथ में अनेक सखियां थीं, इस समुदाय में भोग की शंका भी नहीं हो सकती (४) कृष्ण की आयु भी भोग के योग्य नहीं थी इस समय भगवान् कृष्ण की आयु ११ ग्यारह वर्ष की है । ग्यारह वर्ष की अवस्था में दो प्रमाण मिलते हैं [क] भगवान् कृष्ण पवित्र चन्द्रवंश क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुये हैं इस जाति में धर्मशास्त्रों ने १२ बारहवें वर्ष में उपनयन विधि लिखी है । अभी भगवान् कृष्ण का उपनयन नहीं हुआ इस कारण इस समय भगवान् कृष्ण ग्यारहवें वर्ष में हैं [ख] श्रीमद्भागवत में स्पष्ट लिखा है देखिये—

ततो नंदव्रजमितः पित्रा कंसाद्धि विभ्यता।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥

स्कं० ३ अ० २

कंस से भयभीत हुये पिता वसुदेव ने भगवान् कृष्ण को व्रज में नन्द के यहाँ पहुँचा दिया। यहां पर सबल भगवान् कृष्ण ने ग्यारह वर्ष तक इस प्रकार निवास किया जैसे राख में ढकी हुई अग्नि रहती है।

इनसे यह पूछो कि तुम श्रीकृष्ण को मनुष्य मानते हो या ब्रह्म? यदि ये कहें कि हम तो मनुष्य मानते हैं तो इनसे कहो कि आपने किसी वैद्य हकीम या डाक्टर से पूछा कि क्या ग्यारह वर्ष की अवस्था में जो इस समय कृष्ण भगवान् की अवस्था थी उसमें मनुष्य के शरीर में भोगशक्ति का संचार हो जाता है या नहीं, संसार भर के डाक्टर एक जबान होकर उत्तर देंगे कि नहीं नहीं। जब इस अवस्था में भोगशक्ति का संचार ही नहीं तो फिर शंकावालों ने बुद्धि को कहाँ रक्खा और यदि ये यह कहें कि हम तो कृष्ण को ब्रह्म मानते हैं तो इन कृपा के भोलों से पूछो कि सर्वत्र व्यापक ब्रह्म में शंका कैसी। संसार के पदार्थों में से ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है कि जिसके प्रत्येक परमाणु में ब्रह्म की सत्ता न हो।

यहाँ पर एक शंका यह करते हैं कि वास्तव में ब्रह्म कृष्ण में कामभावना नहीं है किन्तु कुब्जा ने तो भगवान् का पतिभाव से आदर किया है ऐसी स्त्री के साथ बैठना क्या पाप नहीं है? ऐसी शंका वही पुरुष कर सकता है जिसको लीलावतार के प्रयोजन का ज्ञान नहीं है। लीलावतार का मुख्य प्रयोजन मनुष्यों को मोक्ष देना होता है इसको श्रीमद्भागवत ने इस प्रकार लिखा है—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१४॥
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥१५॥

स्कं० १० अध्या० २९

राजन्! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण, गुणों के आधार भगवान् का जो कृष्णरूप में प्रकट होना है वह केवल मनुष्यों को मोक्ष देने के निमित्त है ॥१४॥ जो मनुष्य भगवान् में काम, क्रोध, भय, प्रेम, ऐक्यता, मित्रता को धारण करता है वह तन्मयता को प्राप्त होता है ॥१५॥

बस लीलावतार भगवान् कृष्ण के चरित्र में यह नियम अवाध्यरूप से पाया जाता है। वकी स्तनों में विष लगा कर भगवान् को मारने के लिये आई किन्तु भगवान् ने ऐसा करने पर भी उसको मोक्ष दी। अघासुर गोप और कृष्ण को खाने के लिए आया उसको भी सारूप्यता मिली। शिशुपाल ने युधिष्ठिर के यज्ञ में अनेक दुर्वचन कहे किन्तु उसको तन्मयता मिली। वकी के विष और अघासुर के द्वारा मृत्यु, शिशुपाल के द्वारा मिली हुई गालियां इन पर कुछ भी ध्यान न देकर भगवान् ने इनका संसारबंधन काट दिया। इसी प्रकार कुब्जा के कामभाव पर दृष्टि न देकर कुब्जा को मोक्ष की अधिकारिणी बनाया है बस इतना अभिप्राय था।

* कृष्णोद्वहन *

(७) कोई कोई सज्जन यह भी कहते हैं कि यह तो ठीक है किन्तु भगवान् कृष्ण ने सोलह हजार एक सौ आठ विवाह करवाये यह अनुचित और सभ्यता के बाहर था।

"लक्षं वेदाश्चत्वारो लक्षमेकं तु भारतः" चारो वेद के मंत्र एक लक्ष हैं और एक ही लक्ष श्लोक महाभारत में हैं। वेद के एक लक्ष मंत्रों में कौन कौन विषय है, इसके विवेचन से यह उपलब्ध होता है कि वेद काण्डत्रय में विभक्त है। कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञानकाण्ड यही तीन विषय वेद में हैं। जिस समय वटुक उपनयन को धारण करता है वह उपनयन छियानवे चउवे का बनता है इसका कारण यह है कि वेद के कहे हुये कर्मकाण्ड के उत्पादक अस्सी हजार वेद मंत्र हैं और उपसनाकाण्ड को कहनेवाले वेदमंत्र सोलह हजार हैं, अस्सी और सोलह को मिलाने से छियानवे होते हैं, उपनयन धारण करने के समय वटुक यह संकल्प करता है कि अस्सी हजार वेद मंत्रों में कहे हुये कर्मकाण्ड को और सोलह हजार वेद मंत्रों में कहे हुये उपासनाकाण्ड को आज मैं अपने कंधे रखता हूं। शेष चार हजार ज्ञानकाण्ड है। मनुष्य जब उसमें प्रवेश करता है तब शिखा सूत्र दोनों का परित्याग कर देता है। काण्डत्रय में सोलह हजार श्रुतियां जो बतलाई हैं यह स्थूल हिसाब है सूक्ष्म हिसाब से सोलह हजार एक सौ सात श्रुतियां हैं। जिस समय भगवान् ने लीलावतार श्रीकृष्ण का रूप धारण किया उस समय इनकी उपासना करने के लिये सोलह हजार एक सौ सात श्रुतियों की अधिष्ठात्री देवताओं ने स्त्री रूप धारण करके श्रीकृष्ण से पाणिग्रहण किया इस प्रकार १६१०७ सोलह हजार एक सौ सात स्त्रियां तो ये हुईं और एक भगवती रुक्मिणी रूप धारण करके लक्ष्मी अवतरित हुई। इस कारण से भगवान् श्रीकृष्ण की १६१०८ सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियां हुईं। अब शंका यह रही कि क्या अधिष्ठात्री देव भी होते हैं? हां होते हैं। यदि हम

अधिष्ठात्री देव को न मानें तो फिर पृथ्वी का गौरूप धारण करना नहीं बनता और वेद इस बात को मानता है कि पृथ्वी ने गौरूप धारण किया और पृथु ने उसको दुहा। इस विषय का वेद मंत्र हम "पुराणवर्म" के पृष्ठ ३२ पंक्ति १४ में लिख आये हैं वहाँ पर ही देख लेना।

* पृथु का विवाह *

(८) कई एक सज्जनों का कथन है कि महाराज पृथु का विवाह उनकी भगिनी अर्चि के साथ हुआ था।

हम प्रथम पृथु और अर्चि की उत्पत्ति लिखते हैं देखिये—

अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः।
बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥
तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः।
ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥२॥

ऋषय ऊचुः।

एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालिनी।
इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥३॥
अत्र तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः।
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥४॥
इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा।
अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥५॥

श्रीमद्भा० स्कं० ४ अध्या० १५

निषाद उत्पन्न होने के पश्चात् पुत्रहीन राजा वेन के शरीर को ऋषियों ने फिर मथा। वेन की भुजाओं से एक जोड़ा पैदा हुआ ॥१॥ ब्रह्म के ज्ञाता ऋषि उस मिथुन को देख कर परम संतुष्ट हो बोले और उन्होंने भगवत्कला को जाना ॥२॥ ऋषि बोले कि यह भगवान् विष्णु की भुवन पालन करनेवाली कला है और यह जो कन्या है यह

पवित्र लक्ष्मी की कला है ॥३॥ इनमें जो यह प्रथम पुमान् है यह राजाओं के यश को विस्तृत करेगा इस कारण इसका नाम महाराज पृथु होगा और यह अलौकिक चरित्र वाला होगा ॥४॥ तथा यह जो सुदती देवी है गुणभूषणस्त्रियों की भूषण होगी और यह वरारोहा पृथु को ग्रहण करनेवाली है इसका नाम अर्चि होगा ॥५॥

इस कथा से अर्चि का पृथु की भगिनी होना कदापि सिद्ध नहीं होता। भगिनी भ्राता का व्योहार संसार और शास्त्रों में उस समय लिया जाता है जब कि सृष्टि योनिज हो। यहाँ पर पृथु और अर्चि दोनों ही अयोनिज हैं। हम ब्रह्मा सरस्वती की कथा में स्पष्ट रूप से दिखला आये हैं कि मुसलमान, ईसाई, दयानंदी और वैदिकसृष्टि तथा साइंससृष्टि अयोनिज होने के कारण भाई-बहिन और पिता-पुत्र व्योहार वहां नहीं रहता तथा पृथु की कथा में तो स्पष्ट रूप से लिखा है कि महाराज पृथु ईश्वर का अवतार हैं और अर्चि लक्ष्मी का अवतार हैं अतएव ये पति पत्नी हैं भाई बहिन नहीं हैं। लक्ष्मी ईश्वर की स्त्री है इसको सभी पुराण कहते हैं। इतना ही नहीं किन्तु यजुर्वेद अध्याय ३१ के अंतिम मंत्र में वेद ने स्पष्ट कर दिया है कि "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ" हे भगवन् श्री और लक्ष्मी ये दो तेरी पत्नी हैं। जब वेद ने लक्ष्मी को ईश्वर की पत्नी बतला दिया तो फिर वह भगिनी कैसे हुई ? यदि कहो कि हम यह मानते हैं कि ईश्वर की पत्नी लक्ष्मी है किन्तु अर्चि पृथु की पत्नी नहीं है ऐसा मान लेना अक्ल को बाजार में नीलाम कर देना है क्योंकि पृथु ईश्वर है और अर्चि लक्ष्मी है अतएव किसी प्रकार से भी पृथु और अर्चि में भाई बहिन का संबंध नहीं घट सकता।

❀ विष्णुवृन्दाचरित्र ❀

(६) किसी किसी सज्जन का कथन है कि विष्णु ने बलात्कार वृन्दा का पातिव्रत-धर्म भंग किया, यह व्यभिचार है और घोर पाप है।

उत्तर—शिवपुराण रुद्रसंहिता युद्धखण्ड में जलंधर की कथा आती है। यह प्रबल वीर था किन्तु वीरशक्ति का इसने दुरुपयोग किया। देवताओं के अधिकारों को छीन कर यह वेदमार्ग को लुप्त करना चाहता था। एक दिन यह राक्षस पार्वती का पाति-व्रतधर्म भंग करने के लिये कैलाश पर्वत पर पहुंचा। इस कथा को शिवपुराण ने इस प्रकार लिखा है—

एकाग्री भूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलंधरः।
कामतस्स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥३७॥

युद्धे शुंभनिशुंभाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ।
दश दोर्दण्ड पंचास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥३८॥
महावृषभमारूढस्तथा रुद्रसंनिभः ।
आसुर्य्या मायया व्यास सबभूव जलंधरः ॥३९॥
अथ रुद्रं समायातमालोक्य भववल्लभा ।
अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥४०॥
यावद्ददर्श चार्वंगीं पार्वतीं दनुजेश्वरः ।
तावत्सवीर्यमुमुचे जड़ाङ्गश्चाभवत्तदा ॥४१॥

युद्ध खं० अ० २२

दैत्य जलंधर इस प्रकार शंकर को एकाग्रभूत देख कर काम के वेग से मत्त होकर पार्वती के समीप गया ॥३७॥ युद्ध के लिये शुंभ निशुंभ दैत्य को स्थापन करके आप दश भुजा, पांच मुख, तीन नेत्र, जटाधारी होकर ॥३८॥ महावृषभ पर चढ़ कर साक्षात् रुद्र वह अपनी आसुरी माया से बन गया ॥३९॥ तब शिवप्रिया पार्वती रुद्र को आया देख कर सखीजनों के मध्य से उठ कर उसके सन्मुख उपस्थित हुईं ॥४०॥ ज्योंही उस दैत्येश्वर ने पार्वती को देखा कि उसका वीर्य पतित हुआ और उसके अंग जड़ीभूत हो गये ॥४१॥

श्रीमती जगदम्बा अंतर्धान हो कर उत्तर मानस को चली गईं। जलंधर शंकर से युद्ध करने को चला गया। उत्तर मानस में पार्वतीजी ने विष्णु का स्मरण किया, विष्णु आये, पार्वती को प्रणाम किया। पार्वती ने पूछा कि आप को जलन्धर की विचित्र घटना ज्ञात हो गई ? विष्णु बोले हां माता हो गई। पार्वती ने कहा कि अब इसको मारो। यह मरेगा तब, जब इसकी स्त्री का पातिव्रतधर्म भंग होगा। पातिव्रतधर्म के भंग करने का इसने आरंभ कर दिया है इसके आरंभ किये हुये मार्ग का आचरण करो और इसको मारो। विष्णु ने छल के साथ वृन्दा का पातिव्रतधर्म भंग कर दिया। एक दिन भोग के अन्त में वृन्दा विष्णु को शाप दे गई और आप अग्नि में जल कर मर गई। अग्नि में जलते समय विष्णु ने बहुत रोका किन्तु कालनेमि की पुत्री वृन्दा चिता में प्रवेश कर गई। उस समय ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवता अपनी स्त्रियों सहित वृन्दा की सद्गति देखने को आये। सब के देखते ही देखते वृन्दा के शरीर से कुछ प्रकाशपुंज निकला और वह तेज पार्वती के शरीर में प्रवेश कर गया इस प्रकार

जब वृन्दा की मोक्ष होगई तब विष्णु बहुत देर तक उसकी चिता की भस्म में लोटते रहे यह वृन्दा की कथा है।

इस कथा में जलंधर का मारना उचित है क्योंकि वह वेदमार्ग का लोप करके संसार में अत्याचार फैलाता था। यदि इसकी धर्मपत्नी वृन्दा का पातिव्रतधर्म भंग न किया जाता तो नहीं मालूम यह राक्षस कितनी स्त्रियों का पातिव्रतधर्म भंग करता। और की तो क्या कहें यह जगदम्बा पार्वती का ही पातिव्रतधर्म भंग करना चाहता था। अनेक स्त्रियों का धर्म बचाने के लिये एक वृन्दा का पातिव्रतधर्म भंग हो गया तो यह धर्ममर्यादा रखने के लिये हुआ है इस कारण पाप नहीं। विष्णु ने जलंधर का रूप धारण करके वृन्दा से भोग किया है इसमें पातिव्रतधर्म तो अवश्य भंग हो गया किन्तु वृन्दा ने तो जलंधर समझ कर भोग किया है और जिस दिन विष्णु जान लिया उस दिन शरीर नहीं रक्खा अतएव सर्वांश में पातिव्रतधर्म का भंग नहीं हुआ इसी कारण वृन्दा की मोक्ष हो गई। जलंधर का मारना आवश्यकीय था उसके मारे बिना स्त्रियों के धर्म की मर्यादा नहीं रह सकती थी, धर्ममर्यादा रखने के लिये ही विष्णु ने वृन्दा का पातिव्रतधर्म भंग किया किन्तु विष्णु को पातिव्रतधर्म भंग करने का पश्चात्ताप हुआ अतएव वह माननीया पूज्या वृन्दा की चिता में लोटते रहे। नहीं मालूम इसमें कलंक क्या है, इस कथा में तो संसार में धर्ममर्यादा का रखना और पातिव्रतधर्म का महत्व वर्णित हुआ है इसमें कोई पाप की बात नहीं है।

किसी किसी सज्जन का कथन है कि यह तो सब ठीक है किन्तु विष्णु ने जो वृन्दा का पातिव्रतधर्म भंग किया है इसका पाप तो विष्णु को लगा। इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि विष्णु को पाप नहीं लगा। देखिये—

> यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता
> योगप्रभाव विधुताखिलकर्मबंधाः।
> स्वैरं चरंति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
> स्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बंधः ॥३५॥

श्रीमद्भा० दशम स्कं० अ० ३३

जिस विष्णु के चरणकमल के पराग से तृप्त भक्त विष्णु के चरणयोग के प्रभाव से अखिल कर्मबंधनों को काट देते हैं और फिर कर्मबंधन से छूट कर वे मुनि स्वेच्छा-तनु बन जाते हैं भला कहीं ऐसे जगदीश्वर को भी कर्मबंधन होता है ?

ईश्वर के किये हुये अनेक कर्म संसार में होते रहते हैं। कहीं प्लेग, कहीं इनफ्लूंजा, कहीं युद्ध, कहीं भूचाल क्या इन कर्मों का फल ईश्वर को मिलता है यदि मिलता है तब तो कर्म के भोग से ईश्वर कभी छुटकारा ही नहीं पा सकेगा। ईश्वर को कर्मफल किस कानून से मिलता है। वेद शास्त्र में जो शुभाशुभ कर्म कहे हैं यह श्रुति स्मृति रूपी कानून मनुष्यों के लिये है ईश्वर के लिये नहीं है फिर नहीं मालूम वह कौन कानून है जिस कानून से ईश्वर को पापी ठहराया जाता है फिर कर्म का फलदाता कोई और होता है और भोक्ता कोई और होता है यदि ईश्वर कर्मफलभोक्ता है तो फिर कर्मफलदाता कौन है? कई एक सज्जन यह कहते हैं कि प्लेग इनफ्लूंजा आदि रोग ईश्वर मनुष्यों के कर्मों के अनुसार देता है इस कारण ईश्वर को ऐसे कामों के करने का फल नहीं मिलता। यह भी गप्प है। ईश्वर मनुष्यों के कर्मों को विना भोगे भी मिटा देता है। वेद कहता है कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न वहुना श्रुतेन।
यमैवैष वृणुते तेन लभ्यं
स्तस्यैस आत्मा वृणुते तनूंस्वाम्॥

वहुत बकवाद से आत्मा नहीं मिलता, अत्यंत बुद्धिमान् होने से ईश्वर नहीं मिलता, बहुत श्रुत से आत्मा नहीं मिलता, जो अनन्यभक्त होकर ईश्वर की शरण जाता है उसको मिलता है और यह आत्मा उसी को अपना शरीर दिखलाता है। यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में लिखा है कि—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति।
नान्यः पंथा विद्यतेयनाय॥ यजु० अ० ३१ मं० १८

इस महान् पुरुष को हमने जाना जो सूर्यसदृश वर्णवाला और तम से परे हैं इसी को जान करके पुरुष मृत्यु को जीतता है इससे अन्य कोई मार्ग ऐसा नहीं है जिस मार्ग से चल कर मृत्यु का विजय कर सके।

वेद की इन दो श्रुतियों में ईश्वर का दर्शन होना लिखा है। ईश्वर के दर्शन का क्या फल होता है उसको मुंडकोपनिषद्व लिखता है—

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

जब उस परावर ईश्वर का दर्शन हो जाता है तब हृदय की ग्रंथि टूट जाती है, समस्त संशय कट जाते हैं, समस्त कर्म क्षय हो जाते हैं।

ईश्वर के दर्शन से अथवा ईश्वर की कृपा से किये हुये जीव के कर्म विना भोग ही क्षय हो जाते हैं वेद में भी इस प्रकार की प्रार्थना मिलती है देखिये—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात् ॥

यजु० अ० ३ मं० ६०

यजुर्वेद के इस मंत्र का अर्थ करते हुये यास्क मुनि लिखते हैं कि "त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्। सुगन्धिं सुष्ठुगन्धिं पुष्टिवर्धनं पुष्टिकारक मिवोरुकमिव फलं वंधनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुञ्चस्व मां कस्मादित्येषापरा भवति ॥

हम तीननेत्रोंवाले रुद्र (परमात्मा) को पूजते हैं जो पुण्यगंध से युक्त है (धन धान्यादि) की पुष्टि का वढ़ानेवाला है (जिससे कि उसकी कृपा से) खरबूजे की नाईं हम वंधन से छूटें मत अमृत से।

ईश्वर के दर्शन होने पर कर्मों का क्षय हो जाता है यह "भिद्यते हृदयग्रंथि" इस श्रुति द्वारा सिद्ध है। ईश्वर की कृपा से कर्मवंधन कट जाता है यह "त्र्यम्बकं" इस मंत्र की प्रार्थना से सिद्ध है। यही बात श्रीमद्भागवत के श्लोक में सिद्ध की गई है। जब ईश्वर के दर्शन और ईश्वर की कृपा से जीव का ही कर्मबंधन कट जाता है तब ईश्वर का कर्मबंधन में बंध कर पुण्य पाप भोगना नितान्त चण्डूखाने की गप्प या बुद्धि की मूर्खता है। ईश्वर कर्मबंधन में नहीं आना इस कारण वृन्दा के पातिव्रत भंग करने का पाप ईश्वर को नहीं लगा।

कोई कोई सज्जन कहते हैं कि विष्णु को शाप लगा। शाप भी तो कर्मबंधन है। इसके उत्तर में इतना कहना पर्याप्त है कि कर्म का फल कर्म प्रमाण से होता है और शाप इसके विपरीत होता है। बड़े भयंकर कर्म करने पर थोड़ा शाप और थोड़े पाप कर्म पर बहुत बड़ा शाप होता है। चित्रकेतु योगाभ्यास से समस्त सिद्धियों को पा गया था अतएव यह लब्धप्रतिष्ठ गिना जाता था। एक दिन यह एक सभा में गया उस सभा में ब्रह्मेन्द्र प्रभृति समस्त देवता विराजमान थे। महादेवजी भी दिगम्बर बन कर पार्वती को लेकर उस सभा में बैठे थे। महादेव को देख कर चित्रकेतु ने कहा—

एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ।
आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥१४॥

यह शंकर संसार का गुरु है और शरीरधारियों के लिये धर्म का वक्ता है ऐसा होकर के भी यह सभा में सभापति बन दिगम्बर स्त्रीसहित बैठा है। इस वाक्य को सुन कर पार्वती बोली—

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ।
यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अतएव तू आसुरी पापी योनि को प्राप्त हो जा जिससे बेटा तू फिर किसी महात्मा का अनादर नहीं करेगा।

यहां पर चित्रकेतु का अपराध बहुत न्यून था और जगदम्बा ने क्रोध में आकर शाप जो दिया उसके कारण चित्रकेतु को भयंकर आपत्ति में पड़ जाना पड़ा। पार्वती के शाप से ही चित्रकेतु वृत्रासुर बना। यह कथा श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कंध के सप्तदश अध्याय में लिखी है।

एक दिन विश्वसृज सत्र में दक्ष आये उनको देख कर समस्त देवता उठे किन्तु ब्रह्मा और रुद्र न उठे। ब्रह्मा की आज्ञा से दक्ष बैठ गया, शंकर को देख कर उसको बड़ा क्रोध आया। दक्ष बोला कि देवताओ तुम सब सुनो न तो मैं मत्सरता से कहता हूं और न अभिमान से कहता हूं किन्तु यह लाल लाल आँख करे जो निर्लज्ज शंकर बैठा है इसने सन्मार्ग का लोप कर दिया इसने हमारी कन्या को विवाहा है क्या यह उठ कर वाणी से भी हमारा सत्कार नहीं कर सकता था, इसने वेद की क्रिया का लोप कर दिया, यह अपवित्र है, मर्यादाओं का तोड़नेवाला है। हमने इसको बिना इच्छा के अपनी कन्या ऐसे दे दी जैसे शूद्र को वेद पढ़ा दे। यह प्रेतों में रहता है घोर प्रेत इसके साथ रहते हैं, यह पागल की तरह केशों को फैला कर कभी हंसता हुआ और कभी रोता हुआ घूमा करता है, यह मुर्दे की भस्म शरीर में लगाता है, मुर्दे की अस्थि शरीर में धारण करता है, इसका नाम तो शिव है पर सच पूछिये तो यह अशिव है, यह बेहोश है, बेहोश लोग ही इसको प्यारे हैं इत्यादि अनेक कटु शब्द शंकर को कहे और अन्त में शाप दे दिया कि इसको यज्ञभाग न मिले। शाप देते समय सब देवताओं ने दक्ष को रोका किन्तु किसी की न सुनी रुद्र को शाप दे दिया। अब भी दक्ष का क्रोध शान्त न हुआ अतएव वह अपने घर को चला गया। यह कथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध के द्वितीय अध्याय में लिखी है। दक्ष ने शंकर का अपराध किया और शंकर को ही शाप

दे दिया किन्तु शंकर ने उसको शाप नहीं दिया और कटु शब्दों को सह लिया अतएव शाप का सम्बन्ध कर्म से नहीं है क्रोध से है। यहां शंकर का भारी अपमान हुआ किन्तु शंकर ने हलका भी शाप नहीं दिया इससे सिद्ध हो गया कि हलके अपमान पर भारी शाप, भारी अपमान पर हलका शाप वा शापाभाव भी हो जाता है।

जिसको शाप दिया जावे उसको यदि क्रोध आ जाय तो वह भी शाप दे देता है इसके लिये श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध में दक्षयज्ञ विध्वंस देखना चाहिए जहां पर अनेक शापों के बदले में अनेक शाप हैं। शाप देनेवाला यदि प्रसन्न हो जावे तो शाप हलका हो जाता है या बिना भोगे बिलकुल ही चला जाता है इसके लिये इंद्र प्रभृति देव तथा मनुष्यों की आख्यायिकायें देखनी चाहिए। इन्द्र के सहस्रभग के सहस्रनेत्र हो गये और हलके शाप के लिये श्रीमद्भागवतके नवमस्कंध में सुद्युम्न की कथा देख लेनी चाहिए। सिद्ध हो गया कि शाप का संबंध कर्म से नहीं है किन्तु क्रोध से है अतएव वृन्दा के शाप से विष्णु का कर्मफल भोगना सिद्ध नहीं होता।

* रुद्रचरित्र *

लिंगवृद्धि।

(१०) किसी किसी सज्जन का कथन है कि एक समय महादेव का लिंग इतना बढ़ा कि उसका पता लगाने के लिये ऊपर को ब्रह्मा गये और नीचे को विष्णु गये तब भी लिंग का पता न लगा।

उत्तर—अज्ञ लोग शास्त्र में धँसते हैं किन्तु बुद्धि न होने के कारण कुछ का कुछ अर्थ कर बैठते हैं इस कारण से संदेह उत्पन्न हो जाता है इसी संदेह से ये लोग शास्त्रों को अमान्य, घृणित और अश्लील ठहरा देते हैं अतएव जनता को शास्त्र अरुचिकर हो जाते हैं। शिवपुराण की विद्येश्वरसंहिता के अध्याय चार से अध्याय नौ तक लिंगवेर की पूजा और कथा है। बुद्धि की अज्ञानता से अज्ञ लोगों ने लिंगवेर को पेशाब करने का लिंग समझा है इस भ्रान्ति से अनेक शंकायें पैदा हो गई हैं किन्तु शिवपुराण में मूत्रेन्द्रिय का कहीं पता ही नहीं वहां पर लिंग का जैसा स्वरूप है उसके श्लोक शिवपुराण से उद्धृत करके हम नीचे लिखते हैं पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें।

महानलस्तंभविभीषणाकृति-
र्बभूव तन्मध्यतले स निष्कलः ॥११॥

ते अस्त्रे चापि सज्वाले लोकसंहरणक्षमे ।
निपतेतुः क्षणेनैव ह्याविर्भूते महानले ॥१२॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं चित्रमस्त्रशान्तिकरं शुभम् ।
किमेतदद्भुताकारमित्यूचुश्च परस्परम् ॥१३॥
अतीन्द्रियमिदं स्तम्भमग्निरूपं किमुत्थितम् ।
अस्योर्ध्वमपि चाधश्च आवयोर्लक्ष्यमेवहि ॥ १४ ॥

अध्याय ७

विष्णु और ब्रह्मा का युद्ध हो रहा था विष्णु ने ब्रह्मा के मारने के लिये माहेश्वर अस्त्र उठाया इसको देख कर ब्रह्मा ने पाशुपत अस्त्र को उठाया इन दोनों अस्त्रों के तेज से जगत् व्याकुल हो गया, देवता घबड़ा कर शंकर की शरण गये यह कथा षष्ठ और सप्तमाध्याय में है। इन अस्त्रों के तेज को खाने के लिये शंकर ने ज्योतिर्मय-लिंग स्वरूप धारण किया उस स्वरूप का वर्णन करते हुये शिवपुराण में ऊपर के श्लोक लिखे गये हैं। इनका अर्थ है कि महाअग्नि के स्तंभ के समान महाभयंकर आकृति के समान उन दोनों के बीच में वह निर्गुण ब्रह्म स्थित हुये ॥ ११ ॥ वह लोकत्तय करने में समर्थ अस्त्र उस महाअग्नि के प्रकट होते ही क्षणमात्र में निपतित हो गये ॥ १२ ॥ यह अस्त्र शान्त होने का अद्भुत चित्र देख यह अद्भुत आकार क्या है ऐसा ब्रह्मा और विष्णु परस्पर कहने लगे ॥ १३ ॥ यह इंद्रिय अगोचर स्तंभ अग्नि-रूप सा क्या उठा है हम दोनों को इसका ऊपर और नीचे का भाग देखना चाहिये कि यह कहाँ से हुआ है ॥१४॥

इस कथा को आगे रख कई एक सज्जन यह कहते हैं कि महादेव की मूत्रेन्द्रिय इतनी बढ़ी कि जिसका पता लगाने के लिये नीचे को विष्णु और ऊपर को ब्रह्मा गये किन्तु उसका आदि अंत न पाया। विचारशील मनुष्य देखें कि यहाँ कोई मूत्रेंद्रिय का कहनेवाला शब्द है, कोई नहीं, इतना न होने पर भी ये बलात्कार अपनी तरफ से मूत्रेंद्रिय कल्पना करते हैं। ये सरासर नेत्रों में धूल झोंक रहे हैं॥

ज्योतिर्मय लिंग।

(११) कई एक सज्जनों का यह कहना है कि महादेव नंगे होकर हाथ में लिंग लेकर दारुवन में ऋषिपत्नियों के पास गये, ऋषियों ने शाप दे दिया, लिंग कट कर

गिर गया फिर उसको पार्वती ने अपनी योनि में धारण किया, आजकल जो शिव-लिंग पूजे जाते हैं, लिंग शिव की मूत्रेन्द्रिय है और जलहरी पार्वती की योनि है इसको पूजना निर्लज्जों का काम है।

उत्तर—पुराने कल्प में दारुवन में कुछ शिवभक्त ऋषि रहते थे वे त्रिकाल में शंकर का पूजन करते थे। एक दिन दोपहर का समय था वे समिधा लेने गये और महादेव उनकी परीक्षा के लिये दिगम्बर होकर हाथ में लिंग लेकर दारुवन में पहुंचे। शंकर के इस विकट रूप को देख कर ब्राह्मणों की स्त्रियां संकुचित हो गईं। इतने में ब्राह्मण आ गये। ब्राह्मणों ने इसको देखा और देख कर कहा कि तू भयंकर रूप धारण करके वेद मर्यादा का लोप करता है इस कारण तेरा यह लिंग पृथ्वी पर गिर पड़े। पृथ्वी पर गिरे हुए लिंग का तेज नीचे पाताल तक पहुंचा, पृथ्वी पर पहुंचा और ऊपर स्वर्ग तक पहुंच कर सबको भस्म करने लगा। दुःखित लोक, देवता, ऋषि, ब्रह्मा की शरण गये और यह सब हाल सुनाया। ब्रह्मा ने कहा कि तुमने शंकर का बड़ा अनादर किया है जब तक यह लिंग स्थिर न होगा संसार का कल्याण न होगा। अब तुम गिरिजा की आराधना करो वह योनिरूपा बने और इस लिंग को धारण करे। ऐसा करने पर लोगों ने दहाग्नि से शान्ति पाई। यह कथा कोटि रुद्र संहिता के बारहवें अध्याय में लिखी है।

इस कथा पर प्रथम शंका यह है कि रुद्र दारुवन में नग्न क्यों गये। इसका उत्तर यह समझिये कि एक दिन हम वृन्दावन की यात्रा कर रहे थे साथ में सहस्रों यात्री थे उनमें से दश पांच हमारे मित्र भी थे वे थोड़ा आगे निकल गये थे। आगे चल कर एक शंकर की मूर्ति आई। शंकर के एक हाथ में मूत्रेंद्रिय थी और दूसरे हाथ में जीभ थी। इस विलक्षण मूर्ति को देख कर हमारे मित्र खड़े हो गये इतने में हम भी पहुंचे शंकर के दर्शन किये और प्रणाम किया जल चढ़ा कर जब चलने लगे तब हमारे मित्रों ने कहा कि शास्त्री जी यह बड़ी विकट मूर्ति है हमने कहा कि बड़ी ज्ञानप्रद है मित्रों ने पूछा कि कैसे ? हमने कहा कि जो मनुष्य मूत्रेंद्रिय और जीभ को जीत लेता है वह शंकर बन जाता है यह सुन कर हमारे मित्र बड़े प्रसन्न हुये। वास्तव में शंकर ने जिह्वा और मूत्रेंदिय को उत्तम रीति से जीता है इस कारण शंकर सदा ही दिगम्बर रहते हैं केवल दारुवन में ही वे दिगम्बर नहीं आये हैं बड़ी बड़ी सभाओं में भी वे दिगम्बर रहते हैं शंकर प्रवृत्तिमार्ग के गुलाम नहीं हैं वे निवृत्तिमार्ग की पराकाष्ठा पर पहुंच गये हैं। निवृत्ति मार्गवालों को प्रकृति की सौंदर्य चमत्कृत रचना लुभा नहीं सकती उनके लिये जैसा लोहा वैसा सोना। उनके लिये पंचतत्व जनित समस्त पदार्थ एक तुल्य हैं न उनको कोई लुब्ध कर सकता है और न कोई क्षुब्ध कर सकता है। तत्वों के समस्त भेद उत्तम

रचनायें उनके आगे नटी प्रकृति की बाजीगरी है जो निवृत्तिमार्गवाले पुरुष की दृष्टि पड़ते ही अपनी चांचल्यता और अपने आकर्षण को खोबैठती है। जब निवृत्तिमार्गवालों के ऊपर प्रकृति का प्रभाव ही नहीं पड़ता तब उनके नग्न रहने में क्या दोष ? यदि कोई मनुष्य यह कहे कि लोकमर्यादा की रक्षा के लिये ही वस्त्रादि धारण करना अच्छा है तो हम यह कहेंगे कि जन्म जन्मान्तर से प्रवृत्ति के फंदे में पड़े हुये जीवों को निकाल कर निवृत्तिमार्ग में ले जाने के लिये निवृत्तिमार्गवाले मनुष्यों को नग्न ही रहना अच्छा है उनके आदर्श को देख कर विषयों के गुलाम जीव प्रवृत्तिमार्ग से निकल कर निवृत्तिमार्ग में जाने की इच्छा करेंगे। बस सिद्ध हो गया कि निवृत्तिमार्ग का अवलंबन करनेवाले शंकर का नग्न रहना दूषित नहीं है।

रही बात लिंग की। यहां पर अज्ञ लोग यह समझे हैं कि शंकर मूत्रेंद्रिय को हाथ में पकड़े थे और ऋषियों के शाप से वह मूत्रेन्द्रिय कट कर जमीन पर गिर पड़ी। लिंग शब्द ने इनको इस धोके में डाला है, ये समझते हैं कि लिंग नाम तो मूत्रेन्द्रिय का ही है इनका ऐसा समझना अज्ञता है। लिंग केवल मूत्रेन्द्रिय को नहीं कहते किन्तु पहिचानने के चिन्ह मात्र को कहते हैं प्रमाण देखिये कणाद मुनि वैशेषिक दर्शन में लिखते हैं कि—

विषाणी ककुद्मान्प्रान्ते बालधिस्सास्नावानिति गोत्वे दृष्टं लिंगम्॥

वै० द० अध्याय २ आन्हि० १ सू० ८

विषाण (सींग) ककुद (ऊंचा कंधा) पूंछ सींग के नीचे वाल सास्ना गले में लटकती खाल ये सब गोत्व जाति में लिंग हैं। और भी देखिये—

न च दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्टलिंगो वायुः

वै० द० अध्या० २ आन्हि० १ सू० ११

अग्निधूम के सदृश प्रत्यक्ष देखा हुआ स्पर्श वायु का लिंग नहीं किन्तु पृथ्वी जल तेज का लिंग है। और भी देखिये—

वायोर्वायुसम्मूर्च्छनंनानात्व लिंगम्।

वै० द० अ० २ आ० १ सू० १४

दो वायु या अनेक वायुओं का जो संयोग विशेष है वह वायु के अनेक होने का लिंग है।

इत्यादि वैशेषिक दर्शन में अनेक सूत्र आते हैं कि जिनमें लिंग पद का प्रयोग है क्या यहां पर मूत्रेन्द्रिय ली जाती है। अब जरा न्यायदर्शन पर भी एक दृष्टि डाल देखें महर्षि गौतम का सूत्र है कि—

आकृतिर्जातिलिंगाख्या

न्याय० द० अ० २ आ० २ सू० ७०

जाति के लिंग का नाम आकृति है। और भी—

लिंगतो ग्रहणान्नानुपलब्धिः।

न्याय० द० अ० ३ आ० २ सू० १६

लिंग द्वारा उत्पत्ति विनाश कारण के पाये जाने से उसकी उपलब्धि का अभाव नहीं हो सकता। एक सूत्र महर्षि कपिलदेवजी का भी देखो—

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिंगात्।

सां० द० अ० १ सू० १३७

लिंग जो महतत्वादि हैं उनसे प्रकृति अव्यक्त सूक्ष्म है।

ऊपर के प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि मूत्रेन्द्रिय से अन्य पदार्थों को भी लिंग कहते हैं फिर वह कौन नियम है जिस नियम में बंध कर लिंग शब्द को देखते ही मूत्रेन्द्रिय अर्थ कर दिया जाता है फिर ऋषियों ने जो शाप दिया है कि तेरा लिंग गिर जाय यह शाप सिद्ध करता है कि यह जो हाथ में लिंग था यह मूत्रेन्द्रिय से भिन्न था क्योंकि शाप यह है कि आपका लिंग गिर जाय यदि मूत्रेन्द्रिय को शाप होता तो ऐसा शाप दिया जाता कि तेरा लिंग कट कर गिर जाय क्योंकि मूत्रेन्द्रिय शरीर में लगी रहती है और बिना कटे वह कभी गिर नहीं सकती देखिये—

ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवीतले ॥१७॥
इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगं च पतितं क्षणात्।
अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः ॥१८॥

अ० १२

इस कारण तुम्हारा यह लिंग भूमि पर गिर पड़े ॥ १७॥ सूतजी बोले कि ऐसा उन ऋषियों के कहने पर उन अवधूत अद्भुत रूपधारी शिव का वह लिंग उसी क्षण गिर पड़ा ॥१८॥

मूत्रेन्द्रिय बिना कटे गिर नहीं सकती और शाप में बिना कटे गिरना बतलाया है इससे सिद्ध हुआ कि यह लिंग मूत्रेन्द्रिय से भिन्न कोई पदार्थ था और वह शंकर के हाथ से पृथ्वी पर गिर गया।

जहां पर महादेव के लिंगों की गणना और पूजन कहा है वहां पर मूत्रेन्द्रिय को न

तो लिंग बतलाया है और न उसका पूजना बतलाया है फिर अपनी तरफ से लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय क्यों बतलाया जाता है। महादेव के लिंगों को देखिये—

लिंगानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः।
तदेव लिंगं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् ॥२७॥
सूक्ष्म प्रणावरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्।
स्थूललिंगं हि सकलं तत्पंचाक्षरमुच्यते ॥२८॥
तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्षप्रदे उभे।
पौरुषप्रकृतिभूतानि लिंगानि सुवहूनि च ॥२९॥
तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः।
भूविकाराणि लिंगानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः ॥३०॥
स्वयंभूलिंगं प्रथमं विन्दुलिंगं द्वितीयकम्।
प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिंगं तु पंचमम् ॥३१॥
देवर्षितपसा तुष्टः सान्निध्यार्थं तु तत्र वै।
पृथिव्यंतर्गतः शर्वो वीजं वै नादरूपतः ॥३२॥
स्थावरांकुरवद्भूमिमुद्भिद्यव्यक्त एव सः।
स्वयंभूतं जातमिति स्वयंभूरिति तं विदुः ॥३३॥
तल्लिंगपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्द्धते।
सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थंडिलेऽपिवा ॥३४॥
स्वहस्ताल्लिखितं लिंगं शुद्धप्रणावमंत्रकम्।
यंत्रलिंगं समालिख्य प्रतिष्ठावाहनं चरेत् ॥३५॥
विंदुनादमयं लिंगं स्थावरं जंगमं च यत्।
भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः ॥३६॥

विद्येश्वर सं० अ० १८

सूतजी बोले हे ब्राह्मणो! सुनो, हम लिंगादि का क्रम से पूजा विधान कहते हैं प्रथम सब कामनाओं का देनेहारा प्रणवलिंग है॥ २७॥ वह सूक्ष्म प्रणवरूप सूक्ष्मरूप निष्कल है और स्थूललिंग कलायुक्त है उसी को पंचाक्षर कहते हैं॥ २८॥ उन्हीं की

पूजा का नाम तप है यह दोनों साक्षात्मोक्ष के देनेहारे हैं और पुरुषार्थ से प्रकृति के बनाये हुये बहुत से लिंग हैं ॥२९॥ उनको विस्तार से शिवजी ही जानते हैं दूसरा नहीं परन्तु पृथ्वी विकार के लिंग मैं मति अनुसार तुमसे कहता हूं ॥ ३० ॥ स्वयंभूलिंग १ विन्दुलिंग २ प्रतिष्ठा किये लिंग ३ चरलिंग ४ गुरुलिंग ५ ॥ ३१ ॥ देवता और ऋषियों के तप से संतुष्ट होकर उनके निकट प्राप्त होने को पृथ्वी के अन्तर्गत बीज और नाद रूप से रहनेहारे शिवजी ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार अंकुर पृथ्वी को भेद कर निकलते हैं इसी प्रकार पृथ्वी के अंतर से निकले हुये लिंग को स्वयंभूलिंग कहते हैं ॥ ३३ ॥ उस लिंग की पूजा करने से स्वयं ज्ञान की वृद्धि होती है, सुवर्ण चांदी पृथ्वी अथवा वेदिका में ॥ ३४ ॥ अपने हाथ से लिखे हुये शुद्ध प्रणवयुक्त मंत्र को और लिंग को यंत्र पर लिख कर उसकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे ॥ ३५ ॥ यही बिंदुनादमय लिंग स्थावर और जंगम रूप है भावना से ही इसमें निःसंदेह शिव का दर्शन होना है ॥ १६ ॥

बस शिवपुराण में जितने लिंग गिनवाये हैं उनमें मूत्रेन्द्रिय नहीं आया है फिर शास्त्र विरुद्ध एक मानसिक कल्पना खड़ी करके लिंग शब्द से मूत्रेन्द्रिय का ग्रहण करना इसको मूर्खता न कहें तो और क्या कहें । जितने लिंग ऊपर गिनवाये हैं संसार में उन्हीं का पूजन होता है मूत्रेंद्रिय का कहीं नहीं । लिंग को मूत्रेंद्रिय बतानेवाले शास्त्र-ज्ञान से शून्य हैं अतएव उनका कथन कुछ भी गौरव नहीं रखता ।

आप कहेंगे तो फिर यह लिंग क्या था जो महादेव के हाथ में था, यह निष्कल तेजपुंज था । शिवपुराण के टीकाकार हमारे पूज्य मित्र स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र इस अध्याय के टीका में कई बार इस लिंग को ज्योतिर्मय लिंग लिख गये हैं। जब यह भूमि में गिर पड़ा तो इसमें तीन क्रियायें हुईं। बढ़ कर स्वर्ग तक गया, नीचे को पाताल तक गया, संसार में फैला और लोकों को भस्म करने लगा। ये तीनों ही क्रियायें मूत्रेन्द्रिय में नहीं होतीं, पृथ्वी जल वायु में नहीं होतीं केवल तेज में होती हैं अतएव यह निष्कल तेजपुंज ज्योतिर्मय लिंग था इस बात को मूल के ही श्लोक कह रहे हैं।

अब यह प्रश्न होगा कि यदि यह लिंग कुछ अच्छी चीज थी तो फिर ऋषियों ने इसके पतन होने का शाप क्यों दिया। ऋषियों को जो क्रोध आया वह क्यों आया इसको शिवपुराण इस प्रकार लिखता है—

तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोऽयं कोयं तथाऽब्रुवन् ।
समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमायाविमोहिताः ॥१५॥

यदा च नोक्तवान्किंचित्सोवधूतो दिगम्बरः ।
ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः ॥१६॥
त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्गविलोपियत् ॥१७॥

अ० १२

उस समय दुःखित हुये शिवजी की माया से मोहित हो वे ऋषि आपस में बोले कि यह कौन है यह कौन है इस प्रकार कहने लगे ॥१५॥ जिस समय वह अवधूत दिगंबर कुछ न बोले तो वे परमऋषि उन भयंकर ऋषि से कहने लगे ॥१६॥ तुम वेदमार्ग को लोप करनेवाले विरुद्ध कार्य को करते हो ॥१७॥

शंकर नग्न है। नग्न रहना वेद में निषिद्ध लिखा है। वेद मर्यादा तोड़ने से ऋषियों को क्रोध आया है और वास्तव में शंकर वेद विधि से बाहर है इनको न वेद की विधि है और न वेद का निषेध है। जब तक प्रवृत्तिमार्ग में जीव रहता है तब तक वेद विधि में रहता है और जब वह निवृत्ति में चला जाता है तब वह वेद के विधिनिषेध से बाहर हो जाता है। इसी को भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि "त्रैगुण्यविषया वेदा नैस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" अर्जुन, वेद त्रैगुण्य विषयक हैं और तू नैस्त्रैगुण्य हो जा। सिद्ध हो गया कि निवृत्ति में गया हुआ जीव विधिनिषेध से बाहर होता है और ईश्वर सर्वदा ही विधिनिषेध से बाहर होता है। ऋषियों ने इस बात को नहीं जाना कि ये विधिनिषेध से बाहर साक्षात् शंकर हैं इसी के ऊपर लिखा है कि "शिवमाया विमोहिताः"। शाप का कारण तो हमने बतला दिया। जिसको शाप देते हैं उसकी उत्तम चीज को नष्ट किया करते हैं, यह नियम आपको समस्त शापों में मिलेगा। जब जय विजय को शाप दिया तो उनकी सामीप्यमोक्ष को नष्ट किया और जब दक्ष ने शंकर को शाप दिया तो शाप में यज्ञभाग का निषेध किया। इसी प्रकार यहां पर शंकर के पास उत्तम वस्तु क्या थी हस्त में ज्योतिर्मयलिंग, उसी के पतन का शाप दिया। इन ऋषियों ने और देवताओं ने इसको अभी तक शंकर नहीं जाना है अतएव ये ब्रह्मा को शरण गये यह बाईस के श्लोक में कहा है। ब्रह्मा ने ऋषियों से कहा कि तुमने बुरा किया अतिथि शिव का अपमान किया अब जब तक यह लिंग स्थिर न होगा तब तक संसार को शान्ति नहीं मिलेगी इस कारण तुम पार्वती की प्रार्थना करो पार्वती योनिरूप धारण करे तब यह लिंग स्थिर होगा। ऐसा ही किया गया। पार्वती ने योनिस्वरूप धारण किया यह तेज रूपी लिंग उसी में विलीन हो गया। यहां योनि करके स्त्रियों का मूत्रस्थान नहीं लिया जाता किन्तु आधार शक्ति का नाम योनि है। शास्त्र ने ब्रह्म को संसार की योनि बतलाया है तो क्या संसार ब्रह्म के जरिये से

पेशाब करता है। ब्रह्म को शास्त्र की योनि बतलाया गया है तो क्या ब्रह्म के जरिये से शास्त्र मूतता है अतएव यहां पर योनि स्त्रीमूत्रेंन्द्रिय का वाचक नहीं है। शिव लिंग को पार्वती ने योनि में धारण नहीं किया किन्तु पार्वती ही योनि (आधार) बन गई और पार्वती के प्रत्येक अंश में वह तेजोमय लिंग व्याप्त हो गया। तेज का यह नियम है कि वह योनि में ही स्थिर रहता है योनि से बाहर जाकर यदि वह बिखर जावे तो फिर संसार को भस्म कर देता है। इसका उदाहरण बिजली है। जिस समय बादल से बिजली निकल भागती है और जिस शरीर या वृक्ष या मकान पर गिर जाती है उसको भस्म कर डालती है यदि पृथ्वी में गिर जावे तो फिर वह तेज स्थिर हो जाता है क्योंकि पृथ्वी उसकी योनि है। इसी प्रकार बादल में समझ लीजिये। यह तेज शंकर का असली रूप था उसका ज्ञान करवाने के लिये शंकर आये थे इसी तेजपुंज को वेद में प्राण कहा है। प्राण और रयि ये दोनों मिल कर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति करते हैं। प्राण ब्रह्म का रूप है और रयि प्रकृति का रूप है। तेजपुंज होने के कारण वेद ने सूर्य को प्राण कहा है "आदित्यो ह वै प्राणः प्रश्नोपनिषत्"। शास्त्र ब्रह्म को संसार की योनि कहता है, देखिये—

यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं
विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

मुंडकोपनिषत्।

सिद्ध हो गया कि यहां पर न तो लिंग नाम पुरुष की मूत्रेंद्रिय का है और न योनि नाम स्त्री की मूत्रेंद्रिय का है जबर्दस्ती खैंचातानी करके मूर्खों के बहकाने के लिये अनुचित अर्थ किया जाता है जो विद्वानों के आगे कपूर की भांति उड़ जाता है।

* वैश्यनाथावतार *

(१२) किसी किसी सज्जन का यह कथन है कि भगवान् शंकर ने रण्डीबाजी की ऐसे अधमचरित्रवाले कभी अवतार कहला सकते हैं।

उत्तर—यह कथा इस प्रकार है। नन्दीग्राम में एक महानंदा नाम की वेश्या थी वह अनन्य शंकरभक्त थी उसकी धर्मपरीक्षा करने के लिये शंकर वैश्यनाथावतार धारण करके आये, शंकर के हाथ में बहुमूल्य रत्नजड़ित एक कंकण था, वेश्या ने उसको मांगा, शंकर ने वेश्या को दे दिया, शंकर ने कहा कि इसका मूल्य क्या दोगी स्त्री ने कहा कि हमतो व्यभिचारिणी वेश्या हैं कीमत क्या दे सकती है, मैं तीन दिन

आपकी स्त्री बनूंगी। शङ्कर के पास रत्नजड़ित एक लिंग था वह उसको दे दिया और कहा कि इसको अच्छी जगह रक्खो यह हम को बड़ा प्यारा है। लिङ्ग नाट्यघर में रख दिया गया, रात को दोनों सोये, मकान में आग लग गई, अग्नि से उस लिङ्ग के टुकड़े हो गये, वैश्यनाथ को दुःख हुआ, उन्होंने मरना ठान लिया, चिता बना कर आग देकर वैश्यनाथ अग्नि में कूद गये। महानंदा ने सोचा कि तुम तीन दिन के लिये इसकी स्त्री बनी हो अतएव इसके साथ जल मरना यह धर्म है, वह सब धन ब्राह्मणों को दान करके संबंधियों के रोकने पर भी चिता में कूदने के लिये चिता की परिक्रमा करने लगी, जब कूदने लगी तब चिता में से शङ्कर प्रकट हो गये। यह कथा शिवपुराणान्तर्गत शतरुद्रसंहिता के २६ छब्बीसवें अध्याय में है।

इस कथा में विषय का कहीं भी वर्णन नहीं है। शङ्कर वेश्या के साथ पलंग पर सोये थे कि इतने में आग लग गई। यहां पर सोने मात्र से व्यभिचार मानते हैं। वास्तव में व्यभिचार सिद्ध करनेवाला एक भी अक्षर इस कथा में नहीं है। यदि कहो कि कंकण दिया क्यों गया ? परीक्षा के लिये। और परीक्षा में महानंदा अपने धर्म से पतित नहीं हुई तथा रुद्र भी उस पर प्रसन्न हो गये। आजकल भारतवर्ष में मुसलमान वेश्यायें हैं किन्तु यह मुसलमान नहीं थी, आज भी कमायूं में हिन्दु वेश्यायें मौजूद हैं, यह भी हिन्दु वेश्या थी इसी कारण से शङ्करभक्त थी।

❋ शिवमोहनीचरित्र ❋

(१३) कई एक सज्जन कहते हैं कि मोहनी पर शिव आसक्त हो गये यह चरित्र दूषित है।

उत्तर—मोहनी रूप धारण करके विष्णु ने देवताओं को अमृत पिला दिया और दैत्य मोहित होकर कोरे रह गये। एक दिन शंकर ने विष्णु से कहा कि तुमने कैसा विकटरूप धारण किया था जिससे समस्त दैत्य मोहे गये उस रूप को हम देखना चाहते हैं। उसी समय मोहनी रूप धारण करके विष्णु शंकर के आगे से निकल गये। दिगम्बर शंकर पार्वती के निषेध करने पर भी उसके पीछे भागे और मोहित होकर पकड़ने को दौड़े, एक बार पकड़ भी ली किन्तु वह छुड़ा गई उसके पीछे भागते हुये शंकर का वीर्य गिरता गया जो चांदी सोने की खानें हो गया अंत में शंकर ने मोहनी को जान लिया, लज्जित होकर लौट आये यह आख्यायिका श्रीमद्भागवत स्कंध आठ अध्याय १२ में लिखी है।

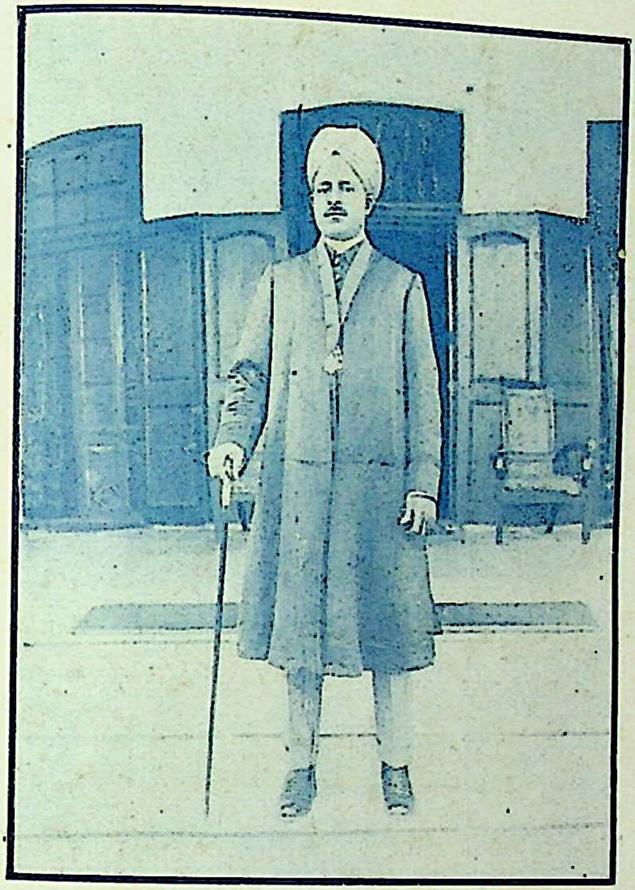
प्रायः ईश्वरचरित्र जनों के कल्याण के लिये हुआ करते हैं उन चरित्रों से मनुष्य कुछ शिक्षा लें और अपना सुधार करें। ये चरित्र दो प्रकार के होते हैं प्रथम मर्यादानुकूल और द्वितीय मर्यादा विरुद्ध। प्रभु राम के अवतार में जन कल्याणार्थ मर्यादानुकूल शिक्षा-दायक चरित्र आते हैं जैसे सीताहरण पर राम का बेहोश हो जाना और वृक्षों से सीता का पता पूछना। लक्ष्मण के शक्ति लग जाने पर अत्यंत रुदन करना। भगवान् राम को सीता का शोक नहीं है किन्तु पतिपत्नी धर्ममर्यादा संसार को दिखलाने के लिये बनावटी बेहोश हुये हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम ने जो दुःख दिखलाया है वह भ्रातृप्रेम की मर्यादा है इन मर्यादाओं से शिक्षा लेकर मनुष्य आदर्श पर पहुंचते हैं। मर्यादाविरुद्धचरित्र भी संसार के कल्याण के लिये होते हैं। भगवान् शंकर ने काम का विजय किया है, काम इनको सता नहीं सकता किन्तु मोहनी के ऊपर आसक्त होकर पशुओं कैसा आचरण करना यह लोकशिक्षा के लिये है। संसार समझ ले कि कामदेव के विजय करनेवाले शंकर भी परस्त्री पर आसक्त होकर मर्यादा को छोड़ गये तो फिर साधारणजन की नहीं मालूम क्या दुर्गति हो इसको हृदय में रख सांसारिक मनुष्य स्त्रियों के पेंच से बचें। वास्तविक में स्त्री के ऊपर मोहित होना शंकर में नहीं घट सकता क्योंकि शंकर आत्माराम हैं "नहि स्वात्मारामं विषय मृगतृष्णा-भ्रमयति"। शास्त्र के इस अभिप्राय को न समझ कर जो शंका करते हैं वे नितान्त मूर्ख हैं।

इतिश्रीकालूरामरचितपुराणवर्मणीश्वरचरित्रपादः सप्तमः।

श्रीसनातनधर्म्म-संरक्षक, वैश्य-कुल-कमल-दिवाकर,

रायबहादुर श्री १०५ बाबू दिलीपनारायणसिंहजी

रईस-मुंगेर।



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

हिन्दुओं को अपने गौरव की रक्षा करनी चाहिये। यह आज तक नहीं हुआ है कि कोई जाति अपने गौरव को अपने आप नष्ट करे। ऐसा करनेवाला अयोग्य है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से हिन्दू अपने गौरव को मिटा रहे हैं, इस विषय में लार्ड मेकाले लिखते हैं कि—English education would train up a class of persons, Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals, and in intellect.

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

* श्रीगणेशाय नमः *

ईश्वरार्चापादः

जयन्ति वाणासुरमौलिलालिता
दशास्यचूड़ामणिचक्रचुंविता ।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो
भवच्छिदे त्र्यम्बकपादपांसवः ॥

जब ईश्वरचरित्र में पराजय हो जाते हैं तब हुज्जतबाज सज्जन कहने लगते हैं कि इन पुराणों में पाषाण काष्ठादिकों का पूजन ही ईश्वरपूजन और वही मनुष्य शरीर का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया है (१) मूर्तिपूजन जैनियों से चला है (२) वेद में मूर्तिपूजन का खंडन है (३) वेद ने मूर्तिपूजा करना नहीं बतलाया (४) कोई तर्क या दलील से मूर्तिपूजन सिद्ध नहीं कर सकता (५) पुराणों में कहीं कहीं मूर्तिपूजा का खण्डन भी है इस मूर्तिपूजा के मानने से पुराणकर्ताओं की अनभिज्ञता प्रकट होती है ।

* जैनियों से मूर्तिपूजा *

इतिहास के देखने से यह सिद्ध हो जाता है कि मूर्तिपूजा अनादिकाल से चली आती है फिर हम कैसे मान लें कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली है। द्वापर में मूर्तिपूजा होती थी। त्रेता में मूर्तिपूजा प्रचलित थी। सत्ययुग में संसार मूर्तिपूजन करता था। हम युग क्रम के अनुसार मूर्तिपूजा के प्रमाण इतिहास से लिखते हैं पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें।

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो
गजाह्वयातीर्थपदः पदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां
स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥
पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुंजे
ष्वपंकतोयेषु सरित्सरस्सु ।

अनंतलिंगैः समलंकृतेषु
चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥
गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाप्लुतोधः शयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
वृतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥
इत्थं वृजन्भारतमेव वर्षं
कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ।
तावच्छशास क्षितिमेकचक्रा
मेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥
तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं
वनं यथा वेणुजवन्हिसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोच-
न्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥
तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च-
पृथो रथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य
यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥
अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः
कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यंग मुख्यांकितमंदिराणि
यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥२३॥

श्रीमद्भा० स्कं० ३ अ० १

कौरवों के पुण्य से प्राप्त हुये वह विदुरजी हस्तिनापुर से बाहर जाकर पुण्यकर्म करना चाहिये ऐसी इच्छा से भूतल पर ब्रह्म रुद्रादि अनंतमूर्ति धारण करनेवाले भगवान् जिस जिस स्थान में रहे हैं तिन तीर्थपाद विष्णु भगवान् के पवित्रक्षेत्रों में यात्रा

करने को चल दिये ॥१७॥ विष्णु भगवान् की मूर्तियों से शोभायमान नगर पर्वत कुंज (लता आदि से छाया हुआ स्थान) स्वच्छ जल की नदियें और सरोवर तीर्थ तथा क्षेत्रों में वह विदुरजी इकले ही विचरने लगे ॥१८॥ इस प्रकार विचरनेवाले तिन विदुरजी ने एकान्त में पवित्र अन्न भोजन करना, प्रत्येक तीर्थ में स्नान करना, पृथ्वी पर शयन करना, शरीर को दबवाना तथा तेल मलना आदि संस्कारों को त्यागना, वृक्षों की छाल आदि ओढ़ना, किसी को भी अपना परिचय न देना इत्यादि श्रीहरि को प्रसन्न करनेवाले अनेकों व्रत धारण किये ॥१९॥ वह विदुरजी इस प्रकार भरतखंड में तीर्थयात्रा करते करते कितने ही काल के अनंतर जब प्रभासक्षेत्र में जाकर पहुंचे इतने समय में ही श्रीकृष्णजी की सहायता से धर्मराज एकचक्र और एकछत्र पृथ्वी का राज्य करने लगे ॥२०॥ इधर तिस प्रभासक्षेत्र में पहुंच कर विदुरजी ने बांसों के परस्पर घिसने से उत्पन्न हुई अग्नि करके जैसे वन भस्म हो जाता है तैसे परस्पर की स्पर्धा से कौरवों का नाश हो गया यह वृत्तान्त सुना तदनन्तर वह विदुरजी कौरवों का शोक करते हुये मौन धारण करे पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी की ओर को चल दिये ॥२१॥ और उन्होंने तिस नदी के तट पर के त्रिततीर्थ, शुक्रतीर्थ, मनुतीर्थ, पृथुतीर्थ, अग्नितीर्थ, असिततीर्थ, वायुतीर्थ, गोतीर्थ, गुहतीर्थ और श्राद्धदेवतीर्थ इन ग्यारह प्रसिद्ध तीर्थों का क्रम से सेवन किया ॥२२॥ और तहां अन्यऋषि तथा देवताओं के बनाये हुये जिनके शिखरों पर के सुवर्ण के कलसों पर चक्रों की मूर्तियें शोभा दे रही हैं ऐसे अनेकों विष्णु भगवान् के मंदिर तिन विदुरजी ने देखे जिन मंदिरों के शिखरों पर विराजमान चक्रों के दर्शन से दूर रहनेवाले पुरुषों को भी बारंबार श्रीकृष्ण भगवान् का स्मरण होता है ॥२३॥

❋ त्रेतायुग ❋

ऊपर द्वापरयुग का उदाहरण दिया है त्रेतायुग के उदाहरण नीचे देखिये—

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिंगं तत्र तत्र स्म नीयते ॥
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिंगं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गंधाढ्यैः पुष्पैश्चागुरुगंधिभिः ॥

वाल्मीकि रा०

राक्षसों का राजा रावण जहां जहां जाता था सुवर्ण की मूर्ति साथ ले जाता था ।

रेत की वेदो बना कर उस मूर्ति को स्थापित करता फिर उत्तमगंधवाले पुष्पादि से उस मूर्ति का पूजन करता था॥ त्रेता में रघु, दलीप, अज, दशरथ, प्रभु राम आदि समस्त नरेन्द्रों ने अश्वमेधादि यज्ञं की हैं और यज्ञों में प्रजापति महावीर की मूर्ति का पूजन आवश्यकीय है जिसको यजुर्वेद माध्यंदिनी शाखा और शतपथ ब्राह्मण, कात्यायनिसूत्र ने लिखा है अतएव यह मानना पड़ेगा कि त्रेत्रा में भी मूर्तिपूजन होता था।

सत्ययुग

इस वर्तमान "श्वेतवाराह कल्प" में वर्तमान कलियुग २८वां युग है इसको सभी विद्वान् जानते हैं इसके आरंभ में जो सत्ययुग था जिसके बाद ६ सत्ययुग और बीत चुके उसमें भी मूर्तिपूजन होता था उस समय में केवल ब्राह्मण ही मूर्तिपूजन नहीं करते थे किन्तु समस्त वर्ण करते थे मामूली ही पुरुष नहीं करते थे किन्तु बड़े बड़े सम्राट् भी करते थे। हम उस पुरुष का उदाहरण देते हैं कि जो उस समय चक्रवर्ती राजा था, पढ़िये-

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥१५॥
मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् ।
विद्वान्विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ॥१६॥
वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्ठवत्स्मृतम् ॥१७॥
स वै मनः कृष्णपदारविंदयो-
र्वचांसि वैकुंठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मंदिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥१८॥
मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेंगसंगमम् ।
घ्राणं च तत्पाद सरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥१९॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे
शिरो हृषीकेशपदाभिवंदने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥२०॥
एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥२१॥

श्रीमद्भा० स्कं० ९ अ० ४

भाग्यशाली महाराज अंबरीष सप्तद्वीपवाली पृथ्वी का राज्य पाकर और अतुल अव्यय विभव और ऐश्वर्य को पाकर ॥ १५ ॥ जो संपत्ति मनुष्यों को मिलना दुर्लभ है इसको भी स्वप्न के सदृश मानता था क्योंकि इस वैभव में लिप्त होकर पुरुष उन्नति के बदले अवनति करता है राजा यह समझता था कि जब तक मोक्ष न होगी शान्ति न मिलेगी ॥ १६ ॥ वह राजा वासुदेव भगवान् और उसके भक्त तथा सज्जन लोगों में उत्तम भक्ति को पाकर इस विश्व को ऐसा समझता था कि यह संसार पत्थर का ढेला है जिस प्रकार पत्थर लोहे का ढेला कुछ काम नहीं आता वैसे ही आत्मोन्नति में ऐश्वर्यमय विश्व भी कोई काम नहीं देता ॥ १७ ॥ उस राजा ने अपने मन को भगवान् कृष्ण के चरणारविंद में और वाणी को उनके गुण वर्णन में और अपने करों को भगवान् के मंदिर झाड़ने में और अपनी श्रवणशक्ति को अर्थात् कानों को हरि की कथा सुनने में ॥ १८ ॥ अपनी दृष्टि को मुकुंद भगवान् के लिंग (मूर्ति) में और अपने शरीर को ईश्वर के भक्तों की सेवा में और अपनी घ्राणेंद्रिय नाक को भगवान् के चरण की तुलसी को सूंघने में लगा दिया ॥ १९ ॥ पैरों को भगवान् के क्षेत्र में चलने को और शिर को भगवान् के चरणारविंद की बंदना को और अपनी इच्छा को शरीरपूर्ति की इच्छा से हटा कर भगवान् के दास्यभाव में लगा दिया इंद्रियों से कहा कि यदि तुम अपने अपने विषय में लगना चाहती हो तो इस प्रकार लगो राजा का भाव ऐसा हो गया कि जैसा उत्तम श्रेणी के भक्त का होता है ॥ २० ॥ इस प्रकार सर्वदा ईश्वर की भक्ति में लगा हुआ राजा भगवान् की अनन्यभक्ति को प्राप्त होकर पृथ्वी का शासन करता था ॥ २१ ॥

अब इससे भी पहिले लोगों ने मूर्तिपूजन किया है इस बात को दिखलाते हैं ।

ध्रुवजी महाराज उत्तानपाद के पुत्र थे वे सौतेली माता की वाणी में विद्ध होकर दुःखित हुये और पांच वर्ष की अवस्था में ही घर से निकल वृन्दावन आये हम आपको यह दिखलाना चाहते हैं कि उन्होंने वृन्दावन में क्या किया, आगे पढ़िये—

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीं ।
समाहितः पर्यचरदृश्यादेशेन पूरुषम् ॥७१॥
त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ।
आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥७२॥
द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ।
तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥७३॥
तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ।
अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥७४॥
चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ।
वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥७५॥
पंचमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ।
ध्यायन्ब्रह्मपदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥
सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ।
ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥७७॥

श्रीमद्भा० स्कं० ४ अ० ८

इधर ध्रुवजी ने मधुवन में जाकर यमुना में स्नान किया और जिस रात्रि में वहां पहुंचे थे उसी रात्रि में देह की शुद्धि के निमित्त उपवास करके एकाग्रचित्त हो नारदजी के उपदेश के अनुसार चित्त लगा कर भगवान् की पूजा करी ॥ ७१ ॥ फिर तीन तीन दिन उपवास करके चौथे दिन शरीर के निर्वाह के योग्य कैथा और बेर खाकर उन ध्रुवजी ने श्रीहरि की आराधना करते हुये एक मास बिता दिया ॥ ७२ ॥ तथा दूसरे महीने में छठे छठे दिन वृक्षों से गिरे हुये पत्ते तृण आदि के भक्षण से देह निर्वाह करके तिन ध्रुवजी ने व्यापक प्रभु की आराधना करी ॥ ७३ ॥ तीसरे मास में नवें नवें दिन शरीर के निर्वाह के निमित्त केवल जल ही पीकर उन ध्रुवजी ने समाधि के द्वारा उत्तम कीर्ति भगवान् की आराधना करी ॥ ७४ ॥ चौथे महीने में बारहवें दिन एक समय वायु

का भक्षण करके प्राणायाम से श्वास को वश में कर हृदय में श्रीहरि का ध्यान करते हुये शरीर को धारण करा इस प्रकार ध्रुवजी ने हर मास में तपस्या की वृद्धि और भोजन की न्यूनता (कमी) करी ॥ ७५ ॥ फिर पांचवां मास लगने पर वह राजकुमार ध्रुवजी प्राणवायु को जीत कर ब्रह्म का ध्यान करते हुये एक चरण से खंभे के समान निश्चल खड़े हुये ॥ ७६ ॥ फिर शब्द आदि विषय और इंद्रियें जिसमें रहती हैं ऐसे अपने मन को सकल पदार्थों से हटा कर तहां ही भगवान् के स्वरूप का (ब्रह्म का) ध्यान करने वाले तिस बालक ने ब्रह्म वस्तु से भिन्न कुछ नहीं देखा ॥ ७७ ॥

ऊपर के लिखे हुये प्रकरण और इनसे भिन्न ऐसे ही सैकड़ों प्रकरणों को देख कर कोई भी विचारशील मनुष्य इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि मूर्तिपूजन का आरंभ जैनियों से हुआ है या जैन धार्मिक सज्जनों ने मूर्तिपूजन संसार में चलाया है।

※ वेद में मूर्तिपूजन का निषेध छल ※

हमने यह दिखला दिया कि मूर्तिपूजन जैनियों से नहीं चला किन्तु सृष्टि के आरंभ से ही चला आता है इसमें इतिहास साक्षी है। वेद में मूर्तिपूजन का निषेध करनेवाले सज्जन जिस मंत्र को प्रमाण में देते हैं वह यह है—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याᳪरताः ॥

यजु० अ० ४० मं० ९

जो संभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिर के महा क्लेश भोगते हैं।

इस मंत्र का जो यह अर्थ किया गया है जान बूझ कर अर्थ बिगाड़ा गया है (१) तो 'ब्रह्म के स्थान में' इतनी इबारत अपनी तरफ से मिलाई है (२) असंभूति का अर्थ प्रकृति किया है जो वेद विरुद्ध है क्योंकि वेद प्रकृति को अनादि नहीं मानता, वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" मानता है, वेद का सिद्धान्त है कि इस संसार का उपादान कारण उत्पन्न होने की भूमि ब्रह्म है। वेद कहता है कि जिस

समय यह सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी उस समय प्रकृति और परमाणु आदि कुछ भी वस्तु नहीं थी केवल ब्रह्म मात्र था।

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

ऋ० मं० १० अ० ११ सू० १२९

(तदानीं) महाप्रलय काल में (असत्) अपरामाया (न) नहीं थी (सत) जीव (नो) नहीं (आसीत्) था (रजः) रजोगुण (न) नहीं (आसीत्) था (यत्) जो (व्योम) आकाश तमोगुण (अपरः) सत्वगुण (नो) नहीं था (कुहकस्य) इंद्रजाल रूप (शर्मन्) ब्रह्माण्ड के चारों ओर जो (आवरीवः) तत्वसमूह का आवरण होता है (तत् किं) "न किमप्यासीत्" वह भी नहीं था (गहनं गभीरम्) गहन गंभीर (अम्भः) जल (किम् आसीत्) क्या था अर्थात् नहीं था।

सिद्ध हो गया कि प्रकृति अनादि नहीं है। कई एक सज्जनों का कथन है कि न्याय तथा सांख्य और आधुनिक साइंस प्रकृति को अनादि मानते हैं, प्रकृति अनादि कैसे नहीं। इसका उत्तर यह है कि आधुनिक साइंस और न्यायशास्त्र ये दोनों ही प्रकृति को अनादि नहीं मानते किन्तु प्रकृतिजन्य परमाणुओं को अनादि मानते हैं केवल सांख्य ही प्रकृति को अनादि मानता है ये तीनों हो व्यवहारिक सत्ता के प्रदर्शक हैं। परमार्थिक सत्ता में वेद ने स्वतः कह दिया कि प्रकृति अनादि नहीं है। जब परमार्थिक सत्ता में प्रकृति अनादि नहीं तो फिर प्रकृति को अनादि कैसे कह सकते हैं (२) आधुनिक साइंस, न्यायदर्शन और सांख्य, वेद पर शासन नहीं कर सकते इन तीनों का ही अवलम्बन करके वेद का सिद्धान्त कभी भी मिथ्या नहीं हो सकता। वेद के मंत्र का अर्थ भी बदला और मूर्तिपूजा का खण्डन भी नहीं हुआ। इस अर्थ के रहते हुये उपासक लोग यह उत्तर देते हैं कि हम प्रकृति और उसके कार्य की उपासना नहीं करते किन्तु प्रकृति और कार्य में व्यापक ब्रह्म को उपासना करते हैं लहसन भी खाया और व्याधि की निवृत्ति भी नहीं हुई। अर्थ बदलने पर भी उपासना का खण्डन नहीं होता सत्य तो यह है कि—

(ये) जो (जनः) मनुष्य (असंभूतिं) शरीर की (उपासते) उपासना करते हैं [इस शरीर के छूटने पर दूसरा शरीर मिलता ही नहीं ऐसा जानते हैं] (ते) वे (अंधंतमः)

अज्ञान लक्षण तम को (प्रविशंति) प्रवेश करते हैं (ये उ) जो (संभूत्यां) शुष्क आत्मा के ज्ञान में (रताः) रत हैं (ते) वे (ततः) उससे (भूयः) अधिकतर (अंधंतमः) अज्ञान लक्षणतम को (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं।

भाव यह है कि जो मनुष्य अपने शरीर की उपासना करता है अर्थात् शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं ऐसा जान कर "ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्" के सिद्धान्त पर चलता है चाहे ऋण भी लेना पड़े किन्तु शरीरसुख में वाधा न पहुंचे ऐसे ज्ञान को ग्रहण करता है वह पुरुष नरक को जाता है। बस अब यहां विचारिये कि नास्तिक मत का खंडन है या मूर्तिपूजन का। उत्तरार्द्ध का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य कार्य कारण सब जगत् को ईश्वर मान कर कर्मकाण्ड का लोप कर देता है वह उससे भी अधिक मूर्खता को प्राप्त होता है। इसका अभिप्राय यह है कि सब जगत् ईश्वर है इसका ज्ञान होने पर भी कर्म को धक्का न दिया जावे, सब जगत् ब्रह्म है इसके जानने से भी कुछ नहीं होता किन्तु कर्मकाण्ड द्वारा ही मनुष्य उच्चगति को प्राप्त हो सकता है। इसमें कर्मत्याग का खंडन है। यह जो कुछ हमने अर्थ किया है उव्वट भाष्य ठीक ठीक इसी अभिप्राय को कहता है नीचे देखिये—

इत उत्तरमुपासना मंत्राः प्रोच्यन्ते अंधंतमः षडनुष्टुभः। लोकायतिकाः प्रस्तूय निन्धते। येषामेतद्दर्शनम्। जलबुद्बुदवज्जीवाः मदशक्तिवद्विज्ञानमिति। अंधंतमः प्रविशन्ति ये संभूतिमुपासते। मृतस्य सतः पुनः संभवो नास्ति। अतः शरीरग्रहणादस्माकं मुक्तिरेव। नहि विज्ञानात्मा कश्चिदनुच्छित्ति धर्मास्ति यो यमनियमैः संबध्यते। एवं ये उपासते ते अंधं अज्ञानलक्षणं तमः प्रविशन्ति ततो भूय इव ते तमः। ततोपि बहुतरम्। इवोऽनर्थकः। ते तमः प्रविशन्ति ये उ। उकारः कर्मोपसंग्रहार्थीयः। ये संभूत्यामेवरताः। आत्मैवास्मि नान्यत्किंचिदस्तीत्ययमभिप्रायः कर्मपराङ्मुखाय तत्कर्मकाण्डज्ञानकाण्डयोरसंभवः। इत्ययमभिमेत्य स्वबुद्धिमद्भुतां विभावयन्तः आत्मज्ञान एव रताः।

इसके ऊपर महीधर भाष्य भी मौजूद है वह भी इसी अर्थ की पुष्टि करता है पढ़िये—

अतः परमुपासनामंत्रा उच्यन्ते षडनुष्टुभः। यमनियमसंबंधवान्विज्ञानात्मा कश्चिन्नास्ति जलबुद्बुदवज्जीवाः मदशक्तिवद्विज्ञानमित्यादि मतवादिनो बौद्धा प्रस्तूय निन्द्यन्ते। ये नराः असंभूतिमसंभवमुपासते,, मृतस्य पुनः संभवो नास्ति अतः शरीरान्तेऽस्माकं मुक्तिरेवेति वदन्ति ते अंधंतमोऽज्ञानलक्षणं प्रविशन्ति। ये उ ये च संभूत्यामेव रताः संभवत्यस्या इति संभूतिरात्मा तत्रैवासक्ताः कर्मपराङ्मुखाः स्वबुद्धिलाघवमजानाना आत्मज्ञानमात्ररताः आत्मैवास्ति नान्यत् कर्मादीनि कर्मकाण्डज्ञानकांडयोः

संबंधो नास्तीत्यभिप्रायवन्त इत्यर्थः। ते नराः ततोऽन्धात्तमसो भूय इव। इव शब्दोऽनर्थकः। बहुतरं तमोऽज्ञानं विशन्ति अस्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते। अधुना व्याकृताव्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निंदोच्यते। संभवनं संभूतिः कार्यस्योत्पत्तिः तस्या अन्या असंभूतिः प्रकृतिः कारणमव्याकृताख्यं तामसंभूतिमव्याकृताख्यां प्रकृतिं कारणं विद्या कामकर्मबीजभूतामदर्शनात्मिकां ये उपासते ते तदनुरूपमेवान्धं तमोऽदर्शनात्मकं संसारं प्रविशन्ति। ये संभूत्यां कार्ये ब्रह्मणि हिरण्यगर्भाख्ये रताः ते ततस्तस्मादपि भूयो बहुतरमिव तमः प्रविशन्ति।

उव्वट भाष्य और महीधर भाष्य इन दोनों ही भाष्यों में असंभूति शब्द से मनुष्य शरीर और संभूति शब्द से आत्मा का ग्रहण किया है जो कि हमारे अर्थ में लिखा गया है। नहीं मालूम इन अर्थों के विरुद्ध असंभूति का अर्थ अनादि प्रकृति और संभूति का अर्थ महातत्वादि सृष्टि किस प्रकार ले लिया है ये दोनों ही अर्थ मनगढंत और मिथ्या हैं जिनको पुष्टि के लिये कोई भी किसी समय में लेखनी नहीं उठा सकता। अब इसके आगे अपने अर्थ की पुष्टि में यजुर्वेद के मूल मंत्र का भी प्रमाण देते हैं पढ़िये—

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदो भयꣳसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥

यजु० अ० ४० मं० ११

(यः) जो (योगी) योगी (संभूतिम्) आत्मा (विनाशम्) विनाशी शरीर (तदुभयम्) इन दोनों को (सह) मिले हुये (वेद) जानता है (सः) वह (विनाशेन) शरीर से (मृत्युम्) मृत्यु को (तीर्त्वा) जीत कर (संभूत्याम्) आत्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (अश्नुते) पाता है।

जो अर्थ हमने किया वही अर्थ उव्वट भाष्य में लिखा है देखिये—

संभूतिं च समस्तस्य जगतः संभवैकहेतुं च परं ब्रह्म। विनाशं च विनाशिशरीरं च। यः योगी तदुभयं वेद जानाति। सह एकीभूतम्। शरीरग्रहणेन ज्ञानोत्पत्तिहेतूनि कर्माणि करोति। सः विनाशेन। विनाशिना शरीरेण। मृत्युं तीर्त्वा उत्तीर्य। संभूत्या आत्मविज्ञानेन। अमृतमश्नुते। अमृतत्वमश्नातीत्यर्थः।

जिस अर्थ को उव्वटभाष्य ने कहा है उसी अर्थ को महीधरभाष्य भी कहता है पढ़िये—

संभूतिं सर्वजगत्संभवैकहेतुं परं ब्रह्म। विनाशं विनाशोऽस्यास्तीति विनाशः अर्श आदित्वादच्प्रत्ययः। विनाशधर्मकं शरीरम्। तदुभयं शरीरि शरीररूपं द्वय

यो योगी सह एकीभूतं वेद जानाति। देहभिन्नोऽहं देहीवासे कर्मवशादिति ज्ञात्वा शरीरेण ज्ञानोत्पत्तिकराणि निष्कामकर्माणि करोतीत्यर्थः। स विनाशेन विनाशिना शरीरेण मृत्युं तीर्त्वान्तःकरणशुद्धिं संपाद्य संभूत्यात्मज्ञानेनामृतमश्नुते मुक्तिं प्राप्नोति। अस्या ऋचोऽर्थान्तरम्। यथा। संभूत्युपासनयोरेक पुरुषार्थत्वात्समुच्चय एव युक्त इत्याह। अत्र विनाशशब्दद्वये अवर्णलोपो द्रष्टव्यः पृषोदरादित्वात्। अन्यदाहुरसंभवादित्युक्तेः। संभूतिम् विनाशं च व्याकृतमव्याकृतोपासनद्वयं यः सह वेद। उभयमुपास्त इत्यर्थः। सयोगी अविनाशेनाव्याकृतोपासनेन मृत्युमनैश्वर्यम्। धर्मकामादि दोष जातं च तीर्त्वातिक्रम्य संभूत्या हिरण्यगर्भोपासनेनामृतं प्रकृतिलयलक्षणमश्नुते।

संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति का एक हेतु जो ब्रह्म है उसको संभूति कहते हैं और नश्वर शरीर को विनाश कहा है जो योगी इन दोनों को इकट्ठे हुए शरीर में जानता है वह शरीर से मृत्यु के पार उतर कर आत्म विज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

असंभूति का अर्थ महीधर ने शरीर किया और संभूति का अर्थ ब्रह्म किया है। उव्वट ने भी यही अर्थ किया है। ग्यारहवें मंत्र में "विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते" में असंभूति का अर्थ मूलवेद ने नाशकारी शरीर कर दिया है और संभूति का अर्थ आत्मा किया है। जब वेदमंत्र ही असंभूति का अर्थ शरीर और संभूति का अर्थ आत्मा करता है तो फिर वेद के विरुद्ध असंभूति का अर्थ प्रकृति और संभूति का अर्थ प्रकृति के कार्य कोई भी विचारशील मनुष्य किसी प्रकार मान नहीं सकता। जिस अर्थ से मूर्तिपूजा का खंडन किया गया है यह अर्थ वेद से विरुद्ध है अतएव अमान्य है। इस अमान्य अर्थ से मूर्तिपूजा का खंडन करना उतना ही असंभव है जितना कि फूंक से पहाड़ का उड़ा देना।

मूर्तिपूजा के खंडन में जो दूसरा मंत्र दिया जाता है वह यह है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति।

यजु० अ० ३४ मं० ४३

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है।

इस वेदमंत्र से जो मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं वे जान बूझ कर छल करते हैं। हम प्रथम सम्पूर्ण मंत्र को लिखते हैं और फिर उसके आगे विवेचन लिखेंगे। मन्त्र इस प्रकार है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भ इत्येषः मामाहिꣳसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः ॥

यजु० अ० ३२ मं० ३

उस परमात्मा की तुल्यता नहीं है जो महत् यशवाला है, जो "हिरण्यगर्भ" इस श्रुति में वर्णित हुआ है। जिस परमात्मा का वर्णन "मामाहिꣳसी" श्रुति कर रही है जो "यस्मान्नजात" इस श्रुति में वर्णित है ।

प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति करना छल है क्योंकि मंत्र के पद ईश्वर की मूर्ति ही सिद्ध करेंगे। मंत्र कहता है कि उसके तुल्य कोई नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है। यदि हम यह अर्थ करें कि उसकी मूर्ति नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है तो महत् यशवाला यह हेतु विरुद्धहेतु हो जाता है। संसार में महत् यशवाले स्त्री पुरुषों की ही मूर्ति होती है भिखमंगों की नहीं होती अतएव यह हेतु सिद्ध करता है कि ईश्वर के तुल्य कोई नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है। उब्बट ने प्रतिमा शब्द का अर्थ "न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते" लिखा है अर्थात् जिस ईश्वर की समतावाला कुछ या कोई नहीं है। महीधर ने "प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तु नास्ति" लिखा है अर्थात् ईश्वर से बराबरी करनेवाली कोई वस्तु नहीं है। शंकराचार्य ने भी "न तस्य प्रतिमा अस्तीति ब्रह्मणोनुपमानत्वं दर्शयति" लिखा है जिसका भाषा यह होता है कि ब्रह्म की उपमा रखनेवाला कोई पदार्थ नहीं है यही वेदमंत्र दिखा रहा है। मंत्र के उत्तरार्द्ध में तीन मंत्रों की प्रतोक है उन तीन में ईश्वर कैसा कहा गया है इसको देखिये—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० १३।४

हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्ड में गर्भरूप से जो प्रजापति स्थित है वह हिरण्यगर्भ कहलाता है वह प्रजापति सर्व प्राणिजाति की उत्पत्ति से प्रथम स्वयं ब्रह्माण्ड शरीरी हुआ और उत्पन्न होनेवाले जगत् का स्वामी हुआ वह प्रजापति अंतरिक्ष द्युलोक और भूमि को धारण किये हुये है उस प्रजापति की हम हवि से परिचर्या करते हैं।

मामाहिꣳसीज्जनितायः पृथिव्यायो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० अ० १२ मं० १०२

(यः) जो प्रजापति (पृथिव्याः) पृथ्वी का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (सत्यधर्मा) सत्य धारण करनेवाला (दिवम्) द्युलोक को (व्यानट्) सृजन कर व्याप्त है (च) और (यः) जो (प्रथमः) आदिपुरुष प्रथमशरीर (आपश्चन्द्राः) जगत् का आह्लाद और तृप्तिसाधक जल को (जजान) उत्पन्न करता हुआ वा मनुष्यों का रचनेवाला है वह प्रजापति (मा) मुझे (मा हिंसीत्) मत मारे (कस्मै) उस प्रजापति के निमित्त (हविषा विधेम) हवि देते हैं।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया स ँ रराणस्त्रीणि ज्योती ँ षि सचते सषोडशी॥

यजु० अ० ८ मंत्र० ३६

(यस्मात्) जिस पुरुष से (अन्यः) दूसरा कोई उत्कृष्ट (न) नहीं (जातः) प्रादुर्भूत हुआ (अस्ति) है (यः) जो (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोकों में (आविवेश) अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है (सः) वह (षोडशी) षोडश कलात्मक सब भूतों का आश्रय (प्रजापतिः) जगत् का स्वामी (प्रजया) प्रजारूप से (संरराण) सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालन के निमित्त (त्रीणि) अग्नि वायु सूर्य लक्षणवाली तीन (ज्योतींषि) ज्योतियों को अपने तेज से (सचते) उज्जीवन करता है।

हम पहिले दिखला चुके हैं कि प्रतिमा का अर्थ तुल्यता है अब तीनों प्रतीक के मंत्र लिखते हैं। "हिरण्यगर्भः" इस मंत्र में ईश्वर को शरीरी मूर्तिमान् बतलाया है। "मामाहि ँ सी" इस मंत्र में ईश्वर को संसार की मूर्तियों में व्यापक बतला कर मूर्तिमान् सिद्ध कर उससे रक्षा की प्रार्थना की गई है। "यस्मान्नजात" इस मंत्र में ईश्वर को व्यापक मूर्तिमान् बतला कर ईश्वर से उत्कृष्ट कोई भी नहीं यह दिखलाया है। जब तीनों ही मंत्रों में ईश्वर को मूर्तिमान् कह दिया तब ईश्वर की मूर्ति का निषेध करना पागलपन नहीं तो और क्या है। "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र में जो "हिरण्यगर्भः" इसकी प्रतीक दी है इस प्रतीकवाले मंत्र में ही मूर्तिपूजन करना लिखा है इसके ऊपर जो कात्यायन कल्पसूत्र है वह यह है—

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोऽग्निः स यजमानः
स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृत
ँ हिरण्यममृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः १
उत्तानम्प्राञ्चा ँ हिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भ इति॥

कात्यायन कल्पसू० १७।४।१२

"हिरण्यगर्भः" इस मन्त्र के ऊपर शतपथ भी है उसको भी पढ़िये—

अथ सामगायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृशमेवापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् ॥२२॥ ते अब्रुवन् उपतज्जानीत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमिच्छतेति वा व तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं दधामेति ॥२३॥ ते चेतयमाना एतत सामापश्यंस्तदगायंस्तस्मिन्वीर्यमधुस्तथैवास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निस्तमुपधाय न पुरस्तात्परीयान्नेन मायमग्निर्हिं न मृदिति ॥२४॥ अथ सर्पनामैरुपतिष्ठत इमे वै लोकाः सर्पाः ।

श० । ७ । ४ । १ । २२-२४

जब देवताओं ने हिरण्यमय पुरुष को सुवर्णफलक के ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्णपुरुष चेतना से रहित शुष्क फलक की समान है । तब फिर सब बोले कि इस हिरण्यमय पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो । सब देवताओं ने इस बात का अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें वह देवता मीमांसा करते हुये तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचने०) इन तीन मंत्ररूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुये और इस तीन मंत्र रूप साम को गाया तब उस हिरण्यमय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रदायक शक्ति को स्थापन किया । इसी प्रकार यह यजमान भी इसी साम के बल से इस पुरुष में सामर्थ्य का विधान करता है, तात्पर्य यह कि ऊपर के तीन मंत्र पढ़ने से इस रुक्म पुरुष में सामर्थ्य प्रकट होती है ।

जब शतपथ "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र के उत्तरार्द्ध में प्रतीक युक्त "हिरण्यगर्भ" इस मंत्र से ईश्वर की मूर्ति बनाना और उस मूर्ति में चैतन्यता आना लिख रहा है तब फिर शतपथ को मिथ्या ठहरा कर "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र से मूर्तिपूजन का निषेध कोई भी वेदज्ञाता आस्तिक मान नहीं सकता । जब शतपथ मूर्तिपूजन बतलाता है तो फिर इसके विरुद्ध लेखनी उठाने का किसी का स्वत्व ही नहीं । इसके विरुद्ध जो लेखनी उठाते हैं उनका गूढ़ अभिप्राय वेदों से घृणा करवा देने को छोड़ कर अन्य कुछ नहीं हो सकता । पाठक समझ गये होंगे कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इसमें मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं है वरन् मूर्ति स्थापन करने और उसमें चैतन्यता लाने की विधि है ।

वेद में पूजाविधि

(३) तीसरा प्रश्न यह है कि वेद ने मूर्तिपूजन करना नहीं बतलाया। जिन लोगों ने वेदों का अध्ययन नहीं किया वे जो चाहें सो कह दें किन्तु जो लोग वेदों को जानते हैं वे यह भी जानते हैं कि मूर्ति का पूजन वेदों में ठसाठस भरा हुआ है देखिये—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

यजु० अ० ३ मं० ६०

इसका निरुक्त यह है—

त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्। सुगंधिं सुष्ठुगन्धिं पुष्टिवर्धनं पुष्टिकारक-मिवोरुकमिव फलं बंधनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुंचस्व मां कस्मादित्येषा पराभवति।

हम तीन नेत्रोंवाले रुद्र परमात्मा को पूजते हैं, जो पुण्यगंध से युक्त है, धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ानेवाला है जिससे कि उसकी कृपा से खरबूजे के तुल्य हम बंधन से छूटें अमृत से न छूटें।

इस मंत्र में रुद्र (महादेव) का पूजन स्पष्ट लिखा है जिसके ऊपर किसी प्रकार की हुज्जत नहीं चल सकती। अन्य प्रमाण देखिये—

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥

अथर्व० का० १ अ० ३ मं० १

मैं बिजलीरूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूं, मैं गर्जनारूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूं, मैं पाषाणरूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूं जिस पाषाण से चोट लगती है।

इस मंत्र में ब्रह्म के साथ में बिजली, गर्जना और पाषाण का अभेद करके प्रणाम किया है। जब वेद पाषाण को प्रणाम करवाता है तब फिर मूर्तिपूजन वेद में नहीं है इस कथन में कुछ मूल्य है? मूल्यशून्य होकर यह सिद्ध कर देता है कि मूर्तिपूजन के खण्डन करनेवालों ने कभी वेद का अवलोकन ही नहीं किया।

अन्य प्रमाण—

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥

ऋग् अष्ट० १ अ० १ व० १

इसका निरुक्त देखिये—

वायवा याहि दर्शनीयेमे सोमा अरंकृता अलंकृतास्तेषां पिब शृणु नो ह्वानमिति । कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्यत् । तस्यैषापरा भवति ॥

हे वायु हे दर्शनीय आ, यह सोम तैयार किये गये हैं उनको पी, हमारे बुलावे को सुन, मध्यम से भिन्न किस दूसरे को ऐसे सोमपी कहता ॥

ऋग्वेद के इस मंत्र में सोमरस पान करने के लिये ईश्वर को बुलाना और सोम रस के पीने की प्रार्थना करना 'हे ईश्वर तुम हमारे बुलाने को सुनो' ऐसा कहना यह मूर्तिपूजन या मूर्तिपूजन का एक अंग भोग लगाना नहीं है तो और क्या है ?

और भी देखिये—

भवाशर्वौ मृडतं माभियातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥३॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्मः उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥४॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंसि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७॥

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परिवृणक्तु नो भवः ।
मा नोभि मास्त नमो अस्त्वस्मै ॥८॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्चपशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं
यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो
अभिमाः श्वानः परोयन्त्वघरुद्रो विकेश्यः ॥११॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१२॥
योभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतोवीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१४॥
नमस्तेस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१५॥
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥

अथ० कां० ११ अ० १ सू० २

इस सूक्त का नाम अर्थसूक्त है इस अर्थसूक्त से स्वस्ति की कामनावाला पुरुष आज्य, समिधा, पुरोडास आदि तेरह द्रव्यों में से किसी एक से या सब को मिला कर होम करता है यह कौशीतकी सूत्र में लिखा है और इसी सूत्र में यह भी लेख है कि इन तीन सूक्तों से समान रूप का जिस गौ का वत्स होवे उस गौ के दुग्ध में चरु पका कर तीन विभाग कर तीनों सूक्तों से होम करे । दूसरे कार्यों में भी इन मंत्रों का विनियोग है ।

अर्थ--हे भव हे शर्व मुझको सुखी करो हे भूतों के पतियो मेरे पास सब ओर से आओ अर्थात् रक्षार्थ हे पशुओं के पतियो आप दोनों को नमस्कार है तुम दोनों धनुषों में धरे और विस्तृत बाण को मेरे ऊपर मत छोड़ो और आप हमारे द्विपद मनुष्यों को, चतुष्पद पशुओं को मत मारो ॥१॥ हे पशुपते हमारे शरीरों को कुत्तों के लिये और गीदड़ों के लिये मत करो अर्थात् आपकी कृपा से बावले कुत्ते और गीदड़ हमको न काटें तथा मरणान्तर हमारे शरीरों को गीदड़ और कुत्ते न खावें किन्तु हमारी सत्क्रिया हो जावे और आमिष की इच्छा करनेवाले जो कृष्णकाक और मक्खी हैं वे अपने भोजन के लिये हमें न पायें ॥२॥ हे भव तुम्हारे शब्द को तथा प्राण को नमस्कार है और जो तुम्हारी मोहन करनेवाली मूर्तियें हैं उन सब को हम नमस्कार करते हैं, हे अमर रुद्र सहस्राक्ष जो आप हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥३॥ हे रुद्र तुमको पूर्व से और उत्तर दक्षिण से भी हम नमस्कार करते हैं या पूर्व दक्षिण और उत्तर सब ओर तुम हो इसलिये सब ओर रहनेवाले आपको प्रणाम है अधर शब्द नीचे का भी वाचक है नीचे से और सब को अवकाश देनेवाला जो आकाश है उसके भी ऊपर जो स्थित आप हैं सूर्यरूप से या व्यापक रूप से तुमको नमस्कार है ॥४॥ हे पशुओं के पति शङ्कर तुम्हारे मुख को नमस्कार है, हे भव तुम्हारे जो चक्षु हैं उनको भी नमस्कार है और तुम्हारी त्वचा को, तुम्हारे रूप को और सम्यग्दर्शी जो आप हैं तथा प्रत्यग्दर्शी जो आप हैं और सब में व्यापक जो आप हैं आपको नमस्कार है ॥५॥ हे पशुपते आपके अंगों को नमस्कार है, आपके उदर को आपकी जिह्वा को आपके मुख को और दांतों को तथा नासिका को भी नमस्कार है ॥६॥ जो अस्त्र चलानेवाले और नील शिखण्ड वाले सहस्राक्ष और अश्ववाले तथा आधाघात करनेवाले रुद्र हैं उनके साथ हम विरोध न करें ॥७॥ वह भव हमको सब ओर से दुश्चरितों से रोकें जैसे जल अग्नि को सब ओर से रोकते हैं ऐसे भव हमको सब ओर से रोकें किन्तु हमारा हनन न करें इसलिये हमारा उस भव को नमस्कार होवै ॥८॥ भव नामक शिव को चार वार और आठ वार नमस्कार हो, हे पशुपते आपको दश वार नमस्कार होवै तुम्हारे ये पांच पशु विभक्त हैं गाय घोड़े पुरुष और बकरी तथा भेड़ हैं ॥९॥ हे उग्र चारो दिशा आप की हैं स्वर्ग आप का है, पृथ्वी आप की है और बड़ा विस्तीर्ण आकाश भी आप का है और क्या कहें इस पृथ्वी पर जो कुछ प्राणवाले और शरीरवाले हैं वे सब आप के ही हैं ॥१०॥ हे पशुओं के पति शङ्कर जिस ब्रह्माण्ड कटाह के अंदर ये सब भुवन हैं और जिसमें पाप पुण्य का खजाना स्थित है वह समस्त ब्रह्माण्ड आपका है सो आप जो सब से उत्कृष्ट हैं आप को नमस्कार है आप हमको सुखी करो और शृगाल तथा मांस खानेवाले कुत्ते रोनेवाली और खुले केशवाली पिशाचनी हमसे दूर जावें यह हमारी प्रार्थना है ॥११॥

हे शिखण्ड रखनेवाले रुद्र तुम हजारों को जखमी करनेवाले और सैकड़ों को मारनेवाले सुवर्णमय हरित धनुष को धारण करते हो तथा हमारा तो उस दिशा को भी नमस्कार है जिस दिशा में रुद्र का बाण और रुद्र की शक्ति घूमती होवे ॥१२॥ हे रुद्र जो पुरुष लड़ने की इच्छा से आपके पास आता है और प्रहार करता है फिर भगाना चाहता है उसके प्रहार करने के बाद आप प्रहार करते हो फिर उस शस्त्रहत को आप के पाद प्राप्त करते हैं अर्थात् वह शस्त्रहत होकर आपके चरणों में गिरता है ॥१३॥ भव और रुद्र दोनों ही उग्र और मिले हुए तथा सम्यग् ज्ञाता हैं जिस दिशा में वे पराक्रम करते हुये विद्यमान हैं उन दोनों को नमस्कार है ॥१४॥ हे रुद्र आते हुये तुमको और जाते हुये तुमको तथा खड़े हुये तुमको और बैठे हुये तुमको नमस्कार होवै ॥१५॥ हे रुद्र तुमको सायंकाल नमस्कार है प्रातःकाल नमस्कार है तथा रात में और दिन में भी नमस्कार है और मैं भवदेव को और शर्वदेव को, दोनों को नमस्कार करता हूं ॥१६॥

वेदों में मूर्तिपूजाविधायक सहस्रों प्रमाण विद्यमान हैं उनमें से दो तीन प्रमाण हमने यहां लिख दिये। अधिक न लिखने का कारण यह है कि प्रथम तो पुस्तक अति विस्तृत हो जावेगी (२) जो नास्तिक हैं या वेदों पर जिनकी श्रद्धा नहीं है वे सहस्रों प्रमाणों को पाकर भी अपना आग्रह नहीं छोड़ते अतएव विचारशील मनुष्यों को इतने ही प्रमाणों से तोष होगा।

कई एक सज्जनों का यह कथन है कि ये मंत्र तो वेद के ठीक हैं, अर्थ भी इनका ठीक है किन्तु तुम पूजा करो ऐसा तो वेद में कहीं नहीं लिखा।

"त्र्यंबकं यजामहे" इस मंत्र में जो 'यजामहे' पद है इसका अर्थ है कि हम पूजते हैं। "वायवा याहि" इस मंत्र में ईश्वर का भोग लगाना लिखा है। "नमस्ते अस्तु" इस मंत्र में पाषाण को प्रणाम किया है। "भवा शर्वौ" इन मंत्रों में शंकर को साकार बनाकर उनके समस्त अंगों को प्रणाम किया है। जब पूजा के अंग वेदमंत्रों में विद्यमान हैं तब पूजा की आज्ञा नहीं है ऐसा कहना अफीम की पीनक नहीं तो और क्या है। यदि कोई यह आग्रह करे कि नहीं "पूजा करो" जिस मंत्र में ऐसा स्पष्ट लिखा हो वह मंत्र देखना चाहते हैं। ऐसी इच्छा रखनेवालों के लिये वेदभगवान ने यह मंत्र लिखा है—

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत्पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

हे अध्वर्यादि तुम परमात्मा इन्द्र का (अर्चत) पूजन करो (प्रार्चत) स्तुति विशेष से

पूजन करो (प्रियमेधासः) प्रियमेधस सम्बन्धी वा प्रियमेधा के गोत्रवाले तुम (अर्चत) पूजन करो (उत) और (पुत्रकाः) पुत्र भी (अर्चन्तु) विशेष कर इन्द्र को पूजें (उत) और (पुरं न) जैसे पुरुष को (धृष्णु) धर्षणशील को (अर्चत) अर्थात् जैसे धर्षणशील पुरुष को पूजते हैं तैसे तुम पूजो।

दलीलबाजी

जब इतिहास तथा वेद से मूर्तिपूजन सिद्ध हो जाता है तब आजकल के मनुष्य हुज्जतबाजी से मूर्तिपूजा को उड़ा देना चाहते हैं। मूर्तिपूजा में इनकी हुज्जतें इस प्रकार हैं (१) क्या उस मूर्ति में ईश्वर धँस बैठा जो मूर्ति में ईश्वर का पूजन करते हो (२) मूर्ति तो मनुष्य की बनाई है (३) मूर्ति के पूजन से ईश्वर की प्रसन्नता कैसे होगी (४) निराकार ईश्वर की मूर्ति कैसे बनेगी (५) मूर्ति के टूटने से ईश्वर नष्ट हो जावेगा (६) नकली मूर्ति के पूजन से असली ईश्वर का ज्ञान कैसे होगा (७) मूर्ति के पूजन करने से ईश्वर कैसे प्रसन्न हो जावेगा (८) ईश्वर तो अखण्ड है अखण्ड की मूर्ति कैसे बनेगी (९) मूर्ति में ईश्वर की भावना कैसी (१०) जो मूर्तियां औरंगजेब का अनिष्ट नहीं कर सकीं वे हमारी क्या सहायता करेंगी (११) हमने मूर्तिपूजन से किसी भी पुजारी को लाभ होते नहीं देखा।

इन ग्यारह तर्कों का हम श्लोकबद्ध उत्तर देंगे। शंका (१) का उत्तर यह है—

> किं व्यापकाश्चित्रपटे मनुष्याः
> सुव्यापकाः रूप्यगणाश्च पत्रे।
> अव्यापकत्वेऽपि च मान्यबुद्धिः
> स ओत प्रोतश्च विभुः प्रजासु॥

क्या चित्रपट (फोटू) में फोटूवाले मनुष्य धँस बैठते हैं, क्या नोट में रुपये धँसे हुये हैं, अव्यापक होने पर भी संसार फोटू और नोट को प्रतिकृति मानता है तो फिर मूर्ति में ईश्वर के व्यापक होने की शंका कैसी। अनेक स्थान में व्यापक न होने पर भी मान्य बुद्धि होती है। किसी में शंका न करके केवल ईश्वर की व्यापकता में ही शंका क्यों ? एक मूर्ति की क्या कहें ईश्वर तो समस्त ही संसार में ओत प्रोत ताना और बाना हो रहा है।

शंका (२) का उत्तर सुनिये—

पत्राक्षराणि नरनिर्मितानि
धर्मस्य ग्रन्थाः किमु माननीयाः।
ग्रन्थेषु सर्वेषु च मान्यबुद्धि-
र्मूर्तौ कथं वै प्रभवंति तर्काः॥

मनुष्य की बनाई हुई स्याही और मनुष्य का बनाया कागज, मनुष्य का बनाया मसाला। कागज पर मसाला देकर कापी लिखी गई उस कापी को पत्थर पर लगा कर छापा तो तैयार हुई "कुरानशरीफ"। मनुष्य के बनाये स्याही कागज और मनुष्य ही का बनाया टाइप, उस टाइप से छपा "गुरुग्रन्थ साहब", बाद में छपा "बाइबिल" फिर छपी "जिन्दावस्था" अंत में छपा "वेद"। जिन जिन मनुष्यों के ये धर्मग्रंथ हैं उन सब की इनमें पूज्यबुद्धि है। हैं तो सब मनुष्य ही के बनाये फिर हमको नहीं मालूम मनुष्य की बनाई हुई मूर्ति में मनुष्य के बनाने की शंका क्यों कूद बैठती है और इन ग्रंथों में क्यों नहीं कूदती?

शंका (३) का समाधान देखिये—

देहेन पित्रोर्गुरुभ्रातृपूजा
लोके यथा या खलु तोषदात्री।
मूर्तौ तथोपासनया नरेण
तोषः कथं नो जगदीश्वरस्य॥

एक मनुष्य ने माता को स्नान करवाया, फिर उस के तेल लगाया, फिर उत्तम २ नये नये कपड़े पहिनाये, बाद में भोजन करवाया। यहाँ स्नान हुआ शरीर का, तेल लगा शरीर में, कपड़े पहिनाये गये शरीर को, भोजन डाला गया शरीर के एक अंग मुख में, और प्रसन्न हुआ शरीरव्यापक आत्मा। एक मनुष्य का पिता बीमार हो गया वैद्य ने बतलाया कि पावँ दाबो, शिर में तेल लगाओ, खश सुंघाओ, पंखे से हवा करो। शरीर के अंग पैर दाबे गये, शरीर के अंग शिर में तेल लगाया, शरीर के एक अंग नासिका में खश सुंघाया, शरीर को हवा दी गई किन्तु प्रसन्न हुआ शरीरव्यापक पिता का आत्मा। एक मनुष्य के गुरु आये उस मनुष्य ने गुरुजी के चरण धोये, आसन पर बिठलाया, मस्तक में चंदन लगाया, गले में फूलों की माला पहिनाई, चरणों में पांच सौ गिन्नी अर्पण कर दीं, प्रसन्न कौन हुआ गुरु के शरीर में व्यापक आत्मा। जैसे

शरीर के पूजने से शरीरव्यापक आत्मा प्रसन्न होता है इसी प्रकार मूर्ति के पूजन से मूर्ति में व्यापक प्रभु कृष्ण प्रसन्न होते हैं।

शंका (४) पर विचार पढ़िये—

अभावरूपस्य सदात्र विन्दोः
प्रकल्प्य मूर्तिं गणना विधत्ते।
सर्वस्वरूपस्य विभोर्हि विष्णो-
र्मूर्तिः कथं स्यादिति तर्कपुंजः॥

ईश्वर तो निराकार है किन्तु जिसका कुछ भी आकार नहीं ऐसा जो अभाव है उस अभाव की भी मूर्ति बनानी पड़ती है। गणितज्ञों ने अभाव की मूर्ति बनाई इस मूर्ति का नाम है शून्य, इस अभाव की मूर्ति शून्य के ऊपर से ही इकाई दहाई आदि गणना चलती है, इसी के सहारे से शत के सहस्र और सहस्र के लक्ष बन जाते हैं। जब अभाव की मूर्ति शून्य बन जाती है तो फिर जो ईश्वर सर्वस्वरूप है उसकी मूर्ति क्यों नहीं बन सकती?

शंका (५) का विवेक नीचे लिखा जाता है—

ज्वरादिरोगेन शरीरनष्टे
नष्टो न जीवो नितरां प्रसिद्धः।
अन्नेहि नष्टे न कदापि शंभु-
र्मूर्तौ कथं नाशमुपैति व्यापी॥

किसी मनुष्य को ज्वर आया और वह मर गया उसके मरने से क्या शरीरव्यापक आत्मा भी मर गया? एक मनुष्य एक पैसे की मूली ले आया, क्या उस मूली में ईश्वर है, सभी आस्तिक कहेंगे कि ईश्वर तो सर्वव्यापक है इस कारण मूली में भी है। वह मनुष्य मूली तोड़ कर खा गया क्या ईश्वर मूली के साथ टूट गया और खाया भी गया? ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण चनों में भी मौजूद है। एक मनुष्य ने चने भुना लिये, क्या ईश्वर भुन गया? एक मनुष्य को जाड़ा लगा लकड़ी बीन कर उनमें आग लगा कर तापने लगा और तब तक तापा जब तक उन लकड़ियों की आग की अच्छी प्रकार राख बनी तो क्या लकड़ियों के साथ साथ लकड़ियों में व्यापक ईश्वर भी जल गया? यह क्या बात है कहीं पर भी शंका न होकर मूर्ति के टूटने पर ईश्वर के मरने की शंका क्यों होती है?

शंका (६) की मीमांसा कीजिये—

पठन्ति बालाश्च हिमालयाद्रीं
गंगानदीसागरखं च रेखाम्।
यथानुबोधो भवतीह लोके
मूर्त्यास्तथैव प्रवदन्ति सन्तः॥

मदरसे में इंसपेक्टर आये और एक लड़के से पूछा कि हिमालय कितना ऊंचा है? लड़के ने उत्तर दिया कि करीब पैंतालीस मील के ऊंचा है। इंसपेक्टर ने पूछा कि बतलाओ कहां है? लड़का पेंसल ले कर दीवाल की तरफ को भागा और नकशे पर पेंसल फेर कर कहा कि यह है, इंसपेक्टर साहब ने कहा कि ठीक है। वहां एक हुज्जतबाज़ खड़ा था वह बोला कि मदरसा कितना ऊंचा? लड़के ने कहा बाईस फुट ऊंचा, हुज्जतबाज बोला कि तुम्हारी अक़ल मारी गई है. बाईस फुट ऊंचे मदरसे में पैंतालीस मील ऊंचा पहाड़ कैसे आ जावेगा। फिर इंसपेक्टर ने पूछा कि गंगा कहां को बही है? लड़का नकशे की तरफ को दौड़ा और नकशे में एक नीली लकीर पर पेन्सल फेरी कि इंसपेक्टर साहब फौरन बोल उठे "आल राइट"। फिर लड़के से पूछा कि हिन्द महासागर कहां है? लड़का फिर दीवार की तरफ को दौड़ा, नकशे पर पेन्सल फेर उठा, इंसपेक्टर ने कहा "यस"। क्या इस मदरसे में सच ही समुद्र आ गया, ईश्वर न करे इसमें समुद्र आजावे नहीं तो मास्टर और इंसपेक्टर का भी पता न चलेगा। इस मदरसे में न हिमालय पहाड़ है और न गंगा, समुद्र भी नहीं है, सबकी नक़ली मूर्ति बनी हैं। इसी प्रकार नक़ली शून्य और नक़ली रेखा से रेखागणित बन गई। जब मदरसे में हिमालय, गंगा, समुद्र, शून्य, रेखा, इनकी नक़ली मूर्तियों से असली हिमालय, असली गंगा, असली समुद्र और असली शून्य रेखा का ज्ञान हो जाता है तो फिर नक़ली मूर्तियों से असली ईश्वर का ज्ञान क्यों नहीं हो जावेगा?

शंका (७) का निर्णय अवलोकन कीजिये—

सत्वे धनेऽपि विविधान् पदार्थान्
ददन्ति राज्ञे धनिनः क्षितीशाः।
भूपः प्रसन्नः प्रभवेद्यदित्थं
रामे प्रसन्ने किमु कोऽत्र तर्कः॥

यद्यपि शहंसाह के यहां द्रव्य की कुछ कमी नहीं है किन्तु इतने पर भी बड़े बड़े

रईस और राजा गिन्नियों के थाल भर कर शहंसाह को भेट करते हैं इसका कारण क्या है? कारण केवल यह है कि शहंसाह हमारे ऊपर प्रसन्न हों, ऐसा करने से शहंसाह प्रसन्न होता है। जिस प्रकार असंख्य पदार्थ द्रव्य के स्वामी जिसके यहाँ किसी प्रकार की कमी नहीं है उसको केवल प्रसन्नतार्थ अनेक राजा भेट करते हैं और वह प्रसन्न होता है इसी प्रकार परिपूर्ण ईश्वर को आस्तिक प्रेमी भक्त अपना द्रव्यादि ईश्वर के अर्पण करता हुआ यही कहता है कि "त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये" ऐसा करने से जगदीश्वर ध्रुव, मार्कण्डेय प्रभृति कोटि कोटि भक्तों पर प्रसन्न हुये हैं और उन भक्तों का संसारबंधन कट गया है।

शंका (८) का विवेचन देखिये—

अखण्डकालस्य कृते विभागे
कालोह्यखंडः प्रतिभाति नित्यम् ।
तथेश्वरे रूपकृतेऽप्यनेक
ईशस्य खण्डानि कथं भवन्ति ॥

काल (समय) अखण्ड है यह मूर्तिरहित है मूर्तिमान् पदार्थ के खण्ड हो सकते हैं किन्तु गणितज्ञों ने प्रथम इस अखंडकाल के चार खंड किये—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। ये चारो स्थूलखंड हैं फिर सूक्ष्मखण्ड करने का आरंभ किया—वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष ये माध्यमिकखण्ड हैं। इसके पश्चात् अखंडकाल के सूक्ष्मखण्ड किये—दिन, रात्रि, प्रहर, घटी प्रभृति खण्ड बना कर अखंडकाल की भव्यमूर्ति घड़ी बनाई जिसमें घंटे की सुई, मिनट की सुई और सेकण्ड की सुई हैं। अखण्डकाल के अनेक खण्ड हो गये किन्तु अखण्डकाल में कोई विकार नहीं आता। काल की भांति अखण्ड ईश्वर की असंख्य मूर्तियां बनाने पर भी ईश्वर की अखंडता में कोई विकार नहीं होता।

हुज्जत (९) का झगड़ा सुनिये—

तत्वेषु कृष्णस्य कृतोहि भावः
सत्योऽस्ति भावः कुत एव तर्कः ।
भावः स्त्रियां भिन्ननरैर्विभिन्नो
मातृस्वसृस्त्रीति विभाव्यतेऽयम् ॥

तत्वों (परमाणुसमूह) में कृष्ण की भावना करना यह सच्ची भावना है। रेते में शक्कर की भावना झूठी भावना किन्तु शक्कर में मिष्ट की भावना सच्ची भावना है

क्योंकि शक्कर के अणु अणु में मिष्ट व्यापक है। इसी प्रकार संसार के तत्वों में प्रभु कृष्ण व्यापक हैं और उनमें कृष्णभावना करना सच्ची भावना है (२) सच्ची भावना न होने पर भी संसार में भावना अपना रूप दिखला जाती है। एक स्त्री है वह एक पुरुष की पुत्री है और दूसरे की स्त्री है, तीसरे की माता है। जब उस स्त्री को पिता देखता है तो उसके अन्तःकरण में देखते ही दया का संचार हो जाता है, जब उस स्त्री को उसका पति देखता है तब पति के अंतःकरण में काम का उद्वेग खड़ा हो जाता है, जब पुत्र देखता है तब पुत्र के मन में भक्ति की लहरें उठने लगती हैं इसको हिन्दुशास्त्र ने अनेक जगह पर एक पदार्थ में विविध भावनायें दिखला कर सिद्ध किया है। इसी के ऊपर तुलसीदासजी लिखते हैं कि—

जाके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

वैदिक ज्ञान को लेकर जिन पुरुषों की मूर्ति में ईश्वरभावना है उनके लिये वह मूर्ति ईश्वर है किन्तु जिन नास्तिकों की पाषाणभावना है उनके लिये वह पत्थर है।

तर्क (१०) को विचारिये—

आकारशून्यस्य कृतो निषेधो
विकाशवादैर्मनुजैश्च नित्यम्।
तेषां क्षयं नो कृतवानरूप-
स्तस्मात्सहेयो मनुजैरवश्यम्॥

मूर्ति ने औरंगजेब का अनिष्ट नहीं किया तो आजकल जो निराकार ईश्वर माना जाता है और विकाशवादवाले उस निराकार का खण्डन करते हैं फिर उस निराकार ने विकाशवादवालों का अनिष्ट भी नहीं किया अतएव निराकार मानना भी छोड़ देना चाहिए। निराकार का जो खण्डन करते हैं निराकार उनको मारता नहीं इतने पर भी निराकार माना जाता है। यदि किसी ने मूर्ति का अपमान कर दिया और मूर्ति ने उसका अनिष्ट नहीं किया तो इतने से मूर्तिपूजन क्यों छोड़ दें और निराकार को क्यों न छोड़ें?

शंका (११) को देखिये—

उद्धव, ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, मुचकुन्द, मार्कण्डेय आदि अनेक भक्तों का मूर्तिपूजन से कल्याण हुआ है इतिहास इसका साक्षी है जिस प्रकार मनुष्यों को मूर्तिपूजन करना विधि है उसी प्रकार लोक हितार्थ ईश्वरावतार भी मूर्तिपूजन करते हैं और उनको भी लाभ पहुंचा है इस विषय में हम एक आख्यायिका देते हैं।

विष्णु नित्य ही शंकर का पूजन किया करते थे। इस पूजन में भगवान् विष्णु शंकर पर सहस्र कमल नित्य चढ़ाया करते थे। दैवयोग से एक दिन सहस्र कमल के स्थान में नौसै निन्यानवे कमल निकले। विष्णु जब नौसै निन्यानवे कमल चढ़ा चुके तब उनको सोच हुआ कि आज तो एक कमल कम हो गया किन्तु हमारा नियम सहस्र कमल नित्य का है एक कमल तो और चढ़ाना ही पड़ेगा, विष्णु ने चारो तरफ देखा कमल का कहीं पता नहीं, अंत में सोचा कि संसार तुमको "कमलनयन" कहता है तुम्हारा नेत्र भी कमल है ऐसा विचार कर विष्णु ने अपना दक्षिण नेत्र निकाल कर शंकर पर चढ़ा दिया, शंकर उसी समय प्रसन्न हुये और वरदान में वह नेत्र फिर दिया कि आपका नेत्र ज्यों का त्यों हो जाय और दुष्टों के संहार के लिये भगवान् शंकर ने प्रभु विष्णु को एक "सुदर्शन चक्र" दिया इस आख्यायिका को सूक्ष्म रूप से "पुष्पदन्त" ने "महिम्नस्तोत्र" में इस प्रकार लिखा है—

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोनेतस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥

जो लोग यह कहते हैं कि पुराणों में मूर्तिपूजा का खण्डन है वे सबसे पहिले जो प्रमाण में श्लोक देते हैं वे श्लोक ये हैं—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥
नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥१२॥
यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ८४

श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार स्वामी श्रीधरजी इन श्लोकों के टीका में लिखते हैं कि "एतन्नपंचयति न ह्यम्मयानीति त्रिभिः ॥११॥ वाङ्मनसयोरप्युपासना विषयत्वम्। "यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते मनो ब्रह्मेत्युपास्ते इति श्रुते"। अघं तन्मूलज्ञानं न हरन्ति। अत्रहेतुः। भेदकृतो भेदकर्तारः। यद्वा भेदबुद्धिं कुर्वतः पुंसः। विपश्चितो निरस्तभेदाः। ते तु मुहूर्तमात्रसेवयैवाघं घ्नंतीवि ॥१२॥ अतः साधून्विहायान्यत्रात्मादि बुद्धया सज्जमानोऽतिमंद इत्याह। यस्येति। आत्मबुद्धिरहमिति बुद्धिः। त्रयो धातवो वातपित्तश्लेष्माणः प्रकृतयो यस्य तस्मिन्कुणपे शरीरे स्वधीः स्त्रीया इति बुद्धिः। भौमे भूविकारे इज्यधीर्देवताबुद्धिः। यद्यस्य तीर्थबुद्धिस्तीर्थमिति बुद्धिः। अभिज्ञेषु तत्ववित्सु यस्य ता बुद्धयो न संति स एव गोष्वपि खरो दारुणोऽत्यविवेकी। यद्वा गवां तृणादिभारवाहः खरो गर्दभः इति" ॥१३॥

जलमय तीर्थ और मृण्मयादि देवता ये बहुत काल में पवित्र करते हैं किन्तु साधु दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाक्, मन ये उपासना किये हुये भेदबुद्धि रखनेवाले पुरुष के पाप को दूर नहीं कर सकते और जो विद्वान् हैं वे एक मुहूर्त की सेवा से पाप को दूर करते हैं ॥१२॥ जो शरीर में आत्मबुद्धि करता है और जो कलत्रादिकों में ये मेरे हैं ऐसी बुद्धि रखता है और जो भूमि के विकारों में पूज्यबुद्धि मानता है तथा जल में तीर्थबुद्धि समझता है और विद्वानों में आत्मबुद्धि और स्वकीयबुद्धि तथा तीर्थबुद्धि नहीं मानता वह बैल और गधा है ॥१३॥

११ ग्यारह के श्लोक में तीर्थ और मूर्ति द्वारा देर में पवित्र होना माना है और सज्जनों के द्वारा अति शीघ्र पवित्र होना माना है किन्तु यह नहीं कहा कि तीर्थ और मूर्ति पवित्र कर ही नहीं सकते। १२ बारहवें श्लोक में यह बतलाया है कि जो ब्रह्मबुद्धि से अग्नि आदि की उपासना नहीं करते उनके पाप दूर नहीं होते किन्तु जो अभेदबुद्धि ब्रह्मबुद्धि से उपासना करते हैं उनके दूर होते ही हैं। १३ तेरह के श्लोक में यह बतलाया कि जो महात्माओं में पूज्यबुद्धि नहीं रखता और वह शरीर में आत्मबुद्धि रखता है तथा कलत्रादिकों में स्वकीय बुद्धि रखता है भूमि के पदार्थों में इज्यबुद्धि और जल में तीर्थबुद्धि रखता है वह गोखर है। यहां पर आस्तिक लोग भूमि विकार का पूजन नहीं करते और भूमि के पदार्थों में उनकी इज्यबुद्धि नहीं है किन्तु भौमपदार्थों में व्यापक जो ईश्वर है उसमें इज्यबुद्धि रख उसी व्यापक का पूजन करते हैं ऐसे मनुष्य निंदनीय नहीं हो सकते, निंदनीय वे हो सकते हैं जो व्यापक को छोड़ कर केवल भू विकार में पूज्यबुद्धि रखते हैं। सामान्य जल में तीर्थबुद्धि रखनेवाला मनुष्य निंदनीय हो सकता है ईश्वर की विशेषशक्ति धारण करनेवाले गंगादि विशेष जलों में पूजनीय बुद्धि रखनेवाला निंदनीय नहीं हो सकता यह इस श्लोक का अभिप्राय है। फिर इस

श्लोक में जो महात्मा लिये गये हैं वे सामान्य नहीं हैं किन्तु शब्दब्रह्म, वेद में निष्णात और साक्षात् ब्रह्म में निष्णात पूर्ण ब्रह्मभूत हो जानेवाले लिये गये हैं. इसी प्रकार के ऋषि यहां आये थे, कौन कौन ऋषि थे उनके नाम ये हैं—

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलो सितः ।
विश्वामित्रः शतानंदो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥३॥
रामः सशिष्यो भगवान् वसिष्ठो गालवो भृगुः ।
पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥४॥
द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथांगिराः ।
अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥५॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ८४

द्वैपायन, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज तथा गौतम ॥३॥ शिष्यों सहित परशुराम, भगवान् वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय और बृहस्पति ॥४॥ द्वित, त्रित, एकत, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव प्रभृति अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषियों से यह तीन श्लोक कहे गये हैं ॥५॥ जिनका अभिप्राय यह है कि वेदविधि से अनुष्ठित वैदिक कर्म, जीव का कल्याण देर में करता है और ब्रह्मवेत्ताओं की कृपा यदि हो जावे तो इस पामर जीव का शीघ्र कल्याण होता है अतएव ब्रह्मवेत्ताओं का आदर करना यह मनुष्य का धर्म है। इतना अभिप्राय इस प्रकरण में है।

कई एक स्थान में जहां पर निवृत्तिमार्ग का अवलम्ब किया है वहां पर मूर्तिपूजा का छोड़ देना भी लिखा है किन्तु अभ्यासयुक्त ज्ञानी होने पर यह विधि है जैसा कि—

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत मनो वाक्कायवृत्तिभिः ॥

एकादश स्कन्ध के इस श्लोक में लिखा है कि प्राणीमात्र में असली ब्रह्मभावना न हो जावे तब तक मन, वाणी, शरीर से ईश्वर की उपासना करना। इसी अवस्था में पहुंच कर मनुष्य वेदविधि को भी छोड़ देता है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि—"त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" हे अर्जुन ! वेद रज, सत्व, तम त्रैगुण्य विषयक हैं किन्तु तू त्रिगुण से बाहर हो जा। जिस समय यह जीव अभ्यास

द्वारा असली तत्वज्ञान को पा जाता है तब इसका मूर्तिपूजन ही नहीं छूट जाता किन्तु समस्त कर्तव्य समाप्त हो जाते हैं इसको इस प्रकार कहा है—

भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे
मायामोहौ क्षयमधिगतौ नष्टसंदेहवृत्तेः ।
शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्वाववोधं
नैस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः कोः निषेधः ॥

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मण्यर्चापादोऽष्टमः ।

इतीश्वराध्यायो द्वितीयः ।



* श्रीगणेशाय नमः *

देवसत्तापादः

दन्ताञ्चलेन धरणीतलमुन्नमय्य
पातालकेलिषु धृतादिवराहलीलम् ।
उल्लाघनोत्फणिफणाधरगीयमान-
क्रीडावदानमिभराजमुखं नमामः ॥१॥

(१) कई एक मनुष्यों का कथन है कि प्रसिद्ध मनुष्य को देवता कहते हैं किन्तु पुराणों ने मनुष्यों से भिन्न देवयोनि को माना है यह निरी गप्प है। ऐसे गपोड़ों से भरे हुये पुराणों को हम तो मानने को तैयार नहीं हैं।

जो लोग शास्त्र से अनभिज्ञ हैं वे जो चाहे सो कहें किन्तु शास्त्र के देखने से तीन देवताओं का ज्ञान होता है (१) वेद मंत्र वर्णित विषय को देवता कहते हैं यह ऋग्वेद में पाया जाता है। इसके ऊपर निरुक्त लिखता है "यातेनोच्यते सा देवता" जो विषय जिस मंत्र में कहा जावे वही उसका देवता है। (२) मनुष्यों में नरपति प्रभृति को भी देव कहते हैं। (३) मनुष्यों से भिन्न भी देवसृष्टि है इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि "द्विविधा देवा देव देवा मनुष्यदेवाश्च विद्वांसो हि देवा ३।७।३।१०" दो प्रकार के देव होते हैं। एक देवयोनि के देव और एक मनुष्यों में देव। देवयोनि के जो देव होते हैं वे जन्म से ही विद्वान् होते हैं।

इन तीन प्रकार के देवों में केवल देवदेवों पर विवाद है। शास्त्र इस विषय में क्या कहता है आज इसी का विवेचन होगा। मनु ने सृष्टिक्रम में मनुष्यों से भिन्न देवता माने हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि--

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ २२ ॥
अ० १

उस प्राणियों के प्रभु ब्रह्मा ने कर्मात्मा इन्द्रादि देवगण और साध्यगण सूक्ष्म सनातन यज्ञ को रचा ॥ २२ ॥

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, वैश्य-कुल-कमल-दिवाकर

स्वर्गीय रायबहादुर श्री १०५ बाबू वाल्मीकिप्रसादसिंह जी

रईस—मुंगेर



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

पुराणों के नष्ट होने पर पुराणों के साथ ही साथ तत्वरचना पक्षी आदि की उत्पत्ति परंपरा से चले हुये वंश और मनुओं की गणना तथा हिन्दुओं के पवित्र चरित्र इन सब का नाश हो जायेगा। इसी के लिये महर्षि वेदव्यास ने पुराण बनाये हैं और यही पुराणों में लिखा है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितंचैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

मरचैंट प्रेस, कानपुर।

इस २२ के श्लोक में देवोत्पत्ति कह कर आगे ३१ के श्लोक में मनुष्योत्पत्ति कही है देखिये—

लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ ३१ ॥

लोकों की वृद्धि के लिये मुख, बाहु, उरु, पाद से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को उत्पन्न किया ।

यज्ञ और वेद के साथ में देवताओं की उत्पत्ति और इसके पश्चात् मनुष्यजाति की उत्पत्ति पृथक् लिखी है । फिर हम कैसे मान लें कि मनुष्यों को ही देवता कहते हैं । मनुजी ब्राह्मणमहत्व कहते हुये एक श्लोक लिखते हैं—

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः
कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ ९५ ॥

मनु० अ० १

जिसके मुख से देवता हवि को खाते हैं और पितर जिसके मुख से कव्य खाते हैं भला इस ब्राह्मण से बड़ा कौन हो सकता है ।

इस श्लोक में मनु ने त्रिदिवौकस नाम देवताओं का लिखा है । एक तो यह नाम ही मनुष्यों का नहीं हो सकता फिर ब्राह्मण के मुख की खाई हुई हवि से किसी मनुष्य का पेट नहीं भर सकता अतएव यह मानना पड़ता है कि देवसृष्टि मनुष्य-सृष्टि से भिन्न है और ब्राह्मण के मुख से खाई हुई हवि से उसकी तृप्ति होती है ।

इस देवविषय में मनुजी लिखते हैं—

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

अ० ८

कुल्लूकभट्टः—द्युलोकपृथिवीजलहृदयस्थजीवचन्द्रादित्याग्नियमवायुरात्रिसंध्याद्वयधर्माः सर्वे शरीरिणां शुभाशुभकर्मज्ञाः । दिवादीनां चाधिष्ठातृदेवतास्ति सा च शरीरिण्यैकत्रात्र-स्थापिता तत्सर्वं जानातीत्यागमप्रामाण्याद्वेदान्तदर्शनं तदंगी कृत्येदमुक्तम् ।

इसके टीका में कुल्लूकभट्ट लिखते हैं—द्युलोक, पृथिवी, जल, हृदय में रहनेवाला जीव, चन्द्र, आदित्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, दोनों संध्या, धर्म, ये देवता समस्त

शरीरधारियों के शुभ, अशुभ कर्म को जानते हैं। दिन रात्रि संध्या प्रभृति जो लिये हैं ये जो जड़ दिवादिक हैं ये नहीं लिये किन्तु इनके अधिष्ठातृदेवता लिये हैं। वे जो अधिष्ठातृ देवता हैं वे शरीर में स्थापित हैं, वे सब जानते हैं, इसमें वेद प्रमाण है। इसको वेदान्तदर्शन ने स्वीकार किया है उसी को अंगीकार करके हमने यह अर्थ किया है।

मनु के इस श्लोक से देवताओं का मनुष्यजाति से भिन्न होना सिद्ध है फिर नहीं मालूम मनुष्य ही देवता हैं यह बात किस आधार पर मानी जाती है।

व्याकरण मनुष्ययोनि से भिन्न ही देवयोनि मानता है और उसका यह प्रमाण है पढ़िये—

(सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः) सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम् (सूर्यागस्त्ययोश्छेचङ्या च) यलोपः। सूरी। मानुषी।

देवताजाति में उत्पन्न हुई जो सूर्य की स्त्री है व्याकरण कहता है कि उसके लिये "सूर्या" ऐसा स्त्रीप्रत्ययान्त पद बनेगा और यदि सूर्य की स्त्री मनुष्यजाति में पैदा हुई हो तब फिर "सूर्या" नहीं बनेगा किन्तु "सूरी" बनेगा। यहां पर व्याकरण ने देवजाति को मनुष्यजाति से भिन्न माना है।

वेद भगवान् का एक मंत्र हम प्रमाण में देते हैं वह यह है—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥

यजु० १४। २०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, वसु देवता, रुद्र देवता, आदित्य देवता, मरुत देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता, वरुण देवता।

वेद ने ये देवता गिनाये हैं। कोई भी विचारशील मनुष्य इनको मनुष्य नहीं कह सकता और वेद ने किसी भी मंत्र में मनुष्य को देवता नहीं कहा फिर भी कई एक सज्जन मनुष्यों को ही देवता मानते हैं और देवसृष्टि को मानना गपोड़ा बतलाते हैं। इसके कारण दो हो सकते हैं—(१) तो ये लोग पाश्चात्यशिक्षा के भक्त हैं (२) इन्होंने कभी भी वैदिक सिद्धान्त नहीं देखा अतएव ये मनुष्यों को ही देवता मानते हैं किन्तु हमने ये जो थोड़े से प्रमाण दिये हैं ये अकाट्य हैं। इन प्रमाणों के आगे अब कोई भी सज्जन यह सिद्ध नहीं कर सकता कि मनुष्य ही देवता होते हैं।

(२) कई एक सज्जन कहते हैं कि देवता मनुष्यों से भिन्न हैं किन्तु वे जड़ हैं और पुराणों ने देवताओं को चैतन्य माना है अतएव वे पुराण मानने के योग्य नहीं हो सकते।

जिस प्रकार पुराणों ने देवताओं को चैतन्य माना है उसी प्रकार वेद भी देवताओं को चैतन्य मानता है।

त्रया देवा एकादशत्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः ।
वृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तु मा ॥

यजु० अ० २० मं० ११

तीन देवता अथवा एकादश देवता अथवा तेंतीस देवता, अनेक संपत्तिवाले वृहस्पति हैं पुरोहित जिनके, सविता देवता की प्रेरणा से समस्त देवताओं के सहित ये देवता हमारी रक्षा करें।

यदि हम इनको जड़ मान लें और फिर रक्षा की प्रार्थना करें ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि वेद जड़ पदार्थों से प्रार्थना करने की आज्ञा देता है यह वेद पर कलंक होगा। फिर जड़ पदार्थ हमारी स्तुति को कैसे सुनेंगे यह दूसरा कलंक है। जड़ हमारी रक्षा कैसे करेंगे, जड़ों से रक्षा की आशा रखना यह तीसरा कलंक है। फिर जड़ देवताओं को हमारी रक्षा के लिये जड़ सविता देवता कैसे प्रेरणा करेगा। फिर जड़ों के पास विविध सम्पत्ति कहां से आई। इससे भिन्न जड़ देवताओं के जड़ वृहस्पति पुरोहित कैसे बन गये। जड़ों में ये समस्त घटनायें हो नहीं सकतीं अतएव मानना पड़ेगा कि ये देवता चैतन्य हैं।

देवता मनुष्यों को बर देकर रक्षा करते हैं इस विषय में निरुक्त का यह लेख है— "देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्युस्थानो भवति" भक्तों को अभीष्ट फल देने से, प्रकाशक होने से, द्युलोक में रहने से, देवता देवता कहलाता है। और निरुक्त देखिये —

यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मंत्रो भवति।

जिस बल आदि की कामनावाले हुये ऋषि मंत्रद्रष्टा ने जिस देवता में उस बल आदि अर्थ का होना चाहते हुये (अर्थात् अमुक देवता की कृपा से मैं इस अर्थ का स्वामी होऊंगा इस बुद्धि से जिस देवता की स्तुति की है वह उस ऋचा का देवता है) स्तुति प्रयोग की है उस देवतावाला वह मंत्र होता है।

मंत्रद्रष्टा ऋषि ने मंत्र देवता की स्तुति की और उस देवता से अभीष्ट कामना के

मिलने की इच्छा की तो क्या इतने पर भी देवता जड़ ही रहे। यदि वास्तव में देवता जड़ हैं तो फिर जड़ों की स्तुति करनेवाला वेद सर्वोच्च गौरव को कैसे धारण कर सकता है। बात यह है कि वेद तो देवताओं को चैतन्य मानता है किन्तु जो लोग वेद नहीं जानते वह यही समझे बैठे हैं कि देवता जड़ हैं।

देवताओं के चैतन्य होने के अन्य प्रमाण—

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या, इन्द्रमिद्गाथिनो बृहत्।
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणाः, इन्द्राय साम गायत।
नेन्द्राहते पवते धाम किंचन, इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्।
इन्द्रे कामा अयंसतेति।

इन्द्र द्यौ का और पृथ्वी का राज्य करता है। इन्द्र को ही सामगानेवालों ने बृहत्साम से स्तुति किया है। इन्द्र के साथ जुटे हुये यह तृत्सु छोड़े हुये जल की भांति नीचे दौड़े। इन्द्र के लिये साम गाओ। इन्द्र के विना सोम किसी धाम प्रातः सवन आदि स्थान को नहीं पवित्र करता है। इन्द्र के वीर कर्मों को कहता हूं। इन्द्र में हमारी कामनायें बंधी हैं।

इस मंत्र को भगवान् यास्क ने परोक्षकृता स्तुति में लेकर निरुक्त के उदाहरण में रक्खा है। इसका अर्थ भी नहीं बदल सकता। अब पाठक अपने मन से विचारें कि इस मंत्र में जिस इन्द्र का वर्णन है वह जड़ है या चैतन्य है?

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि।
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहेते॥

हे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों के साथ आ कल्याणवाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं। निरुक्त ने यह प्रत्यक्षकृता का उदाहरण दिखलाया है। इन्द्र के दो घोड़े हैं और उत्तम पत्नी है इतने पर भी इन्द्र जड़ है। इसको तो वही मानेगा जिसने बुद्धि को सर्वथा ही बेच डाला हो।

निरुक्त का निर्णय

अथाकारचिन्तनं देवतानाम्। पुरुषविधाः स्युरित्येकं चेतनावद्धि स्तुतयो भवन्ति तथाभिधानानि। अथापि पौरुषविधिकैरङ्गैः

संस्तूयन्ते। अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः। अथापि पौरुषविधिकैः कर्मभिः। अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपि तु यद्दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति। यथो एतच्चेतनावद्वद्धि स्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि। यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्त इत्यचेतनेष्वप्येतद्भवति। अभिक्रंदन्ति हरितेभिरासभिरिति ग्रावस्तुतिः। यथो एतत्पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव। सुखं रथं युयुजे सिंधुरश्विनमिति नदीस्तुतिः। यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरित्येतदपि तादृशमेव। होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशतेति ग्रावस्तुतिरेव। अपि वोभयविधाः स्युरपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्यैष चाख्यानसमयः।

निरुक्त दैवत कां० अ० १ पा० २

निरुक्त ने देवताओं का विचार करते हुये देवताओं के दो प्रकार के रूप बतलाये हैं। (१) पुरुषाकार और (२) जड़। ये दो प्रकार के रूप बतला कर निरुक्त ने इन दोनों की ही पुष्टि की। मनुष्याकार में निरुक्त कहता है कि—"पुरुषों की भाँति हैं, शरीरधारी और चेतन हैं यह एक मत है क्योंकि चेतनवालों की भांति उनकी स्तुतियें हैं तथा उनके बचन सम्भाषण भी चेतनावालों की भांति हैं और वे देवता पुरुषों के सदृश अंगों से स्तुति किये जाते हैं जैसे हे इन्द्र तुझ महान् की बड़ी वा दर्शनीय दोनों भुजायें हैं। हे इन्द्र इन दोनों अपार द्यावा पृथिवी को भी जिस लिये तू पकड़े हुये है हे धनवाले यह तेरी एक मुट्ठी ही है। पुरुषों के सदृश द्रव्यों के संयोग से भी देवता पुरुषविध ही सिद्ध होते हैं जैसे हे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों के साथ आ, कल्याणवाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं। पुरुषविध न होने में स्त्री घर आदि नहीं बन सकते इस लिये पुरुषविध ही हैं। पुरुषों के कर्मों से भी पुरुषविध सिद्ध होते हैं। तेरी ओर प्रस्थित हुये पुरोडास और सोमरस को हे इन्द्र खा और पी। हे सब ओर से सुननेवाले कानोंवाले इन्द्र हमारे बुलावे को सुन। यह खाना पीना सुनना नहीं बन सकता जब तक देवता मनुष्यों के सदृश अंगोंवाले न हों। सो इन प्रमाणों से मंत्रों के देवताओं का पुरुषविध होना सिद्ध है"। निरुक्तकार मुनि यास्क ने इस विषय में कई एक वेद के मंत्र दिये हैं उन मंत्रों से ही देवताओं का पुरुषाकार होना सिद्ध किया है। मंत्रों के टुकड़े लेकर ही यह निरुक्त बना है। बस सिद्ध हो गया कि वेदों में देवता पुरुषाकार और चेतन हैं। यह वेद का एक मत है।

वेद का दूसरा मत है कि देवता जड़ हैं। इस विषय में निरुक्त लिखता है कि "अपुरुषविध हैं। यह दूसरा मत है जैसा कि पूर्व में कहा है कि जल और ज्योति के मिलने से वर्षा का कर्म होता है उस विषय में जो युद्ध के वर्णन हैं वे रूपकमात्र हैं किंच देवताओं का जो रूप दीखता है वह अपुरुषविध है। जैसे अग्नि वायु, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा ये प्रत्यक्षतः अपुरुषविध हैं इनको पुरुषविध मानने में दृष्टहानि होती है इसलिये इनको पुरुषविध माना जा ही नहीं सकता। जब ये पुरुषविध नहीं तो इन्हीं की भांति इन्द्रादि परोक्ष देवता भी अपुरुषविध ही हैं। जो यह कहा है कि चेतनावालों की भाँति स्तुतियें होती हैं इसलिये पुरुषविध हैं। इसका उत्तर यह है कि अचेतन जड़ वा बेसमझ भी इस प्रकार स्तुत किये जाते हैं जैसे अक्ष से लेकर ओषधियों पर्यन्त। और जो यह कहा है कि पुरुषों के से अंगों से स्तुति किये जाते हैं यह भी अचेतनों में होता है। यह सोमग्राव अपने हरे सोमरस से भीगे मुखों से देवताओं को यज्ञ में आने के लिये पुकारते हैं। पत्थरों के मुख नहीं होते सो जैसे यहां औपचारिक वर्णन है वैसे इन्द्रादि में है और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश द्रव्यों के संबंधों से यह भी औपचारिक ही है। सिंधु ने जगत् के लिये सुख का हेतु घोड़े से युक्त रथ जोड़ा है। इस स्तुति में यथाऽभिहित अर्थ बन सकना असंभव है क्योंकि बहती हुई नदी की रथ में स्थिति नहीं होती है। जैसे असंभव होने से यहां रूपक कल्पना है वैसे अन्यत्र भी रूपक से स्तुतियें जाननी चाहिये। और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश कर्मों से यह भी वैसा ही है। जैसा होता अग्नि से भी पहले ही खाने योग्य हवि को खाते हो यह ग्रावस्तुति ही है। पत्थरों में मुख्य खाना नहीं बन सकता इसलिये यह भी रूपक है"। यास्क ने जड़पक्ष को भी वेद ही से दिखलाया है। यह नियम अटल है कि जहाँ पर श्रुति और स्मृति में भेद पड़ जाय वहाँ पर स्मृति को छोड़ देते हैं और श्रुति को मान लेते हैं किन्तु जहां पर श्रुति में भेद पड़ जाय वहां पर श्रुति के कहे हुये दोनों ही पक्ष आदरणीय होते हैं। इस विषय में धर्मशास्त्र की व्यवस्था यह है—

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः॥

मनु० अ० २ श्लोक० १४

श्रुतियों के जहां दो प्रकार हों अर्थात् भिन्न भिन्न अर्थ का प्रतिपादन हो वहां वे दोनों तुल्य बल के कारण ही धर्म हैं दोनों विकल्प से अनुष्ठेय हैं, यह ऋषियों ने कहा है।

इस सिद्धान्त को लेकर वेद मंत्रोक्तदेवताओं में दो भेद मानने होंगे—(१) पुरुषाकार चैतन्य और (२) जड़। जहां पर मनुष्यों कैसे व्यवहारों के साथ इन्द्रादिक

देवताओं का ग्रहण होगा वहां पर चैतन्य मानने होंगे और जहां पर ग्राव (पत्थर) आदि शब्द होंगे वहां पर देवता जड़ मानने होंगे। दोनों ही श्रुतियों का आदर करना होगा।

फिर यास्क स्वतः लिखते हैं कि "अथवा दोनों प्रकार के हो सकते हैं"। जिस प्रकार से धर्मशास्त्र दोनों ही पक्षों को स्वीकार करता है इसी प्रकार यास्क मुनि दोनों ही पक्षों को स्वीकार करते हैं। फिर इसके आगे यास्क लिखते हैं कि "अथवा पुरुषविध ही हुओं के यह प्रत्यक्ष दृश्य अग्नि आदि कर्मात्मा कर्मक्षेत्र हैं। जैसे यज्ञ यजमान का कर्मात्मा है यह ऐतिहासिकों का सिद्धान्त है"। यहां पर यास्क ने देवों को दृश्य और अधिष्ठातृ भेद से सर्वथा ही चैतन्य मान लिया है। यास्क के विरुद्ध कोई भी आस्तिक वैदिक मनुष्य जवान नहीं हिला सकता।

* यक्षदेव प्रसंग *

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१४॥ तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥१५॥ तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥१६॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥१७॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं ँ सर्वं दहेयम्। यदिदं पृथिव्यामिति ॥१८॥ तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं सतत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१९॥ अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥२०॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥२१॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥२२॥ तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं सतत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥२३॥ अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥२४॥

तलवकारोपनिषत्।

(ब्रह्म) ईश्वर (ह) प्रसिद्ध (देवेभ्यः) देवताओं से (विजिग्ये) विजय प्राप्त करता भया (तस्य) उस (ह) प्रसिद्ध (ब्रह्मणः) ब्रह्म के (विजये) विजय में (देवाः) अग्नि आदि देवता (अमहीयन्त) महत्व को प्राप्त हुये (ते) वे देव (ह) निश्चय से (ऐक्षन्त) मानते हैं (अस्माकम्) हमारी (एव) ही (अयम्) यह (विजयः) जीत है और (अस्माकम्) हमारी (एव) ही (अयम्) यह (महिमा इति) महिमा है ॥१४॥ (एषाम्) इन देवताओं के (तत्) उस अज्ञान को (तत्) वह ब्रह्म (विजज्ञौ) जान गया (तेभ्यः) उन देवताओं के लिये (तत्) ब्रह्म (ह) निश्चय (प्रादुर्बभूव) प्रकट हुआ (इदम्) यह (यक्षम्) यक्ष (किम्) कौन है (इति) यह (तत्) उसको (ते) वे देव (न) नहीं (व्यजानन्त) जानते भये ॥१५॥ (ते) वे देव (अग्निम्) अग्नि देव को (अब्रुवन्) बोले (जातवेदः) अग्नि (एतत्) इसको (विजानीहि) तुम पहिचानो (किम्) कौन (एतत्) यह (यक्षम्) यक्ष है (इति) यह सुन कर अग्नि बोला (तथेति) बहुत अच्छा ॥१६॥ (तत्) उस तेज के पास अग्नि (अभ्यद्रवत्) गया (तम्) अग्नि को ब्रह्म (अभ्यवदत्) बोला (कः) कौन (असीति) है (अग्निः) अग्नि (वै) निश्चय से (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (इति) यह (अब्रवीत्) बोला (जातवेदा) जातवेदा (वै) निश्चय (अहम्) मैं (अस्मि) हूं ॥ १७ ॥ (तस्मिन्) ऐसे (त्वयि) तुझमें (किम्) क्या (वीर्यम्) वीर्य पराक्रम है (इति) इसको सुनकर (अपि) बोला (इदम्) इस (सर्वम्) सब जगत् को (अग्नि) निश्चय से (दहेयम्) फूंक सकता हूं (यत्) जो (इदम्) यह (पृथिव्याम्) पृथ्वी पर जो चराचर हैं उन सबको (दहेयम्) फूंक सकता हूं ॥ १८ ॥ (तस्मै) उस अग्नि के लिये (तृणम्) एक तिनका (निदधौ) धरके (एतत्) इस को (दह) जला दे (इति) यह कहा (तत्) उस तृण के पास (सर्वजवेन) समस्त वेग से (उपप्रेयाय) अग्नि गया परन्तु (तत्) उसको (दग्धुम्) भस्म करने को (न शशाक) समर्थ न हुआ (सः) वह अग्नि (तत एव) उसी समय उससे (निववृते) हटा और वायु आदि के पास आकर बोला (न, एतत्, अशकं, विज्ञातुं, यत्, एतत्, यक्षम्, इति) यह सर्वोपरि बलवान् सर्वपूज्य कौन है मैं इसको नहीं समझ सकता ॥ १९ ॥ (अथ) इसके आगे देवता (वायुम्) वायु को (अब्रुवन्) बोले कि हे वायो ! (एतत्) इसको (विजानीहि) तुम जानो (किमेतत्, यक्षम्) यह सर्वोपरि पूज्य बलवान् तेजस्वी यक्ष कौन है ॥ २०॥ वह वायु (तत्) उस ब्रह्म के (अभ्यद्रवत्) सन्मुख गया (तम्) उसको ब्रह्म ने कहा (कः, असि, इति) कौन है ऐसा (अभ्यवदत्) कहा कि (वै) निश्चय (अहम्, वायुः, अस्मि, इति) मैं वायु हूं (अहम्) मैं (मातरिश्वा, अस्मि, इति) अंतरिक्ष में चलनेवाला मातरिश्वा हूं (अब्रवीत्) बोला ॥ २१ ॥ (तस्मिन्) उस (त्वयि) तुझमें (किम्) क्या (वीर्यम्) पराक्रम है (यत्) जो (इदम्) यह (पृथिव्यामिति) पृथिवी पर है (तत्) उसको (आददीयम्) पकड़ कर उड़ा दूं ॥ २२ ॥ (तस्मै) उस वायु के लिये वह ब्रह्म (तृणम्)

तृण को (निदधौ) धर कर बोला (एतत्) इसको (आदत्स्व इति) उठा कर उड़ा (तत्) उसको उड़ाने के लिये वायु (सर्व जवेन) पूर्ण वेग से (उपप्रेयाय) उसके समीप गया लेकिन (तत्) उसको (आदातुम्) उठाने को (न शशाक) नहीं समर्थ हुआ (सः) वह वायु (ततः, एव) उसी समय तृण से (निवदृते) लौटा और अग्नि आदि से आकर कहा कि (यत्, एतत् यक्षम्, इति) यह प्रत्यक्ष तेजस्वी यक्ष कौन है (एतत्, विज्ञातुम्, न, अशकम्) इसको जानने की मेरी सामर्थ्य नहीं ॥ २३ ॥ (अथ) वायु के लौट आने के पश्चात् देवताओं ने इन्द्र से कहा कि हे (मघवन्) इन्द्र! (एतत्, किम्, यक्षम्) यह यक्ष पूज्य कौन है ऐसा तू (एतत्) इसको (विजानीहि) जानो इन्द्र को देवता जब ऐसा (अब्रुवन्) बोले तब इन्द्र (तथेति) बहुत अच्छा कह कर (तत्) उस ब्रह्म के समीप (अभ्यद्रवत्) गया (तस्मात्) उस इन्द्र से (तिरोदधे) वह ब्रह्म अन्तर्धान हो गया ॥ २४ ॥

इस आख्यायिका में यक्ष स्वरूप ईश्वर से अग्नि, वायु, इन्द्र प्रभृति देवताओं का विस्तृत वार्तालाप हुआ है और यह आख्यायिका भी वैदिक है फिर हम कैसे मान लें कि देवता जड़ हैं।

देवपत्नी

इन्द्राणीमासु नारीषु सुभगामहमश्रवम् ।
न ह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिः ॥

यजु० अ० ८ मं० ३

यज्ञ में आचार्य कहता है कि समस्त नारीगणों में हमने इन्द्राणी इन्द्र की स्त्री को सौभाग्यवती सुना है। इसका पति अन्य स्त्रियों के पति के समान जरावस्था में आकर नहीं मरता है अर्थात् इसका पति अमर है।

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिंद्राणी
अग्नायी अश्विनी राट् ।
आरोदसी वरुणानी शृणोतु
व्यन्तुदेवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥

यजु० अ० ७ मं० ११

इस मंत्र में इन्द्राणी, अग्नायी, अश्विनी, आरोदसी, वरुणानी इन पांच देवपत्नियों का वर्णन है। ग्ना स्त्री को कहते हैं। रुद्र की पत्नी रोदसी कहाती है।

"इन्द्रवरुणभवशर्वरुमृड" इस सूत्र से इन्द्रादि शब्दों से वाच्य होने पर आनुगागम होता है और ङीष् प्रत्यय होता है।

अन्य प्रमाण—

देवानां पत्नीरुपतीरवंतुनः।

यजु० अ० ४ मं० २८

इस मंत्र में भी देवपत्नी से रक्षा की प्रार्थना की गई है।

पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवान्।

अथर्व० ३। ६। ९

पत्नीवाले हैं तीस और तीन देवता।

जड़ पदार्थों के पत्नी नहीं होती। वेद देवताओं के पत्नी बतलाता है अब पाठक निर्णय करें कि देवता जड़ हैं या चैतन्य।

(३) कई एक सज्जनों का कथन है कि पुराणों में देवताओं का निवास स्थान स्वर्ग विशेषलोक बतलाया है यह निरी गप्प है। सुखदायक अवस्था देश को स्वर्ग और दुःखदायक अवस्था देश को नर्क कहते हैं। स्वर्ग कोई विशेष स्थान नहीं है।

* लोक निर्णय *

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानस्तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि वहूनि नामधेयानि भवंति।

नि० दैवतकां० अ० ७ खं० ५

यह तीन देवता हैं—अग्नि पृथ्वी स्थान में, वायु वा इद्र अन्तरिक्ष स्थान में और सूर्य द्युस्थान में इन महाभाग्यों के बहुत नाम होते हैं।

यह निरुक्त का लेख है। भौतिक अग्नि जो पृथ्वी पर है यह देवता है और इसका अभिमानी साक्षात् अग्निदेवता चैतन्य है और वह स्वर्ग में रहता है। वही चैतन्य देवता यज्ञ की हवि को पृथ्वी से लेकर स्वर्ग में देवताओं के पास पहुंचा देता है इसी कारण वेद ने अग्नि को देवदूत लिखा है। इसी प्रकार वायु जिसमें वहन क्रिया है यह अन्तरिक्ष में रहता है किन्तु इसका अभिमानी वायुदेवता जो तलवकारोपनिषद्ध में

यज्ञ से बातें करता था स्वर्ग में रहता है। द्युलोक में दृश्यमान् सूर्य देवता है जिसके प्रकाश से जगत् स्थिर रहता है किन्तु सूर्याभिमानी देवता स्वर्ग में रहता है। भौतिक अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य आदि देवता जो दृश्यमान् हैं ये स्वर्गीयदेवताओं के शरीर हैं इन दृश्य देवताओं में किया हुआ पूजन स्वर्गीय देवताओं को पहुंच जाता है यह वेद की व्यवस्था है किन्तु वेद पितर और देवताओं का निवास भूतल पर नहीं मानता देखिये—

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥

अथर्व० कां १८ अ० २ सू० २ मं० ४८

आकाश का जो प्रथम भाग है जहां तक जल के परमाणु जाते हैं उसको उदन्वती कहते हैं और इसके ऊपर आकाश का जो मध्यम भाग है जहां पर सूर्य की किरणें अधिक पड़ती हैं उसको पीलु कहते हैं इसके ऊपर जो आकाश का तृतीय भाग है जिसमें सूर्य और ताराओं का अधिक प्रकाश पड़ता है उसको प्रद्यौ कहते हैं उसी भाग में पितृलोक है वहां पर पितर रहते हैं।

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपियन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम्॥ अ० ४।३४।२
घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः॥ ४।३४।६
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति
विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अंगैरह्रुताः स्वर्गे
तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥ ६।१२०।३

अस्थिरहित, पवित्र वायु से निर्मल, स्वच्छ हुये जीव स्वर्गलोक को पहुंचते हैं

उनका शिश्न कामाग्नि जला नहीं सकता, स्वर्गलोक में इनके लिये बहुत स्त्रियां हैं। जिनमें घृत के तड़ाग हैं, जिनके किनारों पर शहद है, जिनमें अमृत ही जल है, दूध से और दही से जो भरे हैं तेरे लिये ये सब धारा बन कर स्वर्ग में प्राप्त हो। जिस स्वर्ग में मित्रतायुक्त सुकृतीजन अपने शरीर का रोग छोड़ कर पुण्य शरीर से आनन्द करते हैं उसमें हम अपने माता पिता और पुत्रों को देखें।

पृथ्वी से स्वर्ग कितनी दूर है इसका विवेचन करते हुये वेद लिखता है कि—

सहस्राश्वीनेवाइतः स्वर्गो लोकः।

ऐतरेय० ब्रा० ७। ७

बड़े मजबूत, पवन के समान वेग रखनेवाले एक सहस्र घोड़े एक दिन में जितने मार्ग को चल सकते हैं उतनी दूर यहां से स्वर्ग है।

स्वर्ग का महत्व यह है—

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२

कठोपनिषत्।

स्वर्गलोक में किसी प्रकार का भय नहीं है वहां तुम बुढ़ापे से नहीं डरोगे क्योंकि स्वर्गस्थ देव बूढे नहीं होते, भूख और प्यास इन दोनों को पार करके शोक को छोड़ कर तुम भोगों को भोगोगे। यम निचकेता से यह कह रहा है स्वर्ग के प्राणियों को कोई भय नहीं, स्वर्ग के प्राणी बूढे नहीं होते, स्वर्ग के प्राणियों को भूख और प्यास नहीं लगती, स्वर्ग के प्राणियों को शोक नहीं होता वे सर्वदा आनंद भोगा करते हैं तुम हम से स्वर्ग प्राप्ति का वरदान मांग लो तुम भी ऐसे ही हो जाओगे।

इसी स्वर्ग में देवता रहते हैं। वेद भगवान् इस विषय में लिखता है कि—

दिवि देवा दिविश्रितः।

अथर्व० ११। ४। ७। २३

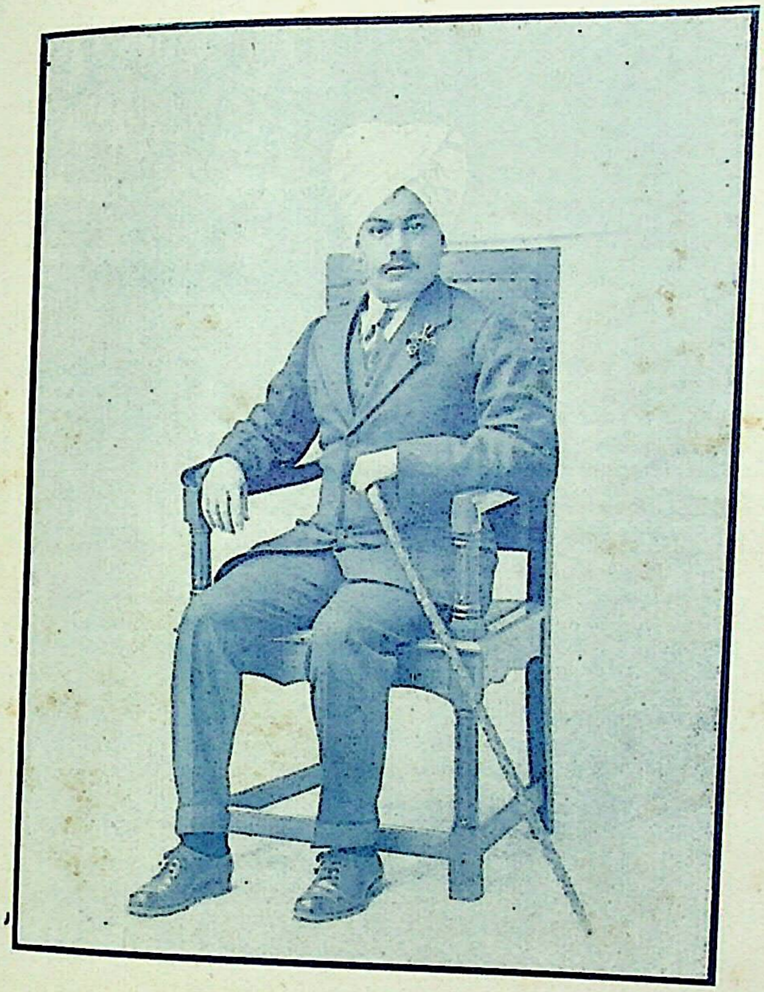
स्वर्ग में जो देवता हैं वे दिविश्रित हैं।

इतिश्रीकालूरामरचितपुराणवर्मणि देवसत्तागदो नवमः।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, क्षत्रिय-कुल-कमल-दिवाकर

श्री १०५ राणा दुर्गासिंहजी साहब

सोलन-नरेश ।



पुराणधर्म के लिये सहायता २००)

सर्वदा से क्षत्रिय ही धर्म का पालन और धर्म की रक्षा करते आये हैं। जब तक भारतवर्ष में क्षत्रिय का एक भी बच्चा रहेगा तब तक हिन्दूधर्म की तरफ कोई अंगुली नहीं उठा सकता। आजकल जो पुराणों को मिथ्या बतलाते हैं वे पुराणमहत्त्व से अनभिज्ञ हैं। इतिहास और पुराण ही वेदों के अर्थ को स्पष्ट करते हैं इनके बिना वेदार्थ का पता भी नहीं लगेगा महर्षि वेदव्यास ने लिखा है कि—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

श्रीगणेशाय नमः ।

* देवसंख्यापादः *

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते
ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ।
अजोऽनुवद्धः सगुणैरजाया
गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥१॥

(१) कई एक सज्जनों का कथन यह है कि देवता चैतन्य भी हैं और स्वर्ग में भी रहते हैं यह बात तो वेद से सिद्ध है किन्तु पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता लिखे हैं, देवताओं की इतनी संख्या लिखना पुराणों की अनभिज्ञता है, अधिक से अधिक देवता तेंतीस हो सकते हैं।

हमने अट्ठारह पुराणों का अवलोकन किया किन्तु पुराणों में तेंतीस करोड़ देवसंख्या कहीं पर भी लिखी हुई नहीं मिली। पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता हैं इस कहने का और लिखने का प्रयोजन इतना है कि तेंतीस करोड़ देवसंख्या सुन कर मनुष्यों को पुराणों से घृणा हो जावे और संसार से पुराणों का मानना छूट जावे। देवसंख्या कितनी है इसका विवेचन इस प्रकार है। निरुक्त ने अग्नि, वायु (इन्द्र) सूर्य ये तीन देवता माने और शेष समस्त देवता इनके अंग माने इसको हम "देवसत्तापाद" में लिख आये हैं। जिस प्रकार विराट् से समस्त सृष्टि का उद्भव होता है और फिर समस्त सृष्टि विराट् में मिल जाती है। जैसे विराट् को समस्त सृष्टि का निधान माना है इसी प्रकार अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन देवताओं में से समस्त देवता उद्भूत होते हैं और अन्त में इन्हीं में लय होते हैं अतएव निरुक्त ने प्रथम देवसंख्या तीन मानी है, इस तीन संख्या में ही समस्त देवताओं को ले लिया है।

वेद के एक मंत्र में देवसंख्या त्रिविध है उस मंत्र में प्रथम तीन देवता बतलाये हैं, फिर एकादश देव बतलाये हैं फिर तीस देवता बतलाये हैं। "त्रया देवा एकादश-त्रयस्त्रिꣳशाः ११। २०" अर्थात् तीन देवता, ग्यारह देवता और तीस देवता। समस्त मंत्र और उसका अर्थ हम देवसत्तापाद में लिख आये हैं वहां पर ही देखना चाहिए।

इसके आगे यजुर्वेद का एक मंत्र कहता है कि—अग्नि १, वायु २, सूर्य ३, चन्द्रमा ४, अष्टवसु १२, एकादश रुद्र २३, द्वादश आदित्य ३५, सात मरुत ४२,

त्रयोदश विश्वेदेवा ५५, एक बृहस्पति ५६, इन्द्र देवता ५७, वरुण देवता ५८ ये अट्ठावन देवता हैं।

इस देवसंख्या को गिनवानेवाला मंत्र "अग्निर्देवता० १४। २०" देवसत्तापाद में लिख आये हैं। कई एक सज्जन जो व्याकरणशून्य हैं वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत, विश्वेदेव, मंत्र के इन पदों से एक एक देवता ले कर देवसंख्या बारह बतलाते हैं किन्तु यह उनकी अनभिज्ञता है क्योंकि ये सब पद बहुवचनान्त हैं, बहुवचनान्त होने से समस्त संख्या ली जाती है। समस्त संख्या को लेकर इस मंत्र में देवसंख्या ५८ अट्ठावन है।

अथर्व वेद के एक मंत्र में सपत्नीक तेंतीस देवता बतलाये हैं देखिये—"पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवान् ३। ६। ९" तीस और तीन तेंतीस देवता पत्नीवाले हैं। देवताओं की पत्नी भी देवता ही होती हैं इस मंत्र ने देवसंख्या ६६ छासठ बतलाई है। इसके आगे एक मंत्र और देखिये—

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनुसंयंति सर्वे।
गंधर्वा एनमन्वायंस्त्रयस्त्रिंश-
त्त्रिशताः षट् सहस्राः।
सर्वान्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥
११। ५। २

ब्रह्मचारी जिस समय यज्ञ करने को उद्यत होता है उस समय सूक्ष्म रूप से पितर, गंधर्व और छैसहस्रतीनसौतेतीस देवता अलग अलग उसके पास जाकर उपस्थित होते हैं और वह यज्ञ के द्वारा उन सब को तृप्त करता है।

इस मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि छःहजारतीनसौतेंतीस देवता सूक्ष्मरूप से ब्रह्मचारी के पास आते हैं और वह उनको तृप्त करता है। आगे भी देखिये।

त्रीणिशतानि त्रीणिसहस्राण्यग्निन्त्रिंᳬ शच्च देवानवचा सपर्यन्।
औक्षन्घृतैरस्तृणर्हिरस्मा आदिद्धोतारन्यसादयन्त ॥ यजु० अ० ३३ मं० ७

तीनहजारतीनसौउन्तालीस देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृकर्म में नियुक्त किया।

इस मंत्र में तीनहजारतीनसौतीस संख्या तो पृथक् है और नव संख्या आगे है। किसी किसी आचार्य ने तीनहजारतीनसौतीस में नव संख्या का योग कर दिया है उसके मत में तो ३३३९ देवता होते हैं किन्तु किसी किसी आचार्य ने तीन हजार को तीन सौ संख्या से गुणा किया और आगे तीस तथा नौ का योग किया है उसके मत में "९०००३९ देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया" अर्थ हुआ। किसी किसी आचार्य का मत है कि "३३३० इन चार अंकों को इन्हीं के स्वरूप में नव अंक कर दो, नौ अंक करवानेवालों के मत में ३३३३३३३३० देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया" यह अर्थ हुआ।

संसार में जो लोकोक्ति है कि देवता तेंतीस करोड़ हैं यह लोकोक्ति पुराणों को लेकर नहीं है किन्तु "त्रीणि शतानि" इस मंत्र के तृतीय अर्थ को लेकर है इस बात को मनुष्य नहीं जानते और इसको गप्प समझ कर पुराणों के मत्थे मढ़ देते हैं वेद् में देव-संख्या के नव अंक हैं इसमें प्रमाण भी मिलता है वह यह है—

नवैवाङ्कास्त्रिवृद्धाः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः ।
ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदतः ॥

देवताओं के जो दश गण हैं उनसे और ब्रह्म विष्णु रुद्र और इनकी शक्ति तथा वर्ण इनके भेद से त्रिवृद्ध देवसंख्या के नौ अंक हैं।

वेदों में लिखी हुई देवसंख्या को पाठक अवलोकन कर चुके किन्तु पुराणों में इस प्रकार देवसंख्या किसी पुराण के किसी भी स्थल में नहीं लिखी। बिना लिखे ही शोर गुल मचाया करते हैं। एक समय कमालगंज में एक मनुष्य शास्त्रार्थ करने को आया उसने अपने शास्त्रार्थ में कोई भी पक्ष स्थापन न करके यह पूछा कि पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता लिखे हैं तुम उनके नाम लिखवाओ। हमने इसके उत्तर में कहा कि पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता कहाँ लिखे हैं प्रथम तुम लिखे हुये दिखलाओ। पन्ने तो बहुत उथले किन्तु तेंतीस करोड़ देवता किसी पुराण में लिखे नहीं मिले। जब नहीं मिले तब यह चुपचाप चल दिये। बस अब सिद्ध हो गया कि पुराणों में देवसंख्या तेंतीस करोड़ नहीं है किन्तु "त्रीणि शतानि" इस मंत्र के तृतीयार्थ से सिद्ध होती है उसी अर्थ को लेकर संसार में तेंतीस करोड़ देवता हैं यह लोकोक्ति है। देवता कोई अन्य बला नहीं

है किन्तु ईश्वर के अंग हैं। देवताओं को जान लेना मनुष्य की बुद्धि से बाहर है, वेद ने जो संख्या बतलाई है उसी पर विश्वास करना यह आस्तिकों का काम है।

(२) किसी किसी सज्जन का कथन है हमने मान लिया कि तेंतीस करोड़ देवता हैं किन्तु उन तेंतीस करोड़ देवताओं के नाम बतलाओ।

तेंतीस करोड़ देवता किसी मनुष्य ने नहीं बतलाये, वेद ने बतलाये हैं। इस कारण वेद के प्रकट करनेवाले जगदीश्वर से ही तेंतीस करोड़ देवताओं के नाम पूछना चाहिये। देववाद परोक्षवाद है। मनुष्यों को तो यह भी पता नहीं कि देवता हैं या नहीं हैं और यदि हैं तो कितने हैं। मनुष्यों को इस विषय का जो कुछ भी ज्ञान होता है वह वेद से होता है। यदि वेद ने देवताओं के बहुसंख्या में नाम नहीं लिखे तो फिर मनुष्य बतलावेगा कहां से अतएव जिसको देवताओं के नाम पूछने हों वह ईश्वर से पूछ ले। यदि ईश्वर की कृपा का पात्र नहीं बना है तो मौन धारण करके अपने घर में बैठे।

किसी वस्तु की संख्या बतलाई जावे और संख्या के अन्तर्गत आनेवाले पदार्थों में से प्रत्येक का नाम न बतलाया जावे तो इससे संख्या गलत नहीं होती। एक मनुष्य ने किसी से कहा कि भूमंडल पर दो अर्ब मनुष्य हैं। उससे पूछा कि तुमने कैसे जाना? जवाब दिया कि मर्दुमशुमारी की गणना से। फिर सवाल किया कि दो अर्ब मनुष्यों के नाम बतलाओ? उसने उत्तर दिया कि नाम हम नहीं जानते, तो नाम न जानने पर जनसंख्या की गणना अमान्य हो जावेगी? विज्ञानवेत्ताओं ने तारागण की संख्या अनुमानतः चालीस करोड़ बतलाई है यदि वे चालीस करोड़ ताराओं के नाम न जानें तो क्या इतने से संख्या भी अशुद्ध हो जावेगी? एक बड़ी संख्या में प्रत्येक का नाम पूछना यह केवल वितण्डा है।

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मणि देवसंख्यापादो दशमः।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक

श्री १०५ सेठ रामचरणलालजी साहब

अबराडीन लाइन यंडमान।



पुराणधर्म के लिये सहायता २००)

वर्तमान समय में भी भारतवर्ष को भूमि संसार की समस्त भूमियों में श्रेष्ठ है। छः ऋतु का विकाश केवल भारतभूमि पर ही होता है। भारतभूमि का गौरव पुराणों में ही लिखा है। अपने देश के गौरव को मिटानेवाले ही पुराणों का खंडन करते हैं। यह शोक की बात है कि मुसलमानों के प्रबल विद्वान् पंडित अल्वेरुणी ने जिन पुराणों की भूरि २ प्रशंसा की है आज उनको हिन्दू ही मिथ्या कहते हैं। पुराणों का प्रादुर्भाव वेदों के साथ हुआ है देखिये—

पुराणं सर्वशास्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
तदंतरं च वक्त्रेभ्यो वेदस्तस्य विनिर्गताः॥

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

* श्रीगणेशाय नमः *

देवशक्तिपादः

गजाननं चारुविशालनेत्रं
मौञ्जीधरं मूषकवाहनं च ।
चतुर्भुजं चंचलकर्णयुग्मं
गणाधिपं गौरिसुतं नमामि ॥ १ ॥

(१) कई एक सज्जनों का कथन है कि देवशक्ति पुराणों में एक अद्भुत शक्ति है जो बात मनुष्यों की बुद्धि में किसी प्रकार भी न आ सके उसको देवशक्ति की उपाधि दे दी जाती है। इसमें बड़ी बड़ी गप्पों की रचना को छोड़ कर और कुछ भी सार नहीं प्रतीत होता।

देवशक्ति की अद्भुत आश्चर्यजनक घटना पुराणों ने ही नहीं लिखी वेद ने भी लिखी है, नीचे देखिये—

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयत एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति । अपि च सत्वानां प्रकृतिभूमिभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः प्रकृतिसार्वनाम्न्याच्चेतरेतरजन्मानो भवन्तीतरेतरप्रकृतयः कर्मजन्मान आत्मजन्मान आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्व आत्मायुधमात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य ।

निरुक्त दैवत कां० अ० १ पा० १

जैसा कि यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि मनुष्यों के अश्व आदि आगन्तुक होते हैं नकि उनका अपना स्वरूप। यहां ऐसा नहीं किन्तु देवता का बड़ा ऐश्वर्य होने से एक आत्मा देवता अनेक प्रकार से स्तुति किया है (भिन्न देवतारूपों से भी अश्वादि साधनों से भी)। एक आत्मा के दूसरे देवता प्रत्यंग होते हैं किञ्च अश्वादि द्रव्यों की प्रकृति की महिमाओं से ऋषि स्तुति करते हैं, यह कहते हैं और प्रकृति के सारे नाम होने से भी देवता एक दूसरे से जन्मवाले होते हैं (जो एक देवता जिस देवता का पुत्र है उसी का पिता भी है) और एक दूसरे की प्रकृति होते हैं। कर्मों से इनके जन्म होते हैं, आत्मा से इनके जन्म होते हैं, आत्मा ही इनका रथ होता है, आत्मा ही अश्व, आत्मा ही शस्त्र, आत्मा ही बाण, आत्मा ही सब कुछ होता है देवता का।

और देखिये—

यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवता भवति। "रूपं रूपं मघवा वोभवीति" इत्यपि निगमो भवति॥

नि० अ० १० खण्ड १७

जिस जिस रूप को चाहता है वही वही रूप देवता हो जाता है। धनवान् इन्द्र रूप रूप (हर एक रूप) फिर फिर होता है यह भी निगम होता है।

कठोपनिषत् की "स्वर्गे लोके" इस श्रुति में लिखा है कि (१) स्वर्ग में किसी प्रकार का भय नहीं (२) स्वर्ग में बुढ़ापा नहीं आता (३) स्वर्ग में भूख और प्यास नहीं लगती (४) स्वर्ग में शोक नहीं होता (५) स्वर्गस्थ देवताओं को बड़े बड़े भोग भोगने के लिये मिलते हैं फिर निरुक्त में यास्क ने लिखा है कि (६) देवताओं के आगन्तुक वाहन नहीं होते, देवता अपने स्वरूप से ही अपना वाहन बना लेता है (७) एक देवता अनेक रूप रखता है इसी कारण वेद ने प्रत्येक देवता को अनेक रूपों से स्तुति किया है (८) देवता एक दूसरे से जन्म धारण करता है अर्थात् जो देवता जिस देवता का पुत्र है उसी का पिता भी है (९) इसके जन्म आत्मा से होते हैं (१०) यदि कोई कहे कि हम ये सब बातें जड़ में घटा लेंगे तो जड़ पदार्थ कर्म जन्मवाले नहीं होते। ये सब कर्म जन्मवाले हैं (११) आत्मा ही इनका रथ है (१२) आत्मा ही इनका घोड़ा है (१३) आत्मा ही आयुध है (१४) आत्मा ही बाण है (१५) देवता का सब कुछ आत्मा ही होता है (१६) देवता स्वर्ग में बने रहते हैं। स्वर्ग में रहते हुये भी सूर्य, अग्नि, चन्द्र प्रभृति मण्डलों में व्यापक रहते हैं (१७) देवता जैसा रूप चाहता है वैसा धारण कर लेता है। (१८) देवता जन्म से ही विद्वान् होता है। वेदों में ये देवताओं की अद्भुत शक्तियां हैं। जो शक्तियां वेदों में हैं वही शक्तियां पुराणों में हैं फिर नहीं मालूम देवताओं में विशेष शक्ति रहने के कारण पुराण क्यों अमान्य हो गये और वेद क्यों मान्य हो गये। वास्तव में मनुष्य नास्तिक हो गये हैं यदि उनको यह मालूम हो जावे कि वेदों में भी अचिन्त्य देवशक्तियां हैं ऐसा समझने पर वे वेदों को तिलांजलि दे दें तो इसमें कुछ आश्चर्य न समझो। कोई इन शक्तियों को माने या न माने यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। हमको यहां पर इतना दिखलाना था कि जो अद्भुत देवशक्तियां पुराणों में लिखी हैं वे ही शक्तियां वेदों में वर्णित हैं।

मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि जो लोग ईश्वरीय ज्ञान वेद को प्रमाण कोटि में नहीं लेते वे लोग देवशक्तियों को देख कर वेदों को भी अमान्य ठहराने का उद्योग करेंगे। विद्वत्ता को आगे रख कर वे वेदों के लिये एक अक्षर भी नहीं कह सकते तथापि "ऐसा

होना ही असम्भव है" अपने इस मनमाने सिद्धान्त को आगे रख कर वेदों के विषय में मनुष्यों की श्रद्धा को धक्का पहुंचाने का उद्योग करेंगे। ऐसा करना मूर्खों को ही शोभा देता है। विद्वान् लोग जब तक पूर्ण विचार न कर लें तब तक किसी ग्रंथ पर भी असंभव होने का कलंक नहीं लगाते। देवता तो अदृश्य हैं। हम दृश्यसृष्टि को देख कर ही चकित हो जाते हैं। जैसे ईश्वर की दृश्यसृष्टि में एक बनमक्षिका दंश (डांस) नाम से प्रसिद्ध है वह प्रायः मनुष्य और पशुओं के रुधिर को ही खाती है उस बनमक्षिका के गुद नहीं होती। सर्प के कान नहीं होते किन्तु वह सुनता है। सहस्रों कीट चातुर्मास्य में बिना मां बाप के उत्पन्न होते हैं। जब दृश्यसृष्टि में ही अद्भुत चमत्कार देखने में आते हैं तब अदृश्य की कौन बातें करे। मनुष्य उत्पन्न होने के पश्चात् जब दश बारह वर्ष का हो लेता है तब यह तैरना सीखता है। तैरने की शिक्षा पाने के पश्चात् यह बड़े बड़े नदी नालों को तैर जाता है किन्तु गौ के बच्चे को तैरने की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। गाय का चार दिन का बच्चा छोटी नदी को पार कर जाता है। यह मनुष्य और गाय की शक्ति का भेद है। मंडूक शीतकाल में पृथ्वी के अंदर घुसते चले जाते हैं। बाज बाज मंडूक जमीन में पांच सात हाथ धँस जाता है। वहां पर वायु नहीं जाता तब भी मंडूक अपने जीवन को रखता है। बिना वायु के जीवन को धारण करना यह मंडूक की विशेष शक्ति है। जब दृश्यमानसृष्टि में ही अद्भुत घटनायें दृष्टिगोचर हो रही हैं फिर हम कैसे मान लें कि देवताओं में अद्भुत शक्तियां नहीं हैं। अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि जो देवताओं की शक्तियां हैं योगी होने पर ये शक्तियां मनुष्य में भी आ जाती हैं इस विषय में योगदर्शन बड़े जोर के साथ लिखता है कि योगी को अष्टसिद्धियां प्राप्त होती हैं जिसको शंका हो योगदर्शन देख ले।

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मणि देवशक्तिपाद एकादशः।

श्रीगणेशाय नमः।

* देवचरित्रपादः *

आनन्दमात्रमकरन्दमनन्तगन्धं
योगीन्द्रसुस्थिरमिलिन्दमपास्तवन्धम्।
वेदान्तसूर्यकिरणैकविकाशशीलं
हेरम्ब पादशरदम्बुजमानतोस्मि ॥१॥

(१) किसी किसी सज्जन का कथन है कि देवचरित्र पुराणों में एक अद्भुत चरित्र है किसी भी देवता को कलंकित किये बिना नहीं छोड़ा। यह पुराणों की उच्चशिक्षा का आदर्श है।

पुराणों में जिन कथाओं पर शंका हो सकती है उन समस्त कथाओं को हम नीचे उद्धृत करते हैं। कथाओं के पश्चात् उनका विवेचन लिखेंगे, पाठक ध्यान से पढ़ें।

* चन्द्र तारा *

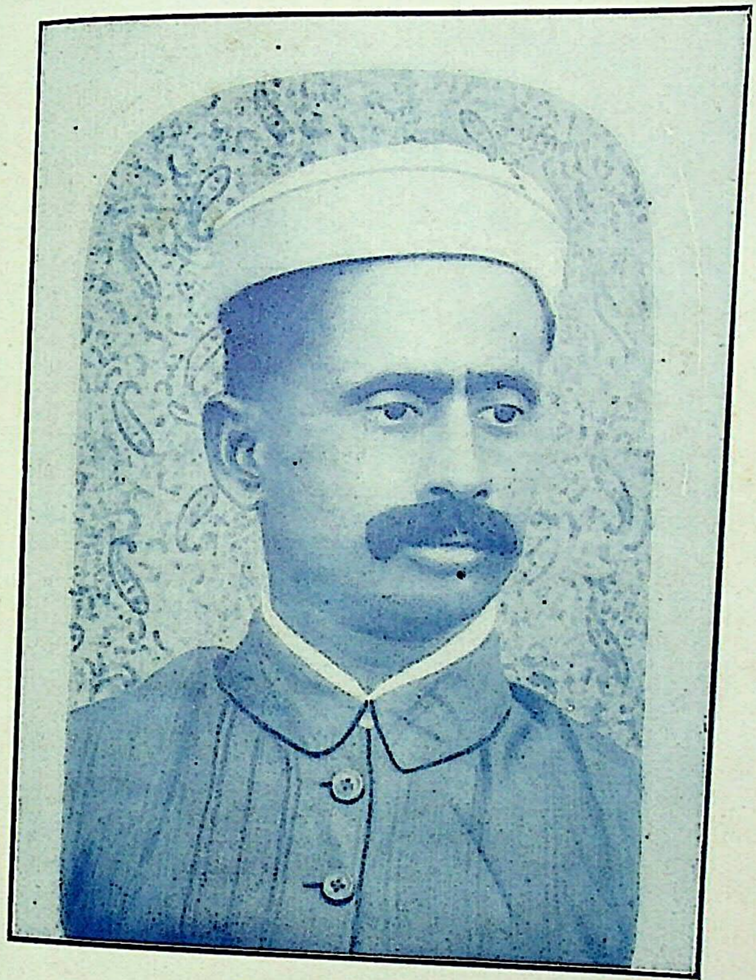
बृहस्पति की पत्नी तारा तथा चन्द्रमा की कथा पुराणों में इस प्रकार लिखी है—

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिहृदसरोरुहात्।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥२॥
तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥३॥
सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम्।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥४॥
यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात्।
नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥५॥
शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम्।
हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥६॥

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, पवित्र-वंश कायस्थ-कुल-कमल-दिवाकर

श्री १०५ राय कृष्णकिशोरजी साहब

तााल्लुकेदार, गोरखपुर।



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

जो लोग हिन्दूदर्शन और वैदिकसाहित्य को नहीं जानते वे ही पुराणों को बुरा बतलाते हैं। मनुष्य की क्या चली वेद भी पुराणों के महत्व को गा रहा है—

सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वणंचतुर्थमितिहासपुराणंपंचमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्य मेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्याꣳसर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात ।
सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥
निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥
त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ।
नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ॥ ९ ॥
तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ।
स्पृहामाऽङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥
ममायं न तवेत्युचैस्तस्मिन्विवदमानयोः ।
पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥
कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ।
किं नावोचस्यसद्वृत्ते आत्माऽवद्यं वदाशु मे ॥ १२ ॥
ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥
तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ।
बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराणमुदम् ॥ १४ ॥

श्रीमद्भा० स्क० ९ अ० १४

अनन्त शिरवाले विराट्पुरुष से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्मा से गुणों में पिता के समान अत्रि पुत्र हुये ॥ २ ॥ अत्रि की दृष्टि से अमृतमय चन्द्रमा पुत्र उत्पन्न हुआ। विप्र, औषधि, तारागण का पति ब्रह्मा ने चन्द्रमा को बना दिया ॥ ३ ॥ उस चन्द्रमा ने तीनों भुवन का विजय किया और अश्वमेध यज्ञ करके विष्णु का यजन किया। घमंड से चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को छीन लिया। ४ ॥ गुरु बृहस्पति ने वार वार याचना की कि चन्द्र तुम हमारी पत्नी को हमें दे दो किन्तु घमंड में चूर होकर चन्द्र ने तारा बृहस्पति को न दी इसी कारण देवता और दानवों में संग्राम उठा ॥ ५ ॥ शुक्राचार्य ने बृहस्पति के द्वेष से चन्द्रमा को असुरों के पक्ष में कर लिया। शुक्राचार्य ने अत्रि से विद्या पढ़ी थी इस कारण भी गुरुसुत चन्द्रमा को अपने थोक में मिलाया ॥ ६ ॥ समस्त देवगण को साथ में लेकर इन्द्र भी गुरु का पक्ष ग्रहण करके

बृहस्पति की रक्षा के लिये संग्राम में उतरा। उधर दैत्यों की सेना युद्ध को कटिबद्ध थी अतएव युद्ध हुआ। इस युद्ध में देव दैत्य दोनों का ही नाश हुआ। इस युद्ध का नाम तारकासंग्राम है ॥ ७ ॥ अंगिरा ने इस युद्ध के रोकने की ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने चन्द्रमा को धमका कर गर्भवती तारा को उसके पति बृहस्पवि को दे दिया ॥ ८ ॥ बृहस्पवि तारा से बोले कि हमारे क्षेत्र में जो दूसरे का यह गर्भ है इसको त्यागदे त्यागदे यदि तू नहीं त्यागेगी तो मैं तुझ स्त्री को भस्म कर दूंगा, हे सति मैं संतान की इच्छा वाला नहीं हूं ॥ ९ ॥ लज्जित तारा ने सुवर्णसदृश कान्तिवाले कुमार को त्याग दिया। उस बालक को अति सुंदर देख कर बृहस्पति ने बालक की इच्छा की कि इसको हम ले लें और इधर चन्द्रमा ने इच्छा की कि इसको हम लेंगे ॥ १० ॥ बृहस्पति बोले कि यह कुमार हमारा है, चन्द्रमा ने कहा कि नहीं हमारा है। जब वे दोनों आपस में उच्चस्वर से विवाद करने लगे तब ऋषि और देवता तारा से पूछने लगे कि यह पुत्र किसका है, लज्जावश तारा ने उत्तर नहीं दिया ॥ ११ ॥ तब लज्जित कुमार कोप करके माता से बोला कि हे असद्वृत्ते अपने आत्मा के पाप को तू क्यों नहीं कह देती ॥ १२ ॥ ब्रह्मा ने तारा को अपने पास एकान्त में बुलाया और शान्ति देकर उससे पूछा। तारा ने ब्रह्मा से कहा कि यह पुत्र चन्द्रमा का है। चन्द्रमा ने अपने पुत्र को ले लिया ॥ १३ ॥ ब्रह्मा ने इस कुमार की विलक्षण बुद्धि को देखकर इसका नाम बुध रक्खा और इसको उडुराट् बना दिया ॥ १४ ॥

भरद्वाजोत्पत्तिः

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३६ ॥
तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम्।
नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३७ ॥
मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३८ ॥
चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम्।
व्यसृजन्मरुतो बिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३९ ॥

श्रीमद्भा० स्क० ९ अ० २०

गर्भवती भाई की स्त्री के पास छिप कर बृहस्पति मैथुन के लिये गये। मैथुन के लिये प्रवृत्त हुये, गर्भ ने निषेध किया। बृहस्पति ने गर्भ को शाप दे दिया और बृहस्पति का वीर्य स्खलित हो गया॥ ३६॥ उससे उत्पन्न हुये बालक को पति के भय से त्यागने की इच्छा करनेवाली जो ममता है उससे देवताओं ने यह कहा॥ ३७॥ हे मूर्खे दो से जायमान जो यह बालक है इसका तू पालन कर। ममता ने कहा कि बृहस्पति तू पालन कर। ऐसा परस्पर कहते हुये माता पिता दोनों चले गये। वह बालक पड़ा रह गया, उसका नाम भरद्वाज हुआ॥ ३८॥ निरर्थक व्यभिचार होने से पुत्र को निरर्थक समझ ममता ने छोड़ दिया। पाठान्तर में पति से जो प्रथम उत्पन्न हुआ उस बालक को अपना समझ दूसरा बृहस्पति से उत्पन्न हुआ समझ कर इसको त्याग दिया। जब माता ने त्याग दिया तब मरुतों ने उसका पालन किया। मरुतों ने प्राप्त किया जो भरद्वाज वह भरत के वंश को दे दिया॥ ३९॥

इन्द्र अहिल्या

समस्त इतिहास हमने पुराणों से उद्धृत किये हैं किन्तु इस इतिहास को हम तुलसीकृत रामायण से लिखते हैं—

यक दिन इन्द्र सुरन तें कहेऊ। मम त्रिय ते वर त्रिय कहं चहेऊ॥ १॥
देवन रवि रवि शशिहिं बतायो। अधिक अहल्या तहं सुनि पायो॥ २॥
सुनि मुनि गे तमचुर सम वानी। गौतम वपु वासव रति ठानी॥ ३॥
कहेउ मर्म छल तुम्हरे गेहा। भवन आइ लखि कह बचनेहा॥ ४॥
यक भगहित आयो तुम हमरे। होइं सहसभग सब तन तुम्हरे॥ ५॥
कहेउ अहल्या तैं पविरूपा। ह्वै सब कष्ट सहौ सुरभूपा॥ ६॥
विनय सुनत बोले हरिचरणा। छुवत तोर होई निस्तरणा॥ ७॥
इन्द्रस्तुति सुनि कह मुनि भाखी। धनु धुनि सुनि हुइहैं सब आंखी॥ ८॥

एक दिन इन्द्र ने देवताओं से कहा कि तुमने कहीं मेरी स्त्री से अधिक रूपवती स्त्री देखी है॥ १॥ देवताओं ने सूर्य का नाम बताया कि यह बात आप सूर्य से पूछो क्योंकि वह सारे संसार को जानते हैं, तब सूर्य ने चन्द्रमा का नाम लिया, तब चन्द्रमा ने इन्द्राणी की अपेक्षा अहल्या को अधिक रूपवती बताया॥ २॥ तब इन्द्र चन्द्रमा को साथ ले गौतमजी के आश्रम में गया। चन्द्रमा वहां जाकर मुर्गे की सी वाणी बोला, उसे सुन

भोर हुआ जान मुनि स्नान करने को गंगाजी पधारे। तहां पीछे गौतम का स्वरूप बनाय इन्द्र ने अहल्या के साथ भोग किया ॥ ३ ॥ गंगाजी ने जाते ही गौतमजी से कहा कि हे मुनि आपके घर में छल हुआ है सो शीघ्र जाओ। तब घर पर आकर गौतम जी ने वह सब चरित्र देख कर ये बचन कहे ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तू हमारे यहां एक भग के लिये आया है पर तेरे सारे शरीर में सहस्र भग हो जांयगे ॥ ५ ॥ फिर अहल्या से कहा कि तू शिला रूप होकर सब कष्ट सह ॥६॥ मुनि के बचन सुन अहल्या ने विनय किया। तब गौतमजी ने कहा कि हे पापिनि! तेरा उद्धार तो प्रभु के चरण छूते ही हो जायगा ॥७॥ फिर इन्द्र की स्तुति सुन मुनि ने कहा कि जब प्रभु धनुष तोड़ेंगे तब धनुष का शब्द सुनते ही तेरे भगों के नेत्र बन जांयगे, तब तेरा सहस्राक्ष नाम होगा ॥ ८ ॥

योनिभेद

शास्त्रानभिज्ञ लोग देवयोनि और मनुष्ययोनि को एक समझ कर मनुष्य को लगनेवाले पुण्य पाप देवताओं को भी लगनेवाले समझ बैठते हैं इस अविवेक से जन समुदाय भ्रम में पड़ जाता है और देवताओं को कलंकित समझने लगता है किन्तु वास्तव में देवयोनि मनुष्ययोनि से भिन्न है प्रथम हम इसी को समझाते हैं। मनुष्य और देवताओं में बड़ा भारी अंतर है। देवता का जन्म उसी देवता के पुत्र से होता है इसको निरुक्त ने "इतरेतरजन्मानः" लिखा है। देवता खाद्य पदार्थ को नहीं खाते केवल सूक्ष्म रस का भोग करते हैं, मनुष्य खाद्य पदार्थों को खाता है। देवताओं को भूख प्यास नहीं लगती, मनुष्य को लगती है। देवता बूढ़े नहीं होते, मनुष्य बूढ़े होते हैं। देवताओं को पढ़ना नहीं पड़ता ये जन्म से ही विद्वान् होते हैं, मनुष्यों को पढ़ना पड़ता है। देवता इच्छानुसार एक या अनेक रूप बना सकते हैं, मनुष्य नहीं बना सकते। मनुष्य को योग के द्वारा अष्टसिद्धियां मिलती हैं, देवों को यह शक्ति जन्मसिद्ध है। देवता अमर हैं, मनुष्य मरते हैं। देवताओं की विलक्षणता सिद्ध करती है कि देवयोनि मनुष्ययोनि से भिन्न है। जो कानून वेद विधि निषेध मनुष्ययोनि के लिये है वह विधि निषेध देवताओं पर अपना अधिकार नहीं जमा सकता अतएव मनुष्यों के लिये जो दुष्कर्म हैं वे देवताओं के लिये दुष्कर्म नहीं हैं।

वेदपुष्टि

वेद ने लिखा है कि—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋ० मं० १० सूक्त ८५ मं० ४०

गर्भोत्पत्ति के समय से ही सोम देवता के प्रधान आदि कारण होने से (सोमः प्रथमो विविदे) सोमदेव कुमारी कन्या को पहले प्राप्त होता अर्थात् सब अंगों में विशेषता से प्रविष्ट होता है। (उत्तरः गन्धर्वो विविदे) उसके बाद गन्धर्व देवता विश्वावसु प्राप्त होता है। हे कन्ये (ते) तेरा (तृतीय अग्निपतिः) तीसरा अग्नि देवपति होता है और (ते) तेरा (तुरीयः मनुष्यजाः पतिः) मनुष्य से उत्पन्न हुआ मनुष्य चौथा पति होता है।

इस प्रकार के भोग में देवता को पाप नहीं लगता यह वेद सिद्ध है। अब पूछना यह है कि जब समस्त स्त्रियों का भोग करने पर देवताओं को पाप नहीं लगता तो फिर एक स्त्री के भोग से पाप लगेगा इसमें क्या प्रमाण है।

* भोगयोनि *

मनुष्ययोनि कर्मयोनि है और देवयोनि भोगयोनि है इस विषय में शास्त्र का विवेचन इस प्रकार है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

श्रीमद्भगवद्गीता० अ० ९

वेदत्रयी में कहे हुये कर्म में परायण पुरुष अग्निष्टोम आदि यज्ञों के द्वारा मुझको पूज कर यज्ञ शेष सोम को पीनेवाले जिनके पाप धुल गये हैं ऐसे होते हुये स्वर्ग में जाने की प्रार्थना करते हैं। वह साधक पुण्यफलरूप देवेन्द्र के लोक को पाकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं ॥२०॥ वह सकाम पुरुष उस बड़े भारी स्वर्ग-लोक को भोग कर पुण्यफल के न्यून हो जाने पर इस पृथ्वी पर आ जाते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में बताये हुये काम्यकर्म को आग्रह के साथ करते हुये भोगों को चाहने वाले पुरुष आवागमन पाते हैं ॥२१॥

जिस प्रकार देवयोनि भोगयोनि है इसी प्रकार मनुष्य से भिन्न जितनी योनियां हैं सब भोगयोनियां हैं केवल मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है इस विषय में पुराण ने स्पष्ट कर दिया है—

देवाः पतङ्गाः पशवश्च कीटा
भोग्या हि योनिरिति शास्त्रसिद्धम् ।
मनुष्ययोनिः किल कर्मयोनि-
र्निवाणपदवीमनया लभन्ते ॥

देव, पक्षि, पशु, कीड़े ये सब भोगयोनियां हैं केवल मनुष्य हो कर्मयोनि है। इसी मनुष्ययोनि से जीव मोक्ष को पाता है।

मनुष्ययोनि से ही मोक्ष मिलती है इसको सिद्ध करता हुआ श्रीमद्भागवत लिखता है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥

यह जो मनुष्य शरीर है यह आदि है और अब सहज में ही मिल गया है इसका मिलना बड़ा दुर्लभ है। यह मनुष्यशरीर क्या है संसारसागर से पार होने की नौका है। नौका भी कैसी टूटी फूटी नहीं बड़ी मजबूत और इसके ऊपर बड़ा होशियार गुरुरूप मल्लाह है। भगवान् कहते हैं कि इस नौका के चलाने में अनुकूल वायु मैं हूं ऐसा अवसर पाकर के भी जो मनुष्य संसारसागर को पार नहीं करता वह आत्महत्यारा है।

बस सिद्ध हो गया कि मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है । मनुष्यशरीर द्वारा किये हुये कर्म हो विधि निषेध में आकर पाप पुण्य के दाता होते हैं अन्य के नहीं क्योंकि अन्य योनियां केवल भोगयोनियां हैं। अर्थात् मनुष्यशरीर में किये जो सुकृत और दुष्कृत हैं उनको भोगने के लिये ही अन्य योनियां बनाई गई हैं अतएव वेद भगवान् की विधि और निषेध इन योनियों में अपना शासन नहीं कर सकता।

प्रत्यक्ष में उदाहरण देखिये--गौ जाति में मातृगमन। महिषादि अनेक जातियों में तथा पक्षिजातियों में भगिनिगमन। बकरी हिरण बन्दर आदि जातियों में पुत्रिगमन।

अश्व गर्दभादि अनेक जातियों में स्त्रीमात्र गमन प्रकृति सिद्ध है इस दुष्ट कर्म को वेद मनुष्यों के लिये निषेध करता हुआ पाप बतलाता है किन्तु पशु पक्षियों के लिये ईश्वर ने प्रकृति सिद्ध कर दिया है। इसी प्रकार ईश्वर आज्ञा वेद ने मनुष्य के लिये मनुष्य को मारना और मार कर खा जाना हत्या बतलाई है किन्तु शेर, चीता, तेंदू आदि हिंसक जातियों के लिये ईश्वर ने प्रकृति सिद्ध कर दिया है। बस सिद्ध हो गया कि अन्य जातियां भोगयोनियां हैं केवल मनुष्ययोनि कर्मयोनि है।

विधिनिषेध का लक्ष्य

वेद और धर्मशास्त्र इन दोनों में ही जहां पर विधि आती है तथा निषेध आता है वहां पर मनुष्यजाति का ही ग्रहण है। देव, पशु, पक्षी, आदि जातियों के लिये वेद ने न तो कोई पापकर्म बतलाया है और न कोई पुण्यकर्म बतलाया है। पापों के प्रायश्चित्त भी मनुष्यजाति के लिये ही लिखे हैं। बुरा कर्म करने से अनिष्ट होगा तथा शुभ कर्म करने से सुख मिलेगा। अर्थात् सब प्रकार के कर्मों का फल जो वेद ने बतलाया है वह केवल मनुष्यजाति के लिये बतलाया है, अन्य जाति के लिये वेद ने कोई कर्म अच्छा बुरा या सुख दुःख का दाता नहीं बतलाया। फिर हम किस आधार पर यह समझ लें कि देवादि जातियों में किया हुआ कर्म फल देता है और उसका फल कर्म करनेवाले देव, पशु, पक्षी को भोगना पड़ता है। मनुष्य अपनी अज्ञता से मनुष्य को शिक्षा देनेवाले या मनुष्य को अच्छे बुरे कर्म का अच्छा बुरा फल उपदेश करनेवाले वेद कानून को अन्य जाति के लिये कानून मान लें तो फिर मनुष्यों की ही मूर्खता कहें तो इसमें कोई दोष नहीं। इस विषय में हम एक उदाहरण देते हैं पढ़िये—

कल्पना करो कि एक म्यूनीसिपेलिटी ने जनता की स्वास्थ्यरक्षा के लिये यह कानून बनाया कि जो सड़क पर पुरीषोत्सर्ग करेगा या पेशाब करेगा तो वह इस कानून के अनुसार दण्डनीय होगा। इस कानून के देखने से यह साधारण मनुष्य को भी ज्ञान हो जाता है कि इस कानून के भंग करनेवाले मनुष्य ही दण्डनीय होंगे किन्तु एक दिन एक हज़रत–बुद्धि के पहाड़–सड़क पर पेशाब करने बैठ गये। कानिष्टेबिल ने आकर उसको पकड़ लिया। पुलिस ने उस पर कानून लगा कर मजिस्ट्रेट के यहां चालान कर दिया। मजिस्ट्रेट ने इस अपराधी से पूछा कि क्या तुमने सड़क पर पेशाब किया? इसने उत्तर दिया कि जी हां। मजिस्ट्रेट ने कहा कि फिर तुमको दण्ड क्यों न दिया जावे? उसने प्रार्थना की कि यदि दण्ड दिया जावे तो समस्त अपराधियों को दिया जावे, मुझ अकेले को दण्ड क्यों दिया जावे। [illegible]क के ऊपर कितनों ही ने पाखाना फिरा,

कितनों ही ने पेशाब किया। इस कानिष्टेबिल ने उन सब को छोड़ दिया, केवल मुझे पकड़ लिया। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि ऐसा करनेवाले और कौन कौन थे, तुम जानते हो तो लिखवा दो। अपराधी ने लिखवाना शुरू किया कि दो बैल पुरीषोत्सर्ग कर गये, दो चार गधे पेशाब कर गये, एक हाथी लीद कर गया। मजिस्ट्रेट ने कहा कि तुम यह नहीं जानते कि यह कानून मनुष्य मात्र के लिये बना है अन्य के लिये नहीं, अतएव मनुष्य ही दण्डनीय होता है। सिद्ध हो गया कि जो कानून जिसके लिये बनता है उस कानून के तोड़ने पर वही दण्डनीय होता है। श्रुति, स्मृति रूप जो कानून है वह केवल मनुष्यों के लिये है उसके भंग करने पर मनुष्य ही अपराधी होता है फिर हमको नहीं मालूम कि मनुष्यों को मर्यादा में रखनेवाली श्रौतस्मार्तविधि देवताओं के ऊपर किस प्रकार लागू होगी।

* भोगयोनि का भोग *

कई एक सज्जन यह नहीं समझते कि भोगयोनि कहते किसको हैं। इसको न समझ कर अनेक प्रकार की शंकायें किया करते हैं—(१) एक मनुष्य ने कहा कि एक बैल किसी वृक्ष से बँधा था उसने झटका मारा, रस्सा टूट गया, बैल खेत को चल दिया, खेत में जाकर हरे हरे पेड़ों में पके हुये नाज को खाने लगा, बैल का पेट भर गया। बैल ने रस्सा तोड़ना, चलना, खाना रूप कर्म किया उसका फल पेट भरना था, भर गया, फिर कर्मफल कैसे नहीं मिलता। (२) एक शेर ने एक मनुष्य को मार कर खाया, खाते हुये शेर के गोली मार दी। यदि शेर मनुष्य को मार कर न खाता तो वहां क्यों ठहरता। उसने मनुष्य को मारा फिर खाने लगा इसी कारण ठहरना पड़ा, ठहरने के कारण दूसरे मनुष्य ने गोली मार दी। यह कर्मफल नहीं हुआ तो क्या हुआ। (३) एक गधा किसी किसान के खेत में हरे हरे गेहूं के पेड़ खाने को घुस गया इतने में किसान आ गया। किसान ने गधे के पैर में जोर से लट्ठ मारा, गधे का पैर टूट गया। न गधा खेत में जाता, न यह दशा होती। टांग टूटना खेत में जाने रूप कर्म का फल है। (४) एक कुत्ते ने एक मनुष्य को काट खाया, वह मनुष्य मर गया, उस मनुष्य के भाई ने गुस्से में आकर एक लाठी मारी, कुत्ते की कमर टूट गई। दुःखित कुत्ता पन्द्रह दिन तक चिल्लाता रहा, फिर मर गया। यदि वह मनुष्य को न काटता तो फिर इतना कष्ट भोग कर क्यों मरता, यह मनुष्य के काटने का फल है। फिर हम कैसे मानलें कि भोगयोनियों को कर्मफल नहीं मिलता।

उत्तर—भोगयोनि के कर्म का निर्णय इस प्रकारहै कि (१) पूर्वजन्म से शुभाशुभ

कर्म जो इस शरीर के लिये लाता है उसको भोगता और इस शरीर में जो कर्म करता है उसको भी इसी शरीर में भोग डालता है अन्य शरीर के लिये गठरी नहीं बनाता। इसका उदाहरण यह है कि एक शेर ने अपने जीवन में दो मनुष्य, बीस भैंस और पचास बकरी मार कर खाई और वह मृत्यु आने पर मर गया। अब वह जीव शेरशरीर के किये हुये कर्म का फलभोक्ता नहीं है। (२) वेद में जो मनुष्यों को विधि निषेध द्वारा कर्मफल का प्रमाण बतलाया है उस प्रमाण से इसको दण्ड नहीं मिलता। कहीं कहीं पर हलके (छोटे) कर्म पर भयंकर फल मिल जाता है और कहीं कहीं पर भारी कर्म पर थोड़ा दण्ड मिलता है तथा कई एक स्थान में भयंकर कर्म करने पर बिलकुल ही दण्ड नहीं मिलता। इसका उदाहरण यह है—एक बैल ने एक मनुष्य को उठा कर फेंक दिया, मनुष्य मर गया, बैलवाले को गुस्सा आया, बैल के दो चार लाठी मार दीं। कर्मफल तो अवश्य मिला किन्तु मनुष्यबध का जितना दण्ड शास्त्र ने लिखा है उतना नहीं मिला। कल्पना करो कि एक घोड़े ने एक अंग्रेज के लात मारी, उस अंग्रेज ने गोली मार दी, घोड़ेवाले को रुपये दे दिये। यहां पर अंग्रेज के चोट थोड़ी लगी घोड़े को दण्ड विशेष मिला। एक भैंसे ने मनुष्य को उठा कर पटक दिया, वह मनुष्य मर गया, भैंसा भाग गया। मनुष्यों ने घरवालों को समझाया कि इसका मृत्यु ऐसा ही लिखा था। घरवालों ने भैंसे से कुछ न कहा, यहां बिलकुल ही दण्ड न मिला। इत्यादि अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध है कि भोगयोनि में शास्त्रानुकूल विधि निषेध नहीं है और शास्त्रानुकूल दण्डका विधान नहीं है तथा भोगयोनि में किये हुये कर्म का फल उसी शरीर में भोग लिया जाता है, भावी शरीर के लिये शेष नहीं रहता यह भोगयोनि का लक्षण है।

कई एक मनुष्य यह कह उठावेंगे कि दूसरा उदाहरण ठीक नहीं है। दूसरे उदाहरण में जो कर्म की अपेक्षा न्यूनाधिक दण्ड बतलाया है लालच या प्रेम या असावधानी पुलिस और अदालत की होने पर ऐसा मनुष्यों में भी हो जाता है। इसका उत्तर यह है कि मनुष्ययोनि में राजकीय दण्ड की प्रधानता नहीं है किन्तु ईश्वरीय दण्ड की प्रधानता है। यदि राजकीय दण्ड के मिलने में ठीक कर्मफल भोग न हो तो ऐसी अवस्था में ईश्वरीय दण्ड से कर्मफल का भोग होता है। यह नियम भोगयोनि में नहीं है केवल कर्मयोनि में है।

जो नियम पशु पक्षी आदि भोगयोनियों में है वही नियम देवताओं में है। यम, वरुण, वायु, अग्नि, बृहस्पति, चन्द्रमा, वसु, विश्वेदेव आदि जितने भी देवता हैं इनको किसी भी कर्म का फल नहीं मिला। इन्द्र ने कई एक अश्वमेध शत का भंग किया। इन्द्र पद छीनने के भय से अनेक तपस्वियों का तप भंग किया। दिति के गर्भ में घुस

कर इन्द्र ने उसके गर्भ के टुकड़े टुकड़े कर डाले (यह कथा श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कंध के अट्ठारहवें अध्याय की है) तो भी इन्द्र को कोई पाप नहीं लगा। हां, इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप अवश्य लगा है और दो बार लगा है। प्रथम हम पहिली ब्रह्महत्या की कथा लिखते हैं पाठक अवलोकन करें—

ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः।
संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये॥
भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः॥६॥
भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै।
ईरिणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते॥७॥
तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः।
तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते॥८॥
शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुस्त्रियः।
रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते॥९॥
द्रव्यभूयो वरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम्।
तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन्॥१०॥

षष्ठ स्कं० अ० ९

यद्यपि इन्द्र ईश्वर है, देवराज है, उसको कोई हत्या (पाप) नहीं लग सकता तो भी इन्द्र ने अपनी इच्छा से उस ब्रह्महत्या को अंजलि से स्वीकार कर लिया और एक वर्ष पर्यन्त वैसे ही रह कर सम्वत्सर के अंत में लोकनिन्दा को दूर करने के निमित्त उसने वह ब्रह्महत्या भूमि, जल, वृक्ष और स्त्रियों को चार भाग कर बाँट दी॥३॥ उस समय 'यदि मेरे ऊपर खोदा हुआ गड्ढा आपही भर जायगा तो मैं ब्रह्महत्या का चतुर्थ भाग ग्रहण करूंगी' ऐसा कह कर उस वरदान के साथ भूमि ने चतुर्थभाग ग्रहण किया। उस ब्रह्महत्या का स्वरूप भूमि के विषे खारो मृत्तिका में ऊसर रूप से दीखता है तहां अध्ययन आदि करने का निषेध है॥७॥ तथा 'काटने पर फिर अंकुर उत्पन्न हो' ऐसा वरदान मांग कर वृक्षों ने ब्रह्महत्या का दूसरा भाग ग्रहण किया वह ब्रह्महत्या का स्वरूप उन वृक्षों में गोंदरूप से दीखता है इस कारण वृक्षों के गोंद को न खाना चाहिये॥८॥ तैसे ही 'गर्भ को पीड़ा न हो और प्रसूतिकाल में पुरुष से निरन्तर सम्भोग हो' यह वरदान मांग कर स्त्रियों ने ब्रह्महत्या का चौथा भाग ग्रहण किया। वह पातक स्त्रियों

में प्रत्येक मास में रजोरूप से दीखता है इस कारण ही उस समय उनका संग आदि न करे ॥९॥ तथा 'दूध आदि में अपने को मिलाने पर उन पदार्थों की वृद्धि हो' ऐसा वर माँग कर जल ने पातक का चौथा भाग ग्रहण करा। वह पातक बुलबुले और झाग रूप से जल में दीखता है। इस कारण बुलबुले और झाग आदि को जल से बाहर निकाल कर उस जल में स्नान आदि कर्म करे तो वह जल पापों का नाश करता है ॥१०॥

यह विश्वरूप का वध है। विश्वरूप माता के कहने पर यज्ञ में दैत्यों के नाम की भी आहुति देने लग गया था इसको इन्द्र ताड़ गया। इन्द्र ने इसी अपराध में विश्वरूप के तीनों सिर काट डाले और इस हत्या को चार जगह बाँट दिया।

विश्वरूप के मरने पर उसके पिता त्वष्टा को बड़ा दुःख हुआ। उसने यज्ञ किया। यज्ञ में आहुति दी कि इस अग्नि में से एक ऐसा पुरुष उठे जो इन्द्र को मारे। आहुति देते समय "इन्द्र शत्रुः" इस पद में स्वर का व्यत्यय हो गया जिसका अर्थ हुआ कि इन्द्र है मारनेवाला जिसका। उस अग्नि से वृत्र उठा, इन्द्र ने संग्राम में उस वृत्रासुर को मार डाला, वृत्रहत्या इन्द्र के पीछे दौड़ी, इन्द्र डर कर भागा। कहीं भी सुख नहीं मिला। लाचार इन्द्र मानसरोवर के कमल की डंडी में सहस्रों वर्ष छिपा रहा। इन्द्र अग्निदूत है अर्थात् अग्नि का दिया यज्ञभाग खाता है वहाँ अग्नि यज्ञभाग न पहुंचा सका। इसके पश्चात्—

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत
ऋतंभरध्याननिवारिताघः।
पापस्तु दिग्देवतया हतौजा
स्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

श्रीमद्भा० ष० स्कं० अ० १३

तदनन्तर ब्राह्मण के बचन से बुलाये हुये वह इन्द्र स्वर्गलोक को गये, वह पहिले ही सत्यलोक के पालक श्रीहरि के ध्यान से निष्पाप हो गये थे और ईशान दिशा में रहनेवाले रुद्र देवता से निर्बल करा हुआ उनका वह ब्रह्महत्यारूपपाप, मानसरोवर में रहनेवाली लक्ष्मी के रक्षा करे हुये उस इन्द्र का तिरस्कार करने को समर्थ नहीं हुआ ॥१७॥ इन्द्र ने आकर अश्वमेधयज्ञ किया, इन्द्र निष्पाप होगया, सिंहासन पर बैठ गया।

विश्वरूप की हत्या का फल इन्द्र को भोगना नहीं पड़ा। वह चार जगह बँट गई किन्तु वृत्रासुर की हत्या ने इन्द्र को बहुत कष्ट पहुंचाया। इसमें बड़ी बड़ी विलक्षणता है—(१) तो वृत्रासुर का मरना ही इन्द्र से सिद्ध हो गया था। (२) उसने देवताओं को

भयंकर पीड़ा दी। संसार को दुःख पहुंचानेवाले आततायी के बध का दोष नहीं होता। (३) इन्द्र ने वृत्र को संग्राम में मारा है। संग्राम भी वह भयंकर कि इस युद्ध में इन्द्र को नानी याद आगई। ऐसे युद्ध में इतने प्रबल शत्रु को मारना वेदादि सच्छास्त्रों से कभी पाप हो नहीं सकता। (४) इन्द्र सामर्थ्यवान् है वह चाहता तो ब्रह्महत्या अपने ऊपर न लेता यह मूल "ब्रह्महत्यामंजलिना जग्राह यदपीश्वरः" से स्पष्ट है कि वह ईश्वर है, उसको ब्रह्महत्या नहीं लग सकती किन्तु उसने अपनी इच्छा से ली है। इसके ऊपर श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधरजी लिखते हैं कि "तां वारयितुं समर्थस्तथापि जग्राह" इन्द्र उस ब्रह्महत्या हटाने को सामर्थ्यवान था तो भी उन्होंने ब्रह्महत्या अपने ऊपर ले ली। इससे यह नहीं माना जा सकता कि देवताओं को कर्मफल भोगना पड़ता है इसमें हम अनेक हेतु दे चुके हैं, स्मरण के लिये उनको फिर उद्धृत करते हैं पाठक ध्यान से विचारें। (१) अग्नि, वायु आदि समस्त देवताओं को कभी भी किसी कर्म का फल भोगना नहीं पड़ा। (२) इन्द्र ने सैकड़ों शताश्वमेधों का भंग कर दिया, सहस्रों तपस्वियों के तप भंग किये। गर्भ में ही वायु को काट डाला, किसी भी कर्म का फल इन्द्र को न लगा। (३) निःशस्त्र विश्वरूप को यज्ञ करते में मारा उसकी हत्या जो अधिक लगनी चाहिये थी, कम लगी तथा उसको चार भागों में बांट दिया और इन्द्र ने उसका फल भी नहीं भोगा। (४) वृत्र से त्रिलोक पीड़ित था, वृत्र आततायी था, उस प्रबल शत्रु की हत्या कभी नहीं लगनी चाहिये थी क्योंकि शास्त्र में संग्राम में युद्ध प्रवृत्त सन्मुख खड़े शत्रु का मारना पाप नहीं है। इसकी हत्या अधिक लगी। (५) श्रीमद्भागवत में लिखा है कि इन्द्र चाहता तो ब्रह्महत्या न लेता किन्तु इन्द्र ने अपनी इच्छा से उस को ले लिया। बस सिद्ध होगया कि इन्द्र को ब्रह्महत्या नहीं लगी।

इन्द्र ने ब्रह्महत्या को जो स्वयं स्वीकार किया है इसका कारण यह है कि अश्वमेधादि यज्ञ करते हैं मनुष्य और उन अश्वमेधादि यज्ञों में इन्द्र को मिलता है भाग तथा मनुष्यों में ब्रह्महत्या है महापातक। इन्द्र घबरा गया कि कहीं ऐसा न हो कि मनुष्य ब्रह्महत्यारा समझ कर हमको यज्ञभाग से बहिष्कृत कर दें। यदि इन्द्र को कर्मफल लगता होता तो यज्ञध्वंस तथा तपभ्रंस वायुवध का भी लगता। फिर इससे भिन्न किसी भी देवता को आज तक किसी भी कर्म का फल नहीं लगा है अतएव देवयोनि भोगयोनि है और भोगयोनि के किये हुये कर्म का फल कभी लगता नहीं इस नियम के अनुसार इन्द्र को अहल्यागमन, चन्द्र को गुरुपत्नीगमन, बृहस्पति को ममतागमन का पाप नहीं है। परस्त्रीगमन का पाप वेद धर्मशास्त्र ने केवल मनुष्यों के लिये बतलाया है, भोगयोनि के लिये कोई भी कर्म पाप पुण्य नहीं है। फिर हम कैसे मान लें कि देवचरित्र भ्रष्ट है इसको तो केवल वही मानेंगे जिनको कर्मयोनि और भोगयोनि का ज्ञान नहीं है।

कई एक सज्जनों का कथन है कि यदि ऐसा है तो फिर गौतम ने इन्द्र को शाप क्यों दिया ?

उत्तर—बृहस्पति ने चन्द्रमा को शाप नहीं दिया और ममता के भोग से बृहस्पति को भी शाप नहीं हुआ केवल गौतम ने इन्द्र को शाप दिया है क्योंकि मनुष्ययोनि में यह पाप है और इससे मनुष्य कलंकित होता है। गौतम की धर्मपत्नी अहल्या यदि व्यभिचारिणी हो तो इसका पाप कुछ न कुछ गौतम को भी लगता है अतः गौतम को क्रोध आया और उसने शाप दे दिया। अहल्या और इन्द्र जब गौतम के पैरों में गिर गये तब गौतम ने उनके शाप को वर बना दिया। अब हम कैसे मान लें कि शाप कर्म-फल है। बुरे कर्म पर केवल हाथ जोड़ने से वरदान हो नहीं सकता। कर्म का भोग हुये बिना कभी छुटकारा हो नहीं सकता यहां इन्द्र ने व्यभिचार कर्म का फल भोग किया ही नहीं। सिद्ध हो गया कि शाप कर्मफल के प्रमाण से नहीं होता किन्तु क्रोध से होता है। अब यह सभी को मानना पड़ेगा कि देवयोनि के कानून के अनुसार कोई भी देवता पाप नहीं करता अतएव वे चरित्रभ्रष्ट नहीं हैं।

ब्राह्मण में जो इन्द्र-अहल्या चरित्र आया है वह रूपक है और पुराण में जो इन्द्र-अहल्या चरित्र आया है वह ऐतिहासिक है। इस ऐतिहासिक कथा का उत्तर इस पाद में दिया गया है।

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मणि देवचरित्रपादोद्वादशः।

इति देवताध्यायः।

* श्रीगणेशाय नमः *

* सृष्टिपादः *

पाणिग्रहे पर्वतराजपुत्र्याः
पादाम्बुजं पाणिसरोरुहाभ्याम् ।
अस्मानमारोपयतः स्मरारे-
र्मन्दस्मितं मंगलमातनोतु ॥

कई एक सज्जनों का कथन है कि पुराणों की सृष्टिरचना बच्चों का खेल है । भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न प्रकार की सृष्टि दिखलाई गई है । किसी किसी पुराण में सृष्टिरचना दुर्गा से, कहीं शिव से, कहीं विष्णु से, कहीं ब्रह्मा से । इस अद्भुत सृष्टि को कैसे सत्य मानें ?

दुर्गा, विष्णु, शंकर, ब्रह्मा ये सब-ईश्वर के रूप हैं । सृष्टि के आरंभ में सृष्टि रचनार्थ ईश्वर अनेक रूप धारण करता है एक रूप से प्रेरणा करके दूसरे रूप से सृष्टि रचता है । वेद में ईश्वर के अनेक रूप रहते हुये भी पांच मुख्य रूपों का वर्णन है और वे ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, दुर्गा तथा सूर्य ये पांच रूप हैं । देखिये—

देवीसूक्त

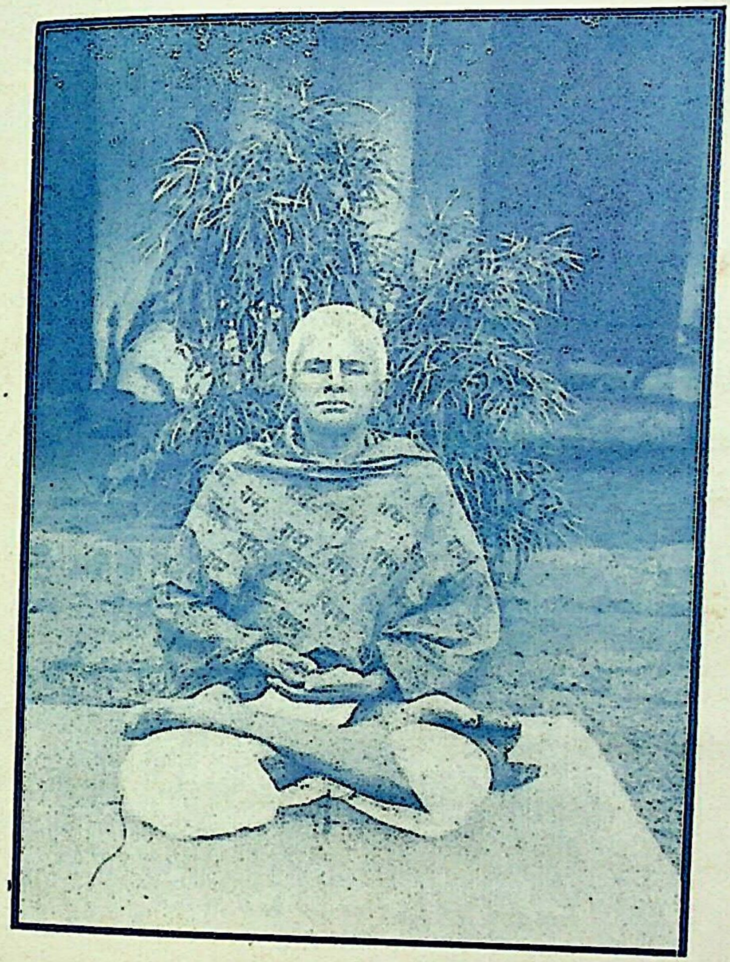
अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥४॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥५॥

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक,

ब्राह्मण-वंश-भूषण, धर्मरक्षार्थ-दत्तजीवन

श्री १०५ पण्डित हरिमोहनजी मिश्र रईस

लालूचक, भागलपुर।



धर्म-रक्षा।

मूर्ख लोग यह समझते हैं कि पुराण ब्राह्मणों ने बनाये हैं। यही समझ कर पुराणों का खंडन किया जाता है किंतु पुराणों के कर्ता ब्राह्मण नहीं हैं पुराण तो वेद की भांति ईश्वर से प्रकट हुये हैं इसको हम ही नहीं कहते किंतु अथर्ववेद कह रहा है कि—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा ऊं।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावी पृथिवी आविवेश ॥६॥

ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सू० १२५

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूं। मैं बारह आदित्यों के साथ विचरती हूं और विश्वेदेवताओं के साथ भी विचरती हूं, मैं मित्रदेवता और वरुणदेवता को धारण करती हूं, मैं इन्द्र और अग्निदेवता को, मैं ही अश्विनीकुमारों को दोनों को धारण करती हूं ॥१॥ मैं सब तरफ से मारनेवाले सोमदेवता का पोषण करती हूं, मैं ही त्वष्टा को और पूषादेवता को, भगदेवता को मैं धारण करती हूं, धन को हविष्वाले सुंदर प्राप्त करते हुये यजमान को सोम निकालते हुये को ॥२॥ मैं ईश्वरी मिलनेवाली ज्ञान वाली पहिली अर्थात् मुख्य यजनीय देवताओं में अनेक तरह से स्थित होने वाली अनेक तरह से सब ओर से प्रवेश कराती हुई हूं तिस मुझको देवलोग अनेक जगह विधान करते हैं ॥३॥ मैं ही आप यह कहती हूं सेवित है देवताओं से और मनुष्यों से जिसको मैं चाहती हूं उस उस को उत्तम बढ़िया बनाती हूं। उसको ब्रह्मा उसको ऋषि उसको मेधावी बनाती हूं ॥४॥ मेरी सहायता से वह अन्न को खाता है जो देखता है जो स्वास लेता है जो और सुनता है कहे हुये को नहीं मानते हुये मुझको वे नष्ट हो जाते हैं या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं सुन सखे श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होने वाले वचन को तुझसे कहती हूं ॥५॥ मैं रुद्र के धनुष को विस्तृत करती हूं, ब्राह्मण बैरी के लिये हिंसक के लिये मारने के लिये और मैं ही जन के लिये मदयुक्त करती हूं मैं ही आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूं ॥६॥

भावार्थ—वाणी की अधिष्ठात्री देवी अंभृण नामक ऋषि की दुहिता होकर अपने असली रूप का बोधन कराती हुई इन मंत्रों से कहती है। जिस प्रकार आजकल के लोग कहा करते हैं कि परमात्मा कहता है कि हे मनुष्यो ! और जब यह कहा जाता है कि परमात्मा अव्यक्त इस प्रकार कैसे कह सक्ता है। तब यह उत्तर दिया जाता है कि ऋषि के द्वारा कहता है। ऐसे ही यहां ऋषिपुत्री के द्वारा देवी कहती है कि मैं ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य और विश्वेदेवा देवता इन सब के साथ विचरती हूं अर्थात् देवलोग जो चलते फिरते हैं वे नहीं चलते फिरते मैं ही चलती फिरती हूं। उनमें मेरे बिना शक्ति नहीं है या देवलोग जो हव्य कव्य खाते हैं वह मैं ही खाती हूं और मैं ही मित्रावरुण को, इन्द्र और अग्नि को, तथा दोनों अश्विनीकुमारों को धारण करती हूं या इन सब का पालन करती हूं ॥१॥ भगवती देवी कहती है कि हे मनुष्यो ! मैं ही सब ओर से शत्रुओं को मारते हुये सोमदेव को धारण करती हूं और मैं ही त्वष्टा

पूषा और भगदेवता को धारण करती हूं और जो यजमान हवि तथा सोम सब देवताओं को प्राप्त करते हुये हैं उनके लिये मैं ही धन को देती हूं। तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य इन्द्रादि देवताओं को हविर्दान और सोमपान कराते हैं उन सब को अनेक प्रकार के धन मैं ही देती हूं क्योंकि सब कर्मों की फलदात्री मैं ही हूं ॥२॥ देवी उपदेश करती है कि हे मनुष्यो! मैं ही सारे जगत की ईश्वरी हूं और उपासकों को अपने उपास्य से या जो चीज की इच्छा से मनुष्य उपासना करता है उस इच्छित वस्तु को प्राप्त करनेवाली मैं ही हूं अर्थात् चित्स्वरूपा मैं ही हूं, इन रुद्रादि देवताओं में जो ज्ञान है वह सब मेरा ही है, और यज्ञ में भी मुख्य देवता मैं ही हूं, तथा सब जगह सब प्रकार से रहनेवाली मैं ही हूं और सब शरीरों में जीवरूप से प्रवेश करानेवाली मैं ही हूं। इसलिये मनुष्यों की गणना ही क्या देवताओं ने भी उस मुझको सर्वत्र या अनेक स्थानों में पूजा के लिये निर्माण किया रचा या मुझको सर्वत्र आगे किया अर्थात् सब देवताओं में मैं ही प्रधान हूं ॥३॥ इस मंत्र में यह वर्णन है कि देवी जिस जीव का कल्याण चाहती है उसको ऊंचे से ऊंचे दर्जे तक ले जा सकती है यहां तक कि ब्रह्मा ऋषि और मेधावी बनाती है इसलिये कल्याण की कामनावालों को देवी की ही उपासना करनी चाहिये। देवी कहती है कि हे मनुष्यो ! मैं यह स्वयं अपने मुख से कहती हूं और जो मैं कहती हूं इसे पूर्व कल्प के देवता और मनुष्यों ने सदा सेवन किया है। कुछ मैं ऐसी बात नहीं कहती कि जो नवीन हो या अपने मतलब की हो किन्तु आप लोगों के बड़े प्रयोजन की है बस ज्यादा क्या कहूं इतने ही में समझ लेना कि जिस जिस को मैं चाहती हूं उस उस को मैं बढ़िया बनाती हूं। अब शास्त्रानुसार ऊंचे दर्जे तीन हैं। सब से उन्नत दरजे पर तो ब्रह्मा हैं और मध्यम दर्जे पर ऋषि हैं और अवनत दरजे पर मेधावी जो ब्रह्मज्ञानी हैं तथा जो विशेष बुद्धिमान हैं। इनमें जिसको बहुत उग्र करती हूं उसको ब्रह्मा बना देती हूं और जिसको मध्यम कक्षा की उन्नति पर ले जाना चाहती हूं उसको ऋषि बना देती हूं और तीसरी कक्षा में ब्रह्मज्ञानी बना देती हूं। तात्पर्य यह है कि जगत्कर्त्री और जगत् की हर्त्री तथा ईश्वरी देवी है। जिसको वह चाहती है उसको ब्रह्मा बना देती है। अब इस बात को फल से जान लेना कि वह चाहती है किसको। वह चाहती है उसको जो उसको चाहता है अर्थात् विश्व के समस्त पदार्थों को लात मार कर केवल उसी का भजन उसी का स्मरण और उसी की पूजा में उसी के यथार्थ रूप को समझनेवाला है तथा इन मंत्रों में जो देवी का महत्व बोधन किया है उसके अनुसार उसको जान कर उसकी उपासना करते हैं वे प्रथम मेधावी फिर ऋषि अनन्तर ब्रह्मा तक हो जाते हैं। इसलिये वेदों में देवी को ब्रह्मरूप माना है। जिस प्रकार वेदों में रुद्र को, विष्णु को ब्रह्मरूपता झलकती है और तीसरे मंत्र में सब स्त्रीलिंगवाचक शब्द हैं इसलिये वागधिष्ठात्री देवी ही इनके कहनेवाली है ॥४॥ पुरुषों

पर कल्याण करती हुई प्रेमभाव से देवी कहती है कि हे सखे ! जो बात श्रद्धा और यत्न से मिलती है उसे मैं तुझसे कहती हूं तू सुन। जो मनुष्य खाता है यह मेरी ही कृपा से खाता है, जो देखता है वह मेरी ही शक्ति से देखता है, और अधिक क्या कहूं जो प्राण भी लेता है जिसके लेने में परिश्रम नहीं होता यह मेरी ही कृपा से स्वांस लेता है तथा दूसरे के कथित को समझता है यह सब मेरी ही दया है। जो इस बात को नहीं मानते वे शीघ्र ही क्षीण हो जाते हैं। जो इस बात को हर समय समझते हैं वे उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥५॥ देवी कहती है कि जो रुद्र देवता ब्रह्मद्वेषी त्रिपुरासुर के मारने के लिये अपना धनुष प्रत्यंचा सहित करते हैं अर्थात् धनुष को चढ़ाते हैं उनके अंदर मैं ही उस धनुष को चढ़ाती हूं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को कभी भी ब्राह्मणों का विरोध नहीं होना और हिंसाशील कभी नहीं होना जो विप्रविरोधी और हिंसाशील होते हैं उनके लिये रुद्र भगवान् का धनुष खिंचता है और जो देवी की स्तुति में लगे रहते हैं उनको मैं सगर्व करती हूं अर्थात् उनकी सर्वत्र सिद्धि होती है और मैं समस्त विश्व में व्यापक रूप से विद्यमान् हूं ॥६॥

यद्यपि मंत्र इस प्रकरण में १८ हैं परन्तु तत्व की बात इन मंत्रों में भी आ गई है अतएव शेष मंत्र लिखना व्यर्थ है। इन्हीं मंत्रों से देवी का ईश्वरस्वरूप होना सिद्ध है।

❋ सूर्यदेव ❋

दूसरा ईश्वरस्वरूप सूर्यदेव है जिसको वेदों में ब्रह्मरूप से माना है। गायत्री मंत्र में उस सूर्य की ही उपासना है। देखिये—

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।

सविता देवता संबन्धी जो भर्ग तेज है उसका हम ध्यान करते हैं वह हमारी बुद्धि की प्रेरणा करे।

गायत्री मंत्र को छोड़ कर यजुर्वेद में लिखा है कि—

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥

यजु० अ० ४० मं० १७

जो आदित्य में पुरुष है वह मैं ब्रह्म हूं।

गायत्री मंत्र से और यजुर्वेद के अंतिम मंत्र से यह सिद्ध है कि सूर्य में जो तेज है और सूर्य में जो व्यापक पुरुष है वह ब्रह्म है।

इन प्रमाणों से भिन्न वेद भगवान् सूर्यदेव की उपासना के लिये लिखता है कि—

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते
नमोऽस्तमिताय नमः विराजे नमः स्वराज्ये नमः सम्राजे नमः ।२२।

अथर्व० कां० १७ । १ । १

उदय होते हुये, उदय होनेवाले और उदित सूर्य को नमस्कार है। अस्त होते हुये, अस्त होनेवाले और अस्त हुये सूर्य को नमस्कार है। तीनों अवस्थाओं में विराट्-स्वराट्-सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को नमस्कार है।

* ब्रह्मा *

वेदों ने ब्रह्मा को ईश्वरस्वरूप माना है। देखिये—

ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रेज्येष्ठं दिवमाततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥

अथर्व० १९ । २३ । ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरंभ में बड़े द्युलोक को विस्तार किया है सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मा रूप से प्रकट हुआ है उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।

मुण्डकोपनिषत् ।

ब्रह्माजी सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुये, जो संसार के रक्षक और विश्व के बनानेवाले हैं।

विष्णु

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २

मृग की समान सो विष्णु भगवान् अपने पराक्रम से स्तुति को प्राप्त होते हैं। नृसिंह रूप से भीम, वराहादिरूप से पृथिवी में विचरने से कुचर, कैलासादि गिरि में

स्थित रहने से गिरिष्ठ हैं। जिस विष्णु के बड़े तीन पाद विक्षेप में सम्पूर्ण भुवन कंपित होते वा बसते हैं।

शिव

या ते रुद्र शिवा तनूरघोशपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥

यजु० अ० १६ मं० २

हे गिरिशन्त! कैलाश पर्वत में यद्वा मेघ में यद्वा वेदवाणी में स्थित होकर मनुष्यों को सुख देनेवाले रुद्र! तुम्हारा कल्याण देनेवाला मंगलरूप पुण्यफल देनेवाला शरीर है उस शान्तरूप शरीर से हमको देखिये।

वेद से सिद्ध है कि ईश्वर सृष्टि के आरंभ में इन पांच स्वरूपों को धारण करते हैं। ब्राह्मच, पाद्म, वाराह, श्वेत, अग्नि, गारुड़, बृहत्, सारस्वत, ईशान, तत्पुरुष, अघोर, रथंतर, कूर्म, मानव, सत्य, लक्ष्मी, भविष्य, ये कल्प हैं इन कल्पों के ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, श्रीमद्भागवत देवीभागवत, अग्नि, स्कंद, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड इतने पुराण हैं। समस्त ही पुराणों में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं। सारस्वतकल्प में भगवती देवी ने सृष्टि करने के लिये ब्रह्मा को प्रेरित किया है। श्वेतकल्प में भगवान् शंकर ने ब्रह्मा से कहा कि तुम सृष्टि रचो। वाराहादि अनेक कल्पों में विष्णु ने ब्रह्मा को सृष्टि रचने की आज्ञा दी है। ब्रह्मा अन्य अन्य ईश्वर स्वरूपों से सृष्टि रचने के लिये प्रेरित हुआ है किन्तु सृष्टि ब्रह्मा ने ही रची है। आप किसी भी पुराण को उठा कर देखिये समस्त पुराणों में सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा ही हैं। कई एक सज्जन यह प्रश्न कर बैठते हैं कि रुद्र का जन्म ब्रह्मा से हुआ फिर शिव ने किस अधिकार से ब्रह्मा को सृष्टि रचने की आज्ञा दी। ब्राह्मचकल्प में ब्रह्मा के द्वारा शंकर प्रादुर्भूत हुये हैं किन्तु जिस श्वेतकल्प में शंकर ने ब्रह्मा को सृष्टि रचने की आज्ञा दी है उस कल्प में ब्रह्मा के द्वारा शंकर का प्रादुर्भूत होना नहीं है इस कल्प में शंकर रूप की ही प्रधानता है और सब से प्रथम ईश्वर शंकर रूप से ही प्रकट हुआ है जिसको संदेह हो वह शिवपुराण के सृष्टिखंड को देख ले। यद्यपि पुराणों में एक ही प्रकार की सृष्टि है और एक ही ब्रह्मा रचयिता हैं इतना होने पर भी आज संसार में यह भ्रम फैलाया जाता है कि पुराणों ने देवी, विष्णु, सूर्य, शंकरादि अनेक सृष्टिकर्ता माने हैं इस मिथ्या भ्रम के लिये हम यही कह सकते हैं कि मनुष्य पुराणों को

पढ़ते नहीं किन्तु अपने मन से मिथ्या कल्पनायें तैयार कर जान बूझ कर पुराणों को अशुद्ध बतलाने का उद्योग कर रहे हैं।

(२) कई एक सज्जनों का कथन है कि ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि का रचा जाना वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध है।

कहने के लिये प्रत्येक मनुष्य जो चाहे सो कह सकता है इसी सिद्धान्त का आश्रय लेकर मनुष्य मनमानी कल्पनायें उठाते हैं किन्तु अंत में सत्य सत्य ही रहता है।

भगवान् मनु सृष्टिक्रम को इस प्रकार लिखते हैं—

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥६॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥७॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥८॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥९॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥१०॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥११॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥१२॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥

मनु० अ० १

प्रलयकाल के अनन्तर स्वयं प्रकट होनेवाले भगवान् इस छिपे हुये संसार को प्रकट करने के लिये महाभूतादिकों में वर्तमान है बल जिसका अंधकार को दूर करते

हुये प्रकट हुये ॥६॥ जो भगवान् अतीन्द्रिय अग्राह्य है, जो सूक्ष्म है, अव्यक्त है, सनातन है, जो सर्वभूतमय है, जो अचिन्त्य है वह ईश्वर अपने आप महतत्वादि कार्यों से प्रकट हुआ ॥७॥ विविध प्रजा रचने के लिये उस परमात्मा ने प्रथम ध्यान किया फिर जल बनाये और उन जलों में भावी सृष्टि के कारण को रक्खा ॥८॥ वह जो जलमय अण्ड है सुवर्णकान्तिवाला सूर्य के तुल्य कान्तिवाला हुआ उस अण्ड में स्वयं ईश्वर ब्रह्मारूप से प्रादुर्भूत हुआ जो ब्रह्मा समस्त संसार का पितामह है ॥९॥ जल को नारा कहते हैं क्योंकि यह नर ईश्वर का पुत्र है वह जल प्रथम ईश्वर के रहने का स्थान हुआ इसी से ईश्वर का नाम नारायण है ॥१०॥ जो संसार का कारण है और जो अव्यक्त है, जो नित्य है तथा सत् और असत् का आधार है उससे रचा हुआ जो पुरुष है उसको "ब्रह्मा" कहते हैं ॥११॥ वह जो अण्ड है उस अण्ड में भगवान् बहुत काल तक वास करके अपने आत्मा के ध्यान से उस अंड के दो टुकड़े कर दिये ॥१२॥ उन टुकड़ों से ब्रह्मा ने दिवि, स्वर्ग और भूमि को निर्माण किया। मध्य में आकाश और आठ दिशा तथा जलों के स्थान रचे ॥१३॥

मनुस्मृति से यह सिद्ध है कि प्रलयकाल के अनंतर अव्यक्त ईश्वर ब्रह्मा बन कर प्रकट हुआ और उसने द्युलोक, पृथ्वी, आकाश, जल का स्थान और आठो दिशाओं का निर्माण किया। जिस प्रकार स्मृतियों में सृष्टि रचयिता ब्रह्मा है उसी प्रकार वेदों में भी सृष्टि रचयिता ब्रह्मा है। अथर्ववेद [१९। २३। ३०] के इस मंत्र को हम पुराणवर्म में दो स्थान में लिख आये हैं प्रथम तो ईश्वरस्वरूपपाद में इस मंत्र से ब्रह्मा का अवतार होना दिखलाया है द्वितीय वार इसी पाद में ऊपर जहां ईश्वर के पांच स्वरूप दिखलाये हैं वहां पर इसी मंत्र से ब्रह्मा को ईश्वरस्वरूप दिखलाया है अतएव इस मंत्र का तृतीय वार दिखलाना व्यर्थ है। इस मंत्र में यह दिखलाया गया है कि "ब्रह्म के बराबर किसी में पराक्रम नहीं। ब्रह्म सब से ज्येष्ठ है उस ब्रह्म ने ही दिव को रचा है। समस्त भूतों से प्रथम वह ब्रह्म ही ब्रह्मारूप से प्रकट हुआ"। सिद्ध हो गया कि वेद में भी ब्रह्मा के द्वारा ही सृष्टि की रचना है। जब धर्मशास्त्र और वेद ने ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि रचना लिखी, यही बात पुराणों ने लिखी फिर पुराणों में लिखी हुई सृष्टि रचना वेद विरुद्ध किस प्रकार हो गई ?

(३) किसी किसी सज्जन का यह कथन है कि यह सब ठीक है किन्तु पुराणों में मनुष्यसृष्टि बड़ी आश्चर्यजनक है, श्रीमद्भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा की गोदी से नारद, अंगुष्ठ से दक्ष, प्राण से वसिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से क्रतु उत्पन्न हुये।

संसार में जितने ईश्वर के माननेवाले मजहब हैं उन सब ने ही आरंभिक सृष्टि

को ईश्वर की मानसिक सृष्टि माना है यदि ऐसा न मानें तो फिर सृष्टि के आरंभ में उत्पत्ति में अन्योन्याश्रय दोष आ जावेगा अर्थात् उस समय में मनुष्य स्त्रियां हैं नहीं, जब मनुष्य स्त्रियां ही नहीं तो बच्चे पैदा कैसे होंगे और जो बच्चे न होंगे तो फिर पुरुष स्त्रियां कहां से होंगी अतएव ईश्वर के माननेवाले सभी मजहबों ने आरंभ की सृष्टि को ईश्वर के मन से उत्पन्न हुई सृष्टि माना है। साइंसवादी जो ईश्वर को नहीं मानते उन्होंने भी आरंभिक सृष्टि को अयोनिज माना है। जिस प्रकार संसार के समस्त सृष्टिक्रम आरंभिक सृष्टि को अयोनिज मानते हैं उसी प्रकार पुराणों ने भी आरंभिक सृष्टि को अयोनिज माना है। हमको नहीं मालूम कि किसी भी सृष्टिक्रम को दोष न लगा कर पुराणों के ही सृष्टिक्रम को क्यों दोष लगाया जाता है। पुराणों की पुष्टि के लिये "वैशेषिक दर्शन" लिखता है कि—

तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च ।।

वैशे० द० अ० ४ आ० २ सू० ६

पिछले सूत्रों में कहा हुआ शरीर योनि से उत्पन्न होनेवाला और विना योनि के उत्पन्न होनेवाला दो प्रकार का है।

पिछले पांच सूत्रों में जो पृथिवी आदि द्रव्यों को शरीर, इन्द्रिय और विषय नाम से तीन प्रकार का बताया गया है उन तीनों में से शरीर दो प्रकार का होता है योनिज और अयोनिज। जल अग्नि और वायु से उत्पन्न शरीर अयोनिज होते हैं तथा पृथिवी से उत्पन्न शरीर योनिज और अयोनिज भी होते हैं यह प्रशस्तपाद आचार्य का मत है। फिर योनिज भी दो प्रकार के होते हैं (१) जरायुज और (२) अंडज। गर्भ के लपेटने वाली झिल्ली जरायु कहाती है उससे जन्म लेनेवाले मनुष्य पशु और मृगों का शरीर जरायुज कहाता है। एक प्रकार के गोले को अण्डा कहते हैं जो भीतर से पीला होता है और उसी के भीतर शरीर बनता है, उसके टूटने से जिनके शरीरों का जन्म होता है उन पक्षियों और सांपों का शरीर अण्डज कहाता है। फिर अयोनिज शरीर भी चार प्रकार के होते हैं सांकल्पिक, सांसिद्धिक, स्वेदज और उद्भिज। परमात्मा के संकल्प से प्रत्येक सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न होनेवाले ऋषि, मुनि, महर्षि और साधारण मनुष्यों के तथा पशु आदि के शरीर सांकल्पिक कहाते हैं। योगियों को जो योग द्वारा सिद्धियें प्राप्त होती हैं उन सिद्धियों के बल से योगी लोग जिस शरीर को चाहते हैं उसको धारण करते हैं वे उनके शरीर सांसिद्धिक कहाते हैं। डांस, मच्छर, ईत और अनेक प्रकार के जंतु सील से उत्पन्न होते हैं, उनके शरीर स्वेदज कहाते हैं। वृक्ष वनस्पति, गुल्म, वीरुध, लता, घास, फूस आदि जो पृथिवी को फोड़ कर उपजते हैं उनके शरीर उद्भिज कहाते हैं।

सृष्टि के आदि में उत्पन्न होनेवाले जीवों के शरीर परमात्मा के संकल्प मात्र से अयोनिज उत्पन्न हो जाते हैं, यह बात समझ में नहीं आई, क्योंकि उसका कारण नहीं बताया गया। अब समाधान समझिये—

अनियत दिग्देश पूर्वकत्वात् ॥७॥

सर्गारंभ के शरीर जिस कारण से उत्पन्न होवें उस कारण की दिशा और देश पूर्व नियत न होने से उनको अयोनिज ही मान सकते हैं।

सृष्टि के आरंभ में किसी दिशा वा देश में किसी जीव की कोई योनि शेष नहीं थी और प्रकृति जड़ होने से इस चमत्कार चातुरीयुक्त सृष्टि को उत्पन्न कर ले, यह संभव नहीं। इसलिये चेतन परमात्मा के संकल्प से उपादान कारण प्रकृति में से इस आश्चर्य रूप जगत् का उत्पन्न होना माना जा सकता है इसलिये सर्गारंभ में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सब प्राणियों के देहों को परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न होने से सांकल्पिक कहा गया।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो समान कारण से उत्पन्न हुये समस्त शरीर एक से होते, भिन्न भिन्न और विलक्षण सृष्टि की उत्पत्ति का क्या कारण है ?

उत्तर— **धर्म विशेषाच्च ॥८॥**

विशेष धर्म से और विशेष अधर्म से।

सृष्टि के आरंभ में जो जीव भिन्न भिन्न देहों को धारण करते हैं उन्होंने पूर्वकल्प में भिन्न भिन्न प्रकार के धर्म विशेष और अधर्म विशेष किये थे बस उन्हीं धर्माधर्मों के विशेष होने से मनुष्य पशु पक्षी आदि एक दूसरे से विलक्षण शरीर उत्पन्न हुये।

अर्थात् सातवें सूत्र में कहा हुआ ही एक हेतु नहीं है जिससे दिशा और देश का पूर्व कारण में भेद न होने से सब के एक से देह उत्पन्न होने की शंका बन सकती किन्तु दूसरा हेतु भी जो इस आठवें सूत्र में कहा गया है वह धर्म और अधर्म विशेष है क्योंकि सब जीवों के धर्म अधर्म आपस में समान नहीं होते इसलिये धर्माधर्म का फल भोगने के लिये जो देह उनको दिये जाते हैं वे सब ही एक से नहीं होते किन्तु अपने २ किये हुये धर्म विशेष और अधर्म विशेष से सबको भिन्न भिन्न प्रकार के देह मिलते हैं। सर्गारंभ के शरीरों के अयोनिज होने में अन्य भी हेतु है यथा—

समाख्याभावाच्च ॥९॥

प्रसिद्ध नाम पाये जाने से भी।

भृगु, वसिष्ठ, गौतम, भरद्वाज, अंगिरा, यमदग्नि आदि कितने हो ऋषियों के नाम सदा से प्रसिद्ध हैं कि जिनका कोई पिता वा माता परमात्मा के अतिरिक्त नहीं था। इस ऐतिहासिक प्रमाण से भो सांकल्पिक अयोनिज शरीर सिद्ध होते हैं। क्योंकि—

संज्ञाया आदित्वात् ॥१०॥

संज्ञा के सबसे प्रथम होने से।

वसिष्ठ, अंगिरा, कश्यपादि की संज्ञा (नाम) सब से प्रथम पाये जाते हैं। उनसे पूर्व उनके पिता आदि का नाम नहीं पाया जाता। इससे उनको अयोनिज मानना बनता है।

पुराणों ने ऋषियों को अयोनिज सृष्टि बतलाया है। जैसे पुराणों ने ऋषियों को अयोनिज लिखा है इसी भांति वैशेषिक दर्शन ने भी ऋषिसृष्टि को सांकल्पिक सृष्टि माना है नहीं मालूम इतने पर भो पुराणों में कही हुई मानसिकसृष्टि मिथ्या कैसे हो जाती है। वेदों में भी मानसिक सृष्टि कही गई है प्रथम वेदोक्त मृत्युलोक की सृष्टि का अवलोकन करें—

सा ह इयमीक्षां चक्रे कथं नु मां आत्मन एव जनयित्वा संभवति, हंत तिरोसानीति। सा गौरभवत् वृषभ इतरः। स तामेव समभव-त्ततो गावोऽजायंत।

पत्नी ने देखा कि इसने मुझको अपने शरीर से ही बना कर मुझसे रमण किया, इस खेद से वह छिप गई। छिप कर गौ हुई। पुरुष ने भी वृषभ बन कर उससे व्यवाय किया। उससे गोजाति उत्पन्न हुई।

बडवा इतरा अभवदश्व इतरः। गदर्भी इतरा अभवद्गर्दभ इतरः, स तामेव समभवत्तत एकशफा अजायन्त। अजा इतरा अभवत् वस्त इतरः। अविरितरा मेष इतरः। स तामेव समभवत्ततः अजा अवयश्च अजायन्त। यदिदं किंच मिथुनं अपिपीलिकाभ्यः तत्सर्वमसृक्षत। शतपथ।

फिर वही पत्नी घोड़ी हुई पुरुष घोड़ा बना। पत्नी फिर गदही बनी पुरुष गदहा बना फिर दोनों ने आपस में मैथुन किया उससे एक टाप वाले अश्व, गर्दभ उत्पन्न हुये। फिर पत्नी बकरी बनी पुरुष बकरा बना। पत्नी फिर भेड़ बनी पुरुष मेढ़ा बना फिर आपस में उन्होंने रमण किया उससे भेड़ बकरी बनी इसी प्रकार दोनों चींटी तक बनते गये और संसार बनता गया।

वेदोक्त मर्त्यलोक की सृष्टि को आप देख चुके अब ऋषि सृष्टि को देखिये। मनुजी लिखते हैं कि—

मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥

मनु० अ० १ श्लो० ३५

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। ब्रह्मा ने इन दश पुत्रों को रचा।

जिस प्रकार मरीच्यादि ऋषि पुराणों में अयोनिज लिखे हैं उसी प्रकार इनको मनुस्मृति ने भी अयोनिज लिखा है। इस विषय में वेद भी देखिये—

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचांगिरे ब्रह्मविद्याम् ॥

मुण्डकोपनिषत् ।

समस्त विद्याओं का अधिष्ठान ब्रह्मविद्या को ब्रह्मा ने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा से कहा। जो ब्रह्मविद्या ब्रह्मा ने अथर्वा को बतलाई थी वही ब्रह्मविद्या अथर्वा ने अंगिरा से कही।

यहां पर अथर्वा को ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है और ब्रह्मा ने ब्रह्मा शरीर से अमैथुनी ही सृष्टि रची है अतएव सिद्ध है कि आरंभ में जो ब्रह्मा ने ऋषियों की रचना की है वह सांकल्पिक (संकल्पमात्र की) सृष्टि है। यजुर्वेद कहता है कि देवसृष्टि, अयोनिज होती है—

ये देवा मनोजाता मनोयुजो
दक्ष क्रतवस्तेनोऽवन्तु ते नः पांतु तेभ्यः स्वाहा ॥ यजु० ४। ११

जो देवता मन से उत्पन्न होते हैं और जो मन से संबंध रखते हैं तथा संकल्पितार्थ करनेवाले हैं वे हमारी रक्षा करें और वे हमारे यज्ञ को सुरक्षित करें उनके लिये हम आहुति देते हैं।

सिद्ध हो गया कि सांसारिक सृष्टि योनिज और अयोनिज भेद से दो प्रकार की है सृष्टिकाल के आरंभ में जो ऋषियों की उत्पत्ति है वह सांकल्पिक अयोनिज है और इसके पश्चात् फिर योनिज सृष्टि है किन्तु विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, और गंधर्व किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत। ये जो दशभेद वाली देवसृष्टि है यह मानसिक सांकल्पिक है, यह योनिज नहीं है।

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मणि सृष्टिपादस्त्रयोदशः।

* श्रीगणेशाय नमः *

* भूभ्रमणपादः *

मृगांके मूर्तिस्त्वं ह्यमरगणभर्ता कृत इति
नृणां वर्मात्मात्मे क्षणित विदुषां यश्च यजताम् ।
क्रतुर्लोकानां यो लयभर भवेषु प्रभुरयं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥१॥

आजकल के मनुष्यों का एक यह भी कटाक्ष चलता है कि पुराणों में पृथिवी को स्थिरा और सूर्य का भ्रमण लिखा है यह आजकल के विज्ञान के विरुद्ध है क्या विज्ञान-विरोधी पुराण कभी मान्य हो सकते हैं ?

उत्तर—सनातनधर्म कोई साधारण धर्म नहीं है। इस धर्म ने संसार के बड़े बड़े विद्वानों के दाँत खट्टे कर डाले हैं। भूविचार के ऊपर आज तक कितने मत प्रचलित हुये और सनातनधर्म ने उनको किस प्रकार गिराया इस बात को भूभ्रमण विचारवालों ने कभी स्वप्न में भी नहीं देखा होगा। पश्चिमीय शिक्षा रूपी आग्रह में बँधकर ही आज-कल के लोग भूभ्रमण भूभ्रमण चिल्लाते हैं विद्वत्ता के विचार कुछ भी नहीं रखते। यह सर्वदा से चला आया है कि कोई प्रभावशाली मनुष्य जिस सिद्धान्त को लोकसमूह के आगे रख दे ज्ञानशून्य लोकसमूह उसी के पीछे भाग निकलता है। इस भूविचार में ही ऐसी अनेक घटनायें सनातनधर्म के समक्ष आईं किन्तु इस वीर ने अपनी प्रबलविद्या के प्रताप से उन मिथ्या सिद्धान्तों को गिराकर फिर वैदिक सिद्धान्त का उत्थान किया।

* भूपतन *

सब से प्रथम संसार में यह आवाज़ उठी कि—

(१) कोई भी भारी पदार्थ आकाश में निराधार रह नहीं सकता उसका यह प्राकृतिक स्वभाव है कि वह नीचे को गिरे। इसी न्याय को लेकर विशेष गुरुत्व रखने वाली निराधार पृथ्वी आकाश में नहीं ठहर सकती अतएव यह पृथ्वी बड़े वेग से प्रति-क्षण नीचे को चली जा रही है।

भारतवर्ष में जिस समय बौद्धों की यह आवाज छा गई उस समय सनातनधर्म के विद्वानों ने विद्वता के जोर से इस कल्पित सिद्धान्त का घोर प्रतिवाद किया। फल

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, दीनजन-प्रतिपालक, वैश्यवंशावतंस

श्री १०५ सेठ रामशुकजी चंडक, रईस

सोलापुर।



पुराणवर्म के लिये सहायता १०१)

वर्तमान समय के हिन्दुओं को धर्म से घृणा हो गई है। इसी कारण से पुराणों का खंडन करते हैं। संसार में कभी कलह न हो—सर्वदा शान्ति रहे—प्रत्येक मनुष्य विद्वान्, साहसी, वीर, अपने कुटुम्ब का पालन करनेवाला, तथा देशभक्त हो। ऐसे धर्म को, और मरने पर मोक्षदाता धर्म को पुराण सिखलाते हैं। इसी कारण वेद पुराणों के महत्व को गाता है—

स बृहतींदिशिमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्य च वै सपुराणस्य गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।

मर्चेंट प्रेस, कानपुर।

उसका यह हुआ कि धीरे धीरे पृथ्वीपतनबोद्धसिद्धान्त उड़ गया और आकर्षण शक्ति द्वारा स्थित पृथिवी है इस वैदिक सिद्धान्त को मनुष्य फिर मानने लग गये। इस विषय में जो उत्तर लिखे गये हैं उनका दिग्दर्शन करवाता हूं।

आकृष्टशक्तिश्च महीतयायत्
खस्थं गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति
स मे समन्तात्क्वपतत्वियं खे ॥ सिद्धान्त शिरोमणि।

पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होने के कारण पृथ्वी उस शक्ति से आकाशस्थ गुरुपदार्थ को अपनी तरफ खींचती है किन्तु वह पदार्थ ऐसा मालूम देता है मानो अपने गुरुत्व के कारण नीचे को गिर रहा है। जब यह पृथ्वी आकर्षण शक्ति से दूसरे पदार्थ को भी अपनी तरफ खींच लेती है तो फिर नीचा ऊंचा भेदशून्य चारो तरफ से समान आकाश में यह पृथ्वी किस प्रकार गिरेगी।

गुरुत्वात्पतनं भूमेर्मन्यन्ते ते कुबुद्धयः।
अधोधः क्रमतो बौद्धाः क्षिप्तं यद्गुरुखेथयत् ॥
भूमिं यातीति दृष्ट्वापि प्रवदन्त्यन्यथा यतः।
कुत ऊर्ध्वं कुतश्चाधो वृत्तं भूमेः समाम्बरे ॥

कमलाकर सि० त० वि० मध्यमाधि०।

जैसे ऊपर को फेंका हुआ गुरुपदार्थ नीचे को गिरता है इसी प्रकार जो पृथ्वी के गुरु होने से पृथ्वी का अधःपतन मानते हैं वे बौद्ध विचारशून्य हैं। जैसे ऊपर का फेंका हुआ पदार्थ नीचे को गिरता है इसको देख कर जो पृथ्वी का पतन मानते हैं उनसे हमारा यह प्रश्न है कि पृथ्वी का ऊपर और पृथ्वी का नीचा क्या है जो हमारी तरफ से नीचा है वही भाग समान सूत्र में पृथ्वी के नीचे बसनेवाले लोगों के लिये ऊपर का भाग है। इसी प्रकार हमसे दक्षिण बसनेवालों के लिये जो अधोभाग है वह उनके समान सूत्र में बाईं तरफ बसनेवालों के लिये ऊर्ध्वभाग है। जब चारो ही भाग पृथ्वी के लिये ऊर्ध्व और अधोभाग ठहरते हैं तब फिर पृथ्वी किधर को गिरती है बौद्धों के पास इसका क्या उत्तर है ?

यदि गच्छति भूरधोमुखी
गगने क्षिप्तमुपैति नो महीम्।

यदि चोर्ध्वमुपैति सा तदा
निकटः किं न भवेद्ग्रपंजरः ॥

लल्लाचार्य शि० वृ० गो०।

यदि पृथ्वी हमसे नीचे को जा रही है तो फिर आकाश में फेंका हुआ ढेला पृथ्वी पर न आना चाहिये कारण इसका यह है कि ढेले में गुरुत्व कम है इसलिये उसकी चाल धीमी होगी और पृथ्वी में भारीपन अधिक है इस कारण इसकी गति तेजो की होगी किन्तु ऊपर का फेंका हुआ ढेला पृथ्वी पर आ जाता है इससे हम जानते हैं कि यह नीचे को नहीं जाती। यदि हम यह मानलें कि पृथ्वी हमसे ऊपर को गिर रही है अर्थात् हमारे समान सूत्र में नीचे बसनेवालों के अधोभाग में गिर रही है तब तो यह पृथ्वी ग्रहपंजर के समीप आ जानी चाहिये। ऐसा नहीं है अतएव इसका पतन भी सिद्ध नहीं।

जिन्हों ने उत्तम रीति से ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया है वे इस बात को उत्तम रीति से जानते हैं कि पृथ्वी पर ऊंचा नीचा विभाग ही नहीं कहा जा सकता। जिन देशों को हम नीचा मानते हैं वे देश हमको नीचा मानते हैं इस बात को बोद्धों ने नहीं जाना। फिर गुरुवस्तु जो ऊपर से पृथ्वी की तरफ को भागती है वह अपने गुरुत्व से नीचे नहीं आ रही किन्तु पृथ्वी की आकर्षणशक्ति से नीचे आ रही है। यदि कोई वस्तु किसी प्रकार से इतनी ऊंची चली जावे कि वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से बाहर निकल जावे तो वह वस्तु फिर अपने गुरुत्व से पृथ्वी की तरफ को नहीं आवेगी। इसको न जान कर बोद्धों ने पृथ्वी के पतन का सिद्धान्त स्वीकार किया।

चन्द्रार्कवृद्धि

इसके पश्चात् सनातनधर्म के सामने एक और मत आकर खड़ा हुआ वह यह था कि—

(२) केवल जम्बूद्वीप में दो सूर्य, दो चन्द्र और प्रत्येक तारागण दो दो हैं जो सुमेरु की आड़ में एकान्तर से हम लोगों को देख पड़ते हैं और इसी प्रकार अन्यान्य द्वीपों में भी द्वीपों के परिमाणानुसार द्विगुण, त्रिगुण संख्या सूर्यादिकों की होने से सहस्रों सूर्यादिक भ्रमण करते हैं।

इस सिद्धान्त के प्रचलित होते ही अज्ञ मनुष्य इसके पीछे टूट पड़े। भारतवर्ष के घर घर में यह बात फैल गई कि सनातनधर्म कितना मूर्ख है जो एक ही सूर्य और एक ही चन्द्र मानता है। उस समय में फिर सनातनधर्म के विद्वानों की लेखनी उठी और

यह सिद्ध कर दिया कि एक सूर्य तथा एक ही चन्द्र पृथ्वी के चारो तरफ भ्रमण करता है। अनेक सूर्य और अनेक चन्द्रमाओं का भ्रमण मानना भ्रम है।

इस विषय में दिये हुये उत्तरों में से कुछ उत्तरों का हम यहां पर दिग्दर्शन करवाते हैं—

अर्हत्प्रोक्तेर्केन्दू द्वौ द्वावेकान्तरोदयौ किल तौ।
यद्येवमर्कसूत्रात्किं ध्रुव चिन्हं भ्रमत्यह्वा॥

वराह कृत पं० सि०।

अर्हन् के कहे हुये यदि जंबूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं तो फिर क्या ध्रुव चिन्ह को दिन हो से भ्रमण करते हैं ऐसा होने पर कभी रात्रि नहीं होगी अतएव दो सूर्य दो चन्द्र का कथन भ्रम है।

द्वितयं दिनरात्रिनाथयोः
कथमेकान्तरितं तदुद्व्रजेत।
यदि ध्रुवतारकातिमे
दिवसे नैव भवेत्परिभ्रमः॥

शि० वृ० गो सि० श्लो० ४४

यदि दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं तो उनका एकान्तरित में किस प्रकार उदय होगा। यदि उदय भी मान लें तो फिर ध्रुव और तारों में जो तिमिर कहा है क्या वह दिन में ही आकर भ्रमण करेगा।

अन्यमत

(३) इसके पश्चात् फिर ग्रहपंजर भ्रमण पर और भी कई एक विवाद उठे। आजकल के साधारण मनुष्यों के लिये उन विवादों का समझना भी अति कठिन है। ग्रंथचुंबक भले ही कह दें कि हमारा दिमाग बड़ा तेज है और हम सब विषयों को समझ लेंगे किन्तु कोई भी विद्वान् इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि उच्च सिद्धान्त जानने के लिये उस विषय के पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। पूर्ण ज्ञान जाने बिना उच्च सिद्धान्त नहीं जान सकते। किसी विद्या के सीखने के लिये उस विद्या की सहायकविद्या भी सीखनी पड़ती है इस विषय को हम ही नहीं कहते संसार के सभी विद्वान् कहते हैं। भास्कराचार्य लिखते हैं कि—

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं
तदवगमननिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः ।
यदि भवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं
प्रपठितुमधिकारी सोऽन्यथा नामधारी ॥

दो प्रकार का गणित है एक साधारण गणित और दूसरा बीजगणित। इन दोनों में ही निष्णात हो और वह शब्दशास्त्र का पंडित हो ऐसा मनुष्य ही ज्योतिष पढ़ने का अधिकारी होता है। ऐसा न होकर जो ज्योतिष पढ़ता है वह ज्योतिष पढ़ने का नाम करता है।

ज्योतिष में भी 'गोलाध्याय' तथा 'गणिताध्याय' सर्व श्रेष्ठ और ज्योतिषविद्या की पराकाष्ठा है। गोलाध्याय और गणिताध्याय के बिना जाने 'ग्रहपंजर' पर उठे हुये विवादों का समझना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। साधारण मनुष्यों की समझ में नहीं आवेगा हमने यही जान कर यहां पर वादी पक्ष, तथा प्रतिवादी पक्ष के द्वारा पक्ष स्थापित करके पक्षान्तर से उसका खंडन करके दिखलाना अनुचित समझा। इन उठे हुये मतों में 'केप्लर' का मत अति प्रसिद्ध है। सनातनधर्म के विद्वानों ने अपनी विद्वत्ता से उसका खंडन करके यह सिद्ध कर दिया कि—

सूर्यादि ग्रहगण अपने अपने प्रतिमण्डल में अपनी अपनी स्पष्ट दैनिक गतियों द्वारा पृथ्वी के चारो ओर पूर्वाभिमुख भ्रमण करते हैं और प्रवहवायु की गति से ६० दण्ड, अथवा २४ घंटा में वे ग्रहगण भपंजर के सहित पृथ्वी के चारो ओर पश्चिमाभिमुख एक बार भ्रमण कर जाते हैं।

* भूभ्रमण का मिथ्याभान *

इन विवादों के दब जाने के पश्चात् फिर "पैथागोरास महाशय" प्रभृति यवनाचार्यों ने एक चौथा सिद्धान्त उठाया वह यह है कि—

(४) ग्रहगणों का अपनी अपनी स्पष्ट दैनिक गति से पूर्वाभिमुख भ्रमण करना तो ठीक है किन्तु प्रवहवायु की गति से भपंजरों सहित सूर्यादि ग्रहगणों का २४ घण्टा, एक दिनरात में एक बार पृथ्वी के चारो ओर पश्चिमाभिमुख भ्रमण करना केवल कल्पना मात्र है। वास्तव में २४ घंटा, एक दिनरात में एक बार पृथ्वी ही अपने अक्ष (धुरी) पर पूर्वाभिमुख भ्रमण कर जाती है अतएव यह मिथ्या भान होता है कि ये

अपार भपंजरों सहित सूर्यादि ग्रहगण समानगति से पश्चिमाभिमुख चलते हैं।

यही मत आजकल अंग्रेजी के विद्वानों का है और यही मत 'सर इज़कन्यूटन' का है। इस मत की पुष्टि करने के लिये बा० उदितनारायणसिंह क्षत्रिय ने बड़ा परिश्रम उठाया है। बहुत से श्लोकों का अर्थ बदला। जब अर्थ से काम न चला तो फिर पाठ बदला। बा० उदितनारायणसिंह आर्यसमाजी का यह कार्य नीचता का है। ऐसे विषयों में जो विवाद उठें उनमें न्याय होना चाहिये किन्तु उदितनारायणसिंह ने हिन्दुओं और आर्षग्रंथों को गिराने के लिये तथा यवनों के सिद्धान्त को सत्य करने के लिये न्याय का गला घोट डाला। अस्तु, इच्छा उनकी, इसमें कोई क्या कर सकता है।

इस चतुर्थ शंका का उत्तर तीन प्रकार से हो सकता है (१) ज्योतिष के ग्रंथों के प्रमाणों से (२) उपपत्ति सहित गणित से (३) वेद से। इन तीन प्रकारों में से हम दो प्रकार लेंगे। सबसे पहिले हम प्रथम प्रमाण से निर्णय करेंगे। इसके पश्चात् हम तृतीय प्रमाण से विवेचन करेंगे। द्वितीय प्रमाण को छोड़ देंगे, यह बहुत क्लिष्ट है। जब तक मनुष्य ग्रह का मध्यम तथा उच्च, पात, गति न समझेगा तथा गणित का विद्वान् न होगा तब तक इस प्रकार के निर्णय को समझ नहीं सकेगा। ऐसे उच्च विद्वानों से हमारी प्रार्थना है कि यदि इस विषय में उनको कुछ संदेह हो तो फिर वे स्वर्गवासी महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजी का बनाया हुआ "भूगोलचलाचल निरूपण" नामक ग्रंथ देख लें अथवा स्वर्गवासी महामहोपाध्याय पंडित बापूदेव (नृसिंहदेव) शास्त्री सी० आई० ई० का बनाया हुआ "प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय वर्णन" अथवा पं० इन्द्रनारायण जी शर्मा सराय आकिल इलाहाबाद को निर्माण की हुई "भ्रुमति प्रकाशिका" नामक पुस्तक देखें। इन ग्रंथों में से यदि एक ग्रंथ भी देख लिया जावे तो फिर स्पष्ट हृदयङ्गम हो जाता है कि पृथ्वी का घूमना यह सिद्धान्त भ्रमजन्य है और वास्तव में भूमि सर्वतोभाव से अचला है तथा सूर्यादि ग्रहगण अपने अपने प्रतिमण्डल में अपनी अपनी स्पष्ट दैनिक गतियों द्वारा पृथ्वी के चारो ओर पूर्वाभिमुख भ्रमण करते हैं और प्रवहवायु की गति से ६० दण्ड अथवा २४ घण्टा में वे ग्रहगण भपंजर के सहित पृथ्वी के चारो ओर पश्चिमाभिमुख एक बार भ्रमण कर जाते हैं।

दैवज्ञ निर्णय

इस विषय में भारतवर्ष के प्राचीन ज्योतिषाचार्यों के दिये हुये भूभ्रमण खंडनात्मक विचारों को प्रथम हम पबलिक के आगे रक्खें और उनको उत्तम रीति से समझाने का उद्योग करें जिससे पाठक पृथ्वी घूमती है या ग्रह घूमते हैं इसको जान जावें।

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि ।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रा वत वस्तुशक्तयः ॥५॥

सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय ।

जैसे सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में गति, पाषाण में स्वभाव से कठिनता है ऐसे ही स्वभाव से पृथ्वी अचल है, वस्तुओं की शक्ति विचित्र है ।

द्वितीय प्रमाण—

भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षिति-
रित्यपरे वदन्ति नोडुगणाः ।
यद्येवं श्येनाद्या नखात्पुनः
स्वनिलयमुपेयुः ॥ ६ ॥
अन्यच्च भवेद्भूमेरन्हा
भ्रमरंहसा ध्वजादीनाम् ।
नित्यं पश्चात्प्रेरण-
मथाल्पगास्यात्कथं भ्रमति ॥ ७ ॥ वराहमिहिर ।

जो यह कहते हैं कि पृथ्वी ही घूमती है भपंजर नहीं घूमता तो उनसे हमारा यह प्रश्न है कि ऐसा होने पर पक्षी अपने घोसलों में नहीं जा सकेंगे ॥६॥ यदि पृथ्वी तीव्र वेग से पूर्वाभिमुखी भ्रमण करती है तो ध्वजा पताका पृथ्वी के वेग से सर्वदा पश्चिम की तरफ को ही उड़ेंगी और यदि पृथ्वी मंद वेग से पूर्व को चलती है ऐसी दशा में २४ घंटे में उसका पूर्ण भ्रमण नहीं हो सकेगा ॥७॥

तृतीय प्रमाण—

यदि च भ्रमति क्षमा तदा
स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः ।
इषवोऽभिनभः समुज्झिताः
निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि ॥ ४२ ॥

पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घनः।
अथ मंदगमात्तदा भवेत्
कथमेकेन दिवा परिभ्रमः ॥ ४३ ॥ शि० वृ० गो०।

यदि पृथ्वी चलती है तो फिर पक्षी अपने घोसलों में नहीं पहुंच सकेंगे और आकाश का फेंका हुआ बाण पश्चिम में गिरेगा ॥ ४२ ॥ यदि पृथ्वी पूर्वाभिमुखी घूमती है तो फिर बादल हमेशा पश्चिम को जायगा। यदि कहो कि पृथ्वी धीरे धीरे चलती है इस कारण बादल पश्चिम को नहीं जाते तो ऐसी मंदगति से एक दिवस में पृथ्वी का भ्रमण कैसे होगा ॥ ४३ ॥

* स्पष्टीकरण *

पृथ्वी चलती है आजकल यह मत पाश्चात्यदेश निवासियों का है। उन्हीं के चोटी काटे प्यारे शिष्य हिन्दू भी कहने लग गये हैं कि नहीं नहीं हम नहीं मानेंगे, पृथ्वी अवश्य घूमती है। इनके मतमें पृथ्वी की परिधि (दायरे का घेरा) २५ हजार मील है। जैसे जोर से गेंद घुमाई जाती है या जोर से कुम्हार का चाक घूमता है इनके मत में वैसे ही पृथ्वी घूमती है। २५ हजार मील पृथ्वी का २४ घंटे में एक दौरा हो जाता है। यदि हम इस पर त्र्यैराशिक लगा लें तो एक घंटे में १०४१ मील पृथ्वी घूम जाती है। एक मिनट में १७ मील घूमती है। बड़ी तेज चाल है। यदि हम इतनी तेज चाल पृथ्वी में मान लें तो फिर चार दोष आवेंगे। एक तो पक्षी अपना घोसला न पा सकेंगे। कल्पना करो कि प्रातःकाल छः बजे कबूतर आकाश को उड़ गया और वह आठ बजे उतरा, अब वह घोसले में जाना चाहता है तो उसको क्या घोसला मिल सकेगा। वह दो घंटे उड़ा है, दो घंटे में उसका घोसला २ हजार मील आगे बढ़ गया है। अब हजरत आकाश में ही फिरें मारे मारे। यदि कबूतर ऊपर उड़कर तुरंत ही उतरने लगा, अब भी उसको घोसला न मिलेगा। क्योंकि उड़ने में लगे तीन मिनट। तीन मिनट में उसका घोसला गया ५१ मील। अब जो वह लौट रहा है तो उसकी चाल धीमी है और पृथ्वी की चाल तेज है अब हजरत यह भी आकाश में ही रहा। द्वितीय दोष—बाण पश्चिम को जायगा। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने धनुष पर रख कर तीर ऊपर को फेंका अब वह तीर पश्चिम में गिरेगा। कारण इसका यह है कि धनुष से तीर निकल कर आकाश में गया और फिर वहाँ से लौटा। आने जाने में बाण को लगा आधा

मिनट। अब आधे मिनट में जहां से वह बाण ऊपर को फेंका गया है वह भूमि ८॥ साढ़े आठ मील पूर्व को चली गई इस कारण बाण सर्वदा पश्चिम में गिरेगा। तीसरा दोष सुनिये—पृथिवी प्रति घंटे में १०४१ मील चलती है। बड़ी तेज चाल है। इस तेज चाल से आकाश में धक्का लगेगा, उस धक्के से वायु पैदा हो जायगा। पृथिवी तीव्र-वेग से पूर्व को जा रही है। इसके धक्के से उठा जोरदार वायु पश्चिम को जायगा। इस कारण ध्वजा पताका सर्वदा जोर के साथ पश्चिम को उड़ती रहेंगी। चतुर्थ दोष—बादल भी सर्वदा पश्चिम को दौड़ा करेंगे। समझिये आज बादल उठा और वह बादल पूर्व को जा रहा है तथा पृथ्वी भी पूर्व को जा रही है। बादल की चाल धीमी होती है, पृथ्वी की चाल बहुत तेज है, पृथ्वी पूर्व को चलती हुई बादल से आगे निकल जावेगी। उस समय हमको यह मालूम होगा कि बादल पश्चिम को दौड़ा जा रहा है। भूभ्रमण के मानने में प्रत्यक्ष विरुद्ध ये चार दोष आवेंगे। यदि कोई भूभ्रमणवादी यह कहे कि हम इतनी तेज चाल से पृथ्वी को थोड़े ही दौड़ावेंगे। यदि इतनी तेज चाल से न दौड़ावेंगे तो पृथ्वी एक दिन रात में अपना दौरा भी पूरा नहीं कर सकेगी। ज्योतिषाचार्यों के मत का यह अभिप्राय है। पाठक इसको समझने का उद्योग करें।

ज्योतिष शास्त्र के प्रत्येक सिद्धान्तग्रंथ में ऐसे प्रमाण पाये जाते हैं कि जिन प्रमाणों के पढ़ने से पृथ्वी का स्थिरा होना और सूर्यादि ग्रहगण अपने अपने प्रतिमण्डल में अपनी अपनी स्पष्ट दैनिक गतियों द्वारा पृथ्वी के चारो ओर पूर्वाभिमुख भ्रमण करते हैं तथा प्रवह वायु की गति से ६० दण्ड अथवा २४ घंटा में वे ग्रहगण भपंजर के सहित पृथ्वो के चारो ओर पश्चिमाभिमुख एक बार भ्रमण कर जाते हैं फिर हम कैसे मान लें कि भूभ्रमण करती है।

आर्यभट्टविवाद

कई एक लोगों का कथन है कि भारतवर्ष में सब से प्राचीन ग्रंथ आर्यभट्टीय है जिसको आर्यभट्ट ने शाके ४२१ में चार पादों में १२० श्लोक से निर्माण किया है उसमें भपंजर का स्थिरत्व और धरा का भ्रमण सिद्ध किया गया है फिर हम कैसे मान लें कि आर्षग्रंथों में भपंजर भ्रमण और धरा को स्थिरत्व है।

इसका उत्तर यह है कि आर्यभट्टीयसिद्धान्त नामक ग्रंथ जिसमें १८ अधिकार हैं और ६२५ आर्याछन्द हैं आर्यभट्ट ने आर्षसिद्धान्त को लेकर बनाया था। इसमें भपंजरभ्रमण और पृथ्वी का अचलत्व उत्तम रीति से सिद्ध किया गया है फिर कोई कैसे कह सकता है कि आर्यभट्ट भूभ्रमण मानता है।

१२० श्लोक वाली आर्यभट्टीय जो आर्यभट्ट ने बनाई है उसके बनाने का कारण दूसरा ही है। वह यह है कि उस समय भारतवर्ष में अनेक आर्षसिद्धान्तग्रंथ वर्तमान थे और उसी समय में लल्ल तथा वराहमिहर जैसे ज्योतिष के धुरंधर विद्वान् विद्यमान थे। उस समय में सिद्धान्तग्रंथ लिख कर भी कोई प्रतिष्ठा नहीं पा सकता था। आर्यभट्ट ने जब आर्यभट्टीयसिद्धान्त लिख कर भी प्रतिष्ठा न पाई तब अपनी प्रतिष्ठा के लिये भूभ्र-मूलक भूभ्रमण यवन मत को १२० श्लोक की आर्यभट्टीय में लिख कर आत्मश्लाघा पाने की आकांक्षा की। केवल इस हेतु से १२० श्लोक की आर्यभट्टीय चार पादों में निर्माण की है किन्तु यह उसका सिद्धांत नहीं था। इस विषय में अनेक विद्वानों ने बड़ी २ विस्तृत विवेचनायें की हैं जिन विवेचनाओं से यही सिद्ध है कि १२० श्लोक की आर्य-भट्टीय में जो आर्यभट्ट ने लिखा है यह यवन सिद्धान्त है और आर्यभट्ट इसको नहीं मानते थे। जिसको यह विवेचना देखनी हो वह 'सुमति प्रकाशिका' नामक पुस्तक देख ले।

वेद विचार

हिन्दू शास्त्रों में लिखा है कि जो वेद के एक अक्षर का अर्थ बदलता है वह महा-पापी है किन्तु जिसने वेद के अर्थ बदलने में एक अक्षर भी शेष नहीं रक्खा वह कितना पापी होगा विद्वान् लोग इसको त्र्यैराशिक से जान लें। वेदों के अर्थ बदलनेवाले महा-शय लिखते हैं कि पृथ्वी चलती है और पृथ्वी के चलने में यह महात्मा एक मंत्र देते हैं—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुनः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः। यजु० ३। ६

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारो ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है।

(१) क्या मजे की बात है मुसलमानों का सिद्धान्त वेद में से निकल पड़ा। जिन हिन्दुओं का वेद धर्मपुस्तक था, वेद ने उनके सिद्धान्त को खंडन कर दिया और मुसलमानों के सिद्धान्त को सत्य बना दिया इस प्रकार की घटनायें संसार में कभी देखी नहीं गईं वरन ऐसा देखा जाता है कि जिसका धर्मपुस्तक होता है उसके सिद्धान्त का मण्डन करता हुआ परपक्ष को मिथ्या ठहराया करता है किन्तु यहां पर इसके विरुद्ध हुआ। इससे हम कह सकते हैं कि वेद का बहाना लेकर परिव्राजकाचार्य ने मुसलमानों की हिमायत की है और न्याय का गला घोंट डाला है।

(२) इस मंत्र का सर्पराज्ञी, कद्रु ऋषिः, गायत्री छन्दः, अग्नि देवता है। वेदों का यह नियम है कि जो जिस मंत्र का देवता होता है उस मंत्र में उसके देवता का वर्णन होता है। जब इसका अग्नि देवता है तो पृथ्वीपरक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता किन्तु इस वेदज्ञ महाशय ने यह समझा कि मंत्र में उसके देवता का वर्णन होता है इसको तो संस्कृतज्ञाता हो समझेंगे संस्कृत से जो अनभिज्ञ हैं वे इस बात को न समझ कर हमारी बात को सत्य मान लेंगे। सच है, पक्षपात बड़े बड़े अनर्थ करवा देता है। शोक इस बात का है कि यवनों के सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये हिन्दू ही वेद का गला घोटते हैं।

(३) इस मंत्र के अर्थ में "मातरं-पितरं-पुनः" आदि कई एक शब्द बिल्कुल ही छोड़ दिये उनका अर्थ ही नहीं किया। जिस अर्थ में मंत्र के शब्द ही छूट जांय क्या कभी वह अर्थ भी सत्य हो सकता है? हमको नहीं मालूम ऐसे अर्थ को कोई कैसे सच मान लेगा।

(४) यदि हम इस मंत्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रख दें तो कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि इस मंत्र का यही अर्थ है जो इसके भाषा टीका में लिखा है। हम इस बात की बहस नहीं करते कि इस मंत्र में पृथ्वी का वर्णन है या अग्नि का, हमको तो इतना विचार करना है कि मंत्र के नीचे टीका रूप जो भाषा लिखी है वह इस मंत्र का अर्थ है या नहीं। इस निर्णय में लाचार होकर सभी मनुष्यों को कहना पड़ेगा कि भाषा में वेदमंत्र का अर्थ ही नहीं आया। यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने पूछा 'लोटे' का क्या अर्थ, जिससे पूछा गया उसने उत्तर दिया कि लोटे के माने 'जूता' है। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे अर्थ करनेवाले को भी हिन्दू वेदभाष्यकार मान लेते हैं।

वेदमंत्र का ठीक अर्थ देखिये-"(आयम्) इस (गौः) यज्ञ सिद्धि के अर्थ यजमान के घर आने जाने वाले (पृश्नि) श्वेतरक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने (आ) सब ओर से आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में (अक्रमीत्) अतिक्रमण किया (पुरः) पूर्व दिशा में (मातरम्) पृथ्वी को (असदत्) प्राप्त किया (च) और (स्वः) सूर्यरूप होकर (प्रयन्) स्वर्ग में चलते अग्नि ने (पितरम्) स्वर्गलोक को (असदत्) प्राप्त किया"। सिद्ध हो गया कि इस मंत्र में भूभ्रमण नहीं है किन्तु मंत्र का धोका देकर बलात्कार भूभ्रमण बतलाया जाता है।

निघंटु ने पृथ्वी को "निर्ऋति" लिखा है। 'निर्ऋति' का अर्थ है गमनरहित (चालशून्य)। यदि पृथ्वी चलती होती तो निघंटु इसको 'निर्ऋति' कैसे लिखता।

वेद भी इसको अचला बतलाता है, देखिये—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं
येन नाकः योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः।
कस्मै देवाय हविषा विधेम।

यजु० ३२। ६

जिसने द्युलोक जलपूर्ण अर्थात् वृष्टिदायक किया है और पृथिवी निश्चल वृष्टिग्रहण तथा अन्न निष्पादन में दृढ़ की है। जिसने स्वर्लोक जहां आदित्यमंडल तपता है सो और जिसने दुःखरहित स्वर्गलोक स्तंभित किया है। जो अंतरिक्ष में वृष्टिरूप जल का निर्माता है उस प्रजापति देवता के निमित्त हवि देते हैं।

इस मंत्र में पृथिवी को निश्चल बतलाया है और "आकृष्णेन रजसा ३३। ४३" इस मंत्र में सामान्यता से सूर्य का भ्रमण कहा है। हमको कोई आधार वेद में ऐसा नहीं मिलता कि जिसको लेकर हम भूभ्रमण मान लें। हां इसके विरुद्ध पृथिवी अचल है, निर्ऋति है यही वेद में मिलता है जिससे पृथिवी का स्थिरा होना सिद्ध है अतएव हम पूर्ण न्याय से यही स्थिर कर सकते हैं कि वेद में पृथ्वी अचला है।

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मणिभूभ्रमणाख्योनाम चतुर्दशःपादः।

* श्रीगणेशाय नमः *

भूगोलपादः

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वंदिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥१॥

(१) कई एक सज्जनों का कथन है कि पुराणों का भूगोल सर्वथा भ्रष्ट और अशुद्ध है। जिन पुराणकर्ताओं को भौगोलिक ज्ञान नहीं आता था उनके बनाये पुराण कैसे सत्य हो सकते हैं ?

उत्तर—जो लोग संस्कृत का एक अक्षर नहीं पढ़ते और अपनी पढ़ी हुई थोड़ी सी विद्या से अपने को संसार से अधिक विद्वान् मान बैठे हैं वे ही लोग पुराणों के भूगोल को भ्रष्ट और असत्य बतलाते हैं।

वास्तविक में पुराणवर्णित भूगोल का एक एक अक्षर सत्य है। आज तक जितने मनुष्य संसार में हुये किसी में भी यह शक्ति न हुई कि पुराण के भूगोल को भ्रष्ट तथा असत्य सिद्ध कर दें और आगामी काल में जो मनुष्य संसार में उत्पन्न होंगे वे भी पौराणिक भूगोल की सत्यता में धब्बा नहीं लगा सकेंगे। हमारा यह दावा है कि पौराणिक भूगोल सर्वथा सत्य है और जो उसको अशुद्ध बतलाते हैं वे महामूर्ख मनुष्य नहीं हैं किन्तु नरपशु हैं।

बिना लिखे पढ़े लोग पुराण वर्णित भूमि को अपनी भूमि से मिलाते हैं जब व्यास, परिधि, क्षेत्रफल, में बड़ा अन्तर पाते हैं तब पुराणों के भूगोल को अशुद्ध कह बैठते हैं। जिसको पौराणिक भूगोल का ज्ञान करना हो वह मनुष्य प्रथम पुराणों को पढ़े तब उसको पता लगेगा कि जिस भूमि पर हम रहते हैं ऐसी २ सहस्रों भूमियां पुराण वर्णित भूगोल के पेट में समा गई हैं इतने बड़े भूगोल को जो केवल पृथ्वी मात्र का भूगोल समझ बैठ उससे अधिक मूर्ख संसार में कौन हो सकता है।

प्रथम हम इस बात का प्रमाण देंगे कि पुराणों का भूगोल केवल उस पृथ्वी का नहीं है जिस पर हम रहते हैं। इसके पश्चात् यह सिद्ध करेंगे कि पौराणिक भूगोल में

श्रीसनातनधर्मवत्सला, अखण्डसौभाग्यशालिनी, स्वर्गस्था,

पातिव्रतधर्मपरायणा श्रीमती हरिमंगलादेवी

श्रीयुत साक्षरोत्तम, शीघ्रकवीश्वर, धर्मवीर, भारतभूषण, व्याख्यानमार्तण्ड,
सत्यसनातनधर्मभूषण

श्री १०५ नगीनदास पुरुषोत्तमदास वर्मा संघवी की धर्मपत्नी

अहमदाबाद शहर, गुजरात प्रान्त, इलाका बंबई



पुराणधर्म के लिये सहायता २५१)

हमारे पति संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् और सनातनधर्म के विख्यात वक्ता हैं । उनके संसर्ग से मैंने भी धर्म में कुछ जाना है। भारतवर्ष में दो धर्म ऐसे हैं जो संसार के किसी अन्य देश में नहीं हैं। एक ब्रह्मचर्य और द्वितीय पातिव्रतधर्म। इन दो ही धर्मों से मर्त्यलोक स्वर्ग से मो बढ़ कर बन जाता है। भारतवासियों के प्रातःकाल स्मरण करने योग्य दमयंती-अनुसूया-अरुंधती-गांधारी-भगवती जनकनन्दिनी प्रभृति सहस्रों देवियां ऐसी हुई हैं कि जिनकी कथाओं को सुन कर स्त्रियां पतिव्रता बन पातिव्रतधर्म के प्रभाव से अपने पति को भी मोक्ष में ले जा सकतो हैं। इन देवियों की पवित्र कथायें पुराणों में ही लिखी हैं। पुराणों का खंडन करके क्या भारतवर्ष के देवघरों को राक्षसघर बनाया जावेगा ?

पुराणधर्म पृष्ठ ३०८

मरचैंट प्रेस, कानपुर।

फिर हम आर्ष प्रमाणों से यह भी लिखेंगे कि जिस भूमि कितनी पृथिवी का वर्णन है पर हम रहते हैं उसका क्या मान है।

पुराण वर्णित भूगोल केवल इसी पृथ्वी को नहीं कहता जिस पर हम रहते हैं इसके प्रमाण नीचे देखिये :—

(१) एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य।

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६ श्लो० ७

इन नौ खण्डों में इलावृत नामक खंड सबके बीच में है, उसमें कुल पर्वतों का राजा मेरुपर्वत है, वह भूमण्डल रूप कमल का कर्णिका रूप है और जम्बू द्वीप की समान (एक लाख योजन) ऊँचा तथा जड़ से शिखर पर्यन्त सब सुवर्णमय है।

जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उस पृथ्वी पर कोई भी ऐसा पर्वत नहीं है जिसकी लंबाई चार लाख कोश हो इससे सिद्ध है कि पुराण जिसको वर्णन कर रहा है वह कोई बड़ी पृथ्वी है। फिर उस चार लाख कोश ऊँचे सुमेरु पर्वत पर क्या है इसको भी विचारिये--

मेरोर्मूर्द्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥ तामनुपरितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयभागेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२९

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

मेरुपर्वत के माथे पर मध्यभाग में रची हुई दश सहस्र योजन लंबी और मोटी, समान, चौकोर, भगवान् ब्रह्माजी की सुवर्णमय नगरी है ऐसा कहते हैं ॥२८॥ उस ब्रह्मपुरी के चारो ओर पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्रादि आठ लोकपालों की आठ नगरी, उन लोकपालों के वर्णों के अनुसार, ब्रह्माजी की नगरी से चौथाई (अढ़ाई अढ़ाई सहस्र योजन) में बनी हुई हैं। [ब्रह्माजी, इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान इन नौ दिक्पालों की नगरियों के नाम क्रम से मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णाङ्गना, श्रद्धावती, गंधवती, महोदया और यशोवती ये पुराणों में कहे हैं] ॥२९॥

जिस जमीन पर हम रहते हैं उसके ऊपर न तो एक लाख योजन ऊंचा कोई पर्वत है और न आठ दिक्पालों की कोई नगरी ही है। इस जमीन पर तो बौद्ध, यहूदी, ईसाई,

मुसल्मान, हिन्दू यही रहते हैं और यह जमीन जिस पर हम हैं १५८१ योजन से ऊंची नहीं है। फिर हम कैसे मान लें कि पुराण जिस पृथ्वी का वर्णन करते हैं वह हमारे रहने की भूमिमात्र है। लंबाई, चौड़ाई को ध्यान में न रखना, पुरी निर्माण भी न देखना, बलात्कार अपने रहने की पृथ्वी मान लेना इससे अधिक भूल क्या हो सकती है।

(२) मन्दरो मेरुमंदरः सुपार्श्वः कुमुद इति अयुतयोजनविस्तारोन्नाहा। मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भ गिरय उपक्लृप्ता ॥ ११ ॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजंबूकदंबन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वत केतव इवाधि सहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटप विततय शतयोजन परिणाहाः ॥ १२ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

मेरुपर्वत की पूर्व आदि चारो दिशाओं में मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व और कुमुद ये चार मेरुपर्वत के आधारभूत (टेकन) सुवर्ण के पर्वत दश दश सहस्र योजन विस्तारवाले और ऊंचे परमेश्वर ने रचे हैं॥ ११ ॥ इन चार पर्वतों पर क्रम से एक पर एक इस प्रकार आम, जामुन, कदंब और बड़ के प्रचंड वृक्ष, मानो पर्वतों की ध्वजा हैं ऐसे प्रतीत होते हैं, ११ सौ योजन ऊंचे और ११ सौ योजन शाखाओं के विस्तारवाले हैं, उनके शरीर का घेर सौ सौ योजन विस्तार का है॥ १२ ॥

जिस पृथ्वी पर हमारा निवास है उस पृथ्वी पर न तो ऐसे चार पर्वत ही हैं और न इतने बड़े बड़े वृक्ष ही हैं। फिर हम किस अवलंब से कह सकते हैं कि पुराण हमारी ही पृथ्वी का वर्णन करता है और इन चार पर्वतों पर जो दूध, शहद, ईख का रस, शुद्धजल के चार तालाब बतलाये गये हैं ऐसे तालाब इस मनुष्यलोक में कहीं पर भी नहीं हैं। हां, ऐसे अद्भुत तालावों का वर्णन वेद देवलोक में करता है। देखिये—

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वाधारा उपयंतु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः ॥

अथर्व० ४। ३४। ६

जिनमें घृतके ह्रदहैं जिनके किनारों पर शहद है, जिनमें अमृत ही जल है, दूध-दही से जो भरे हैं। तेरे लिये ये सब धारारूप से स्वर्गलोक में प्राप्त हों।

इसके अनन्तर इस नीचे लिखे प्रमाण से भी यही सिद्ध है कि पुराण बड़ी विस्तृत भूमि का वर्णन कर रहा है। देखिये—

(३) यो वाऽयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तर कोशो नियुत योजन विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

हे राजन्! हम जहां इस समय हैं यह जंबूद्वीप भूमण्डलरूप कमल की पखुरियों के घेरे में का कोश रूप (जिसमें पखुरियें लगी होती हैं) है। इसका क्षेत्रफल (लंबाई चौड़ाई एकलाख योजन (चारलाख कोश) है और यह कमल के पत्ते की समान (समान गोल) है।

ऊपर के दो प्रमाणों से यह सिद्ध होगया कि पुराणों के भूगोल में ऊपर उपब्रह्मलोक है और उसके नीचे उपदेवलोक है। तथा ये दोनों ही लोक हमारे निवास की भूमि पर नहीं हैं फिर इनको हम पृथ्वी कैसे मान लें। अब इस तीसरे प्रमाण में पुराण पृथ्वी को कमल की कर्णिका मानता है और उसके चारो तरफ ऊंचे नीचे पत्ते मानता है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस पृथ्वी पर हम बसते हैं वह तो बीच में है और जिस ब्रह्माण्डार्द्ध-रूपी पृथ्वी का पुराण वर्णन करते हैं वह ब्रह्माण्ड नीचे, बराबर में और ऊंचे भी अपना विस्तार रखता है। और भी देखिये--

(४) उपवर्णितं भूमेर्यथा सन्निवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः। अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति ॥ ७ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २४

जिस भूमि पर हम बैठे हैं उस भूमि के नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल ये सात लोक पृथक् पिंड रखनेवाले हैं, और प्रत्येक लोक एक दूसरे से चालिस चालिस हजार कोश के अंतर पर है। इन सात लोकों को भी पुराणों ने अपनी वर्णित भूमि में शामिल किया है। पृथ्वी से पाताल कितनी दूर है अब यह पाठक जान गये होंगे किन्तु भूगोलानभिज्ञ मनुष्यसमुदाय इसी पृथ्वी के अधःभाग में बसी हुई अमेरिका को पाताल मानता है। यह महान् और विकट मूर्खता है। क्या अब भी कोई विचारशील मनुष्य यह कह सकता है कि पुराणों में केवल हमारे ही निवास की भूमि वर्णित है। और भी देखिये—

(५) एतावांल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः

स तु पंचाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥ ३८ ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २०

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरन्तराले परितः उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥ यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः कांचन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २०

इस प्रकार परिमाण लक्षण और रचना के साथ व्यासादि कवियों का विचार के साथ निश्चय करा हुआ लोक का विस्तार इतना ही है अर्थात् वह लोकविस्तार पचास करोड़ योजन है इस गिने हुये भूगोल का चौथाभाग अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन यह लोकालोक पर्वत है ॥ ३८ ॥ हे राजन् परीक्षित ! उस मधुर जलवाले समुद्र के परलीपार चारो ओर सूर्य के प्रकाश से युक्त और सूर्य के प्रकाश से रहित ऐसे दोनों प्रदेशों का विभाग करने के निमित्त उन दोनों प्रदेशों में लोकालोक नामवाला पर्वत ईश्वर ने स्थापन करा है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! मानसोत्तर पर्वत और मेरुपर्वत इनके मध्य में जितना अंतर है [एक करोड़ सत्तावन लाख पचास सहस्र योजन] उतनी ही भूमि शुद्ध जलवाले समुद्र की परलीपार है उसके ऊपर प्राणी रहते हैं परन्तु उससे परली ओर लोकालोक पर्वत के समीप और दूसरी आठ करोड़ उनतालीस लाख योजन दर्पण की समान चिकनी और चमकनेवाली भूमि है। उसके ऊपर गिरा हुआ पदार्थ फिर कभी भी नहीं मिलता है क्योंकि तहां देवताओं को छोड़ अन्य प्राणियों को प्रवेश करना कठिन है ॥ ३५ ॥

क्या कोई मनुष्य इस बात को मान लेगा कि जिस भूमि पर हम रहते हैं वह भूमि इतने बड़े विस्तारवाली है। क्या कोई मनुष्य यह भी मान लेगा कि लोकालोक पर्वत जहां पर सूर्य के प्रकाश की गति नहीं वह इसी भूमि पर है। पुराण वर्णित भूमि अति विस्तृत भूमि है उस भूमि को अपनी भूमि से मिला कर पुराणों के भूगोल को असत्य बतला देना यह काम किसी विचारशील मनुष्य का हो नहीं सकता, ऐसा तो वही कर सकते हैं कि जिन्होंने पुराण पढ़ा नहीं, पुराणवर्णित भूमि को समझा नहीं अपने मन से ही पुराण वर्णित भूमि का मान अपने निवास की भूमि के तुल्य मान लिया है। ऐसे ही मनुष्य आजकल यह शोर गुल मचा रहे हैं कि पुराणों का भूगोल भ्रष्ट और अशुद्ध है। इसके ऊपर इतना ही उत्तर तोषदायक हो सकता है कि ऐसे मनुष्यों का विचारशून्य मन ही भ्रष्ट और अशुद्ध है।

पुराणोक्त भूमिमान

पुराण अपनी वर्णित भूमि को मनुष्यों को समझाते हैं और उसको इस प्रकार समझावेंगे कि जिसके समझाने से साधारण मनुष्य को भी ज्ञान हो जावे कि पुराणों ने किस भूमि का वर्णन किया है। क्रम से प्रमाणों को देखते जाइये—

(१) उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

राजा ने कहा कि हे मुने! जहां रह कर सूर्य प्रकाश करता है और जहां तारागणों सहित चंद्रमा दीखता है तहां तक के पृथ्वीमंडल का लंबान और चौड़ान विशेष रूप से तुमने मुझसे वर्णन किया है।

राजा परीक्षित स्पष्ट कह रहा है कि नीचे से लेकर सूर्यलोक तक और जहां चन्द्रमा और तारे दीखते हैं उस भूमि का वर्णन आपने किया है। राजा परीक्षित के कहने का अभिप्राय यह है कि सूर्यलोक के नीचे के जितने लोक हैं वे आपने वर्णन कर दिये। इसके कहने से यह भी सिद्ध है कि ऊपर के लोक अभी बाकी हैं।

आगे देखिये—

(२) अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ।
सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पंचविंशतिः ॥४३॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २०

स्वर्ग और भूमि इन दोनों का जो मध्यभाग है वही ब्रह्माण्ड का मध्यभाग है तहां सूर्य रहता है। सूर्य और ब्रह्माण्ड गोलक के मध्य में सब ओर से ब्रह्माण्ड पचीस २ करोड़ योजन है।

अब यहां पर सिद्ध हो गया कि सूर्य से पचीस करोड़ योजन ऊपर और सूर्य से २५ करोड़ योजन नीचे तथा सूर्यलोक से पचीस करोड़ योजन बाईं तरफ और पचीस करोड़ योजन दहिनी तरफ। इतने विस्तारवाली समस्त दुनिया है। इसी को वैदिक ग्रंथों में ब्रह्माण्ड कहा है। पुराणों ने इस ब्रह्माण्ड के दो गोले बनाये। २५ करोड़ योजन सूर्य से बाईं तरफ और २५ करोड़ योजन दाहिनी तरफ। इन दोनों का योग करके पुराणों ने श्रीमद्भागवत के पंचम स्कंध [२०। ३८] में पृथ्वी का मान ५० पचास

करोड़ योजन लिखा है। परीक्षित के कहने से यह भी सिद्ध होगया कि आपने ब्रह्माण्ड के नीचे के गोले का वर्णन किया है क्योंकि परीक्षित स्पष्ट कहता है कि आपने सूर्यलोक तक की भूमि वर्णन करी। इन दोनों श्लोकों का स्पष्टीकरण आगे चलता है—

(३) एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥१॥ एतेन हि दिवो मंडलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥२॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २१

हे राजन्! इस भूमंडल की विस्तार में पचास करोड़ योजन और निचाई में पचीस करोड़ योजन, इतनी ही प्रमाण और लक्षणों के साथ रचना है ॥१॥ इस ५० करोड़ योजन रूप प्रमाण से स्वर्गलोक के मंडल का प्रमाण, प्रमाण के जाननेवाले पुरुष, जैसे मटर आदि के दो दलों में से एक का प्रमाण कहने पर दूसरे का प्रमाण कहा हुआ सा ही हो जाता है तैसे ही उपदेश करते हैं। भूगोल और खगोल के मध्य में उन दोनों से लगा हुआ आकाश है ॥२॥

पुराण ब्रह्माण्ड के दो गोले बनाता है। नीचे का गोला २५ करोड़ योजन नीचे को मोटा और ५० करोड़ योजन लंबा चौड़ा है। इसको ही भूमि मानता है। इस भूमि में पृथ्वीलोक ही नहीं आया किन्तु पृथ्वीलोक कैसी सहस्रों भूमियां आ गई हैं। शुकदेवजी कहते हैं कि राजन्! नीचे का गोलार्द्ध हमने मान लक्षण से तुमको सुना दिया। नीचे का गोला भूगोल है और ऊपर का गोला खगोल है। इन दोनों के बीच में कुछ ऐसा आकाश है जिसमें लोकरचना नहीं। जब हमने तुमसे नीचे के गोलार्द्ध का मान कह दिया तो ऊपर के गोलार्द्ध का इतना ही मान तुम अपने आप समझ लो। जैसे एक मटर में से दो दाल बनती हैं। एक दाल के मान से दूसरी दाल का मान अपने आप निकल आता है। इसी प्रकार इस भूगोल के तुल्य ५० कोटि योजन विस्तारवाला और २५ कोटि योजन मोटा खगोल को समझें। ऊपर का भाग खगोल और नीचे का भाग भूगोल तथा इन दोनों गोलार्द्धों को मिलाने से ब्रह्माण्ड हो जाता है। अब स्पष्ट होगया कि पुराणों ने केवल हमारी ही पृथ्वी का वर्णन नहीं किया किन्तु हमारी पृथ्वी जैसी सहस्रों भूमियाँ जिसके पेट में पड़ी हैं ऐसे भूगोल नामक ब्रह्माण्ड के गोलार्द्ध का वर्णन किया है। फिर हम किस न्याय से केवल अपनी पृथ्वी का वर्णन मान कर उसको अशुद्ध बतलाने के लिये तैयार होते हैं।

पुराण यह भी कहते हैं कि जिस पृथ्वी पर हम बैठे हैं उसके नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल ये सात लोक हैं और अपने रहने की पृथ्वी को गणना में लेकर भू, भुव, स्व, मह, जन, तप, सत्य ये सात लोक ऊपर हैं। इस प्रकार चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड है। नीचे के सात लोकों के आस पास और भी बहुत लोक हैं। इसी प्रकार ऊपर के सात लोकों से मिलते हुये अनेक लोक हैं। इसी प्रकार दाहिनो और बाईं तरफ असंख्य लोक हैं। श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत के पंचम स्कंध के [१६।४] पद्य में स्पष्ट कह दिया है कि देवताओं कितनी आयु रखने वाला भी कोई ऋषि अपनी पूर्ण आयु में भी समस्त लोकों का वर्णन नहीं कर सकता। कोई कोई ऋषि का यह भी मत है कि चौदह लोक के गिनवाने की क्या आवश्यकता है लोक तो तीन ही हैं। तीन लोकों की गणना रखनेवालों के मत में भू, भुव, स्व ये तीन लोक हैं। पृथ्वी के सब नीचे के लोक और पृथ्वी इन सबको एक लोक माना है इसका नाम भू है। मध्यभाग के लोकों का नाम भुव रक्खा तथा उसके ऊपर के लोकों का नाम स्व। इस प्रकार तीन लोक कल्पना करके इसको त्रिलोकी कहते हैं। चाहे १४ लोक कहो, चाहे त्रिलोकी कहो, चाहे ब्रह्माण्ड कहो, तीनों ही नामों से समस्त ब्रह्माण्ड का ग्रहण हो जाता है। इतने भेद को समझनेवाला कोई भी मनुष्य पुराणों के भूगोल को भ्रष्ट और मिथ्या कह नहीं सकता।

ब्रह्माण्ड कथन फल

(२) कई एक सज्जनों का यह कथन है कि इतने विस्तारवाले ब्रह्माण्ड के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—इस ब्रह्माण्ड के वर्णन करने का प्रयोजन पुराणों ने स्वतः ही लिख दिया है, देखिये—

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥३॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६ श्लो० ३

भगवान् के सगुण विराट स्वरूप में स्थिर करा हुआ मन निर्गुण, अतिसूक्ष्म, स्वप्रकाश और परब्रह्म वासुदेव के विषे स्थिर करने के योग्य होता है। इस कारण हे गुरो! भगवान् के इस ब्रह्माण्डरूप स्थूल स्वरूप का मुझ से वर्णन करो।

विराट में मन किस प्रकार से लगाया जाता है और विराट का ध्यान कैसे होता है इसको भी पुराण ही बतलाते हैं, देखिये—

जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेन्द्रियः ।
स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥२३॥

विशेषस्तस्यदेहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसां ।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥२४॥

आण्डकोषे शरीरेऽस्मिन्सप्तावरणसंयुते ।
वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः ॥२५॥

पातालमेतस्य हि पादमूलं
पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।
महातलं विश्वसृजोथ गुल्फौ
तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥२६॥

द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्ते-
रूरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघनं महीपते
नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥

उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य
ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।
तपो रराटीं विदुरादिपुंसः
सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥२८॥

इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः
कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ।
नासत्यदस्रौ परमस्य नाशे
घ्राणोऽस्य गंधो मुखमग्निरिद्धः ॥२९॥

द्योरक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः
पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ।
तद्भ्रूविजृंभः परमेष्ठिधिष्ण्य-
मापोस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥
छन्दांस्यनंतं तस्य शिरो गृणन्ति
दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ।
हासो जनोन्मादकरी च माया
दुरंतसर्गो यदपांगमोक्षः ॥३१॥
व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो
धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ।
कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ
कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥३२॥
नद्योऽस्य नाड्योथ तनूरुहाणि
महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।
अनंतवीर्यश्वसितं मातरिश्वा
गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥३३॥
ईशस्य केशान्विदुरंबुवाहा-
न्वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च
स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥३४॥
विज्ञानशक्तिं महिमामनंति
सर्वात्मनोंऽतःकरणं गिरित्रम् ।
अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि
सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥३५॥

वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं
मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।
गंधर्वविद्याधरचारणाप्सरः
स्वरः स्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥३६॥
ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा
विडूरुरंघ्रिश्रितकृष्णवर्णः ।
नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो
द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥३७॥
इयानसावीश्वर विग्रहस्य
यः सन्निवेशः कथितो मया ते ।
स धार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे
मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्तिं किंचित् ॥३८॥

श्रीमद्भा० स्कं० २ अ० १

हे राजन्! साधक पुरुष ऐसा अभ्यास करे कि एक ही आसन से बहुत समय तक बैठा रह सके, प्राणायाम के द्वारा श्वास को जीते, अहंता ममता को त्यागे, इन्द्रियों को विषयों में न जाने देय, ऐसी धारणा करके भगवान् के स्थूलरूप में बुद्धि की सहायता से मन को लगावै ॥२३॥ तिन भगवान् का यह विराटस्वरूप, संपूर्ण महान् वस्तुओं से भी बड़ा है, जहां भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनों काल में होनेवाला यह चराचर जगत् देखने में आता है ॥२४॥ हे राजन्! पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्व इन सात आवरणों से वेष्ठित (घिरे हुये) इस ब्रह्माण्डरूप शरीर में जो वैराजनामक भगवान् परमपुरुष निवास करते हैं वह ही धारणा के विषय (स्थान) हैं ॥२५॥ इन विराट्रूप भगवान् का पाताललोक चरण के नीचे का भाग (तलुआ) है, रसातल चरण का अग्रभाग (पंजा) और पिछला भाग (एड़ी) है महातललोक गुल्फ-स्थान (एड़ी के ऊपर की गांठ) और तलातललोक दोनों जंघा हैं, ऐसा शास्त्रों का कथन है ॥२६॥ सुतललोक विश्वमूर्ति परमात्मा की दोनों जानु और वितल तथा अतल ये दोनों लोक ऊरु (घुटने) हैं। हे राजन्! महीतल उसकी कमर के पीछे का भाग और आकाश उसका नाभिसरोवर है ऐसा कहते हैं ॥२७॥ ज्योतिश्चक्र (स्वर्ग) इन विराट् पुरुष का वक्षःस्थल है, महर्लोक ग्रीवा और जनलोक इनका मुख है, तपोलोक

सहस्रशीर्षा के अनंत मस्तक हैं ॥२८॥ तिन आदिपुरुष का कपाल और सत्यलोक तिन सहस्रशीर्षा के अनंत मस्तक हैं ॥२८॥ इन्द्रादि देवता इन विराट् पुरुष के बाहु हैं, दिशा कान और शब्द श्रोत्र इन्द्रिय है, दोनों अश्विनीकुमार तिन परमपुरुष के दो नासापुट और गंध इनकी घ्राण इन्द्रिय तथा प्रज्वलित अग्नि ही मुख है ॥२९॥ अन्तरिक्ष लोक इन विराट् पुरुष के दोनों नेत्र गोलक, सूर्य चक्षु, रात्रि और दिन ये दोनों विष्णु भगवान् के नेत्रों के पलक, ब्रह्मपद भृकुटी (भौं) का विस्तार, जल तालुरूप और सकल रस जिह्वारूप हैं ॥३०॥ सकल वेद इन अनंत का मस्तक है, यम दाढ़ है, स्त्री पुत्रादिकों के विषे जो संसारी पुरुषों का प्रेम है वही इस विराट्पुरुष के द्विज कहिये दांत हैं, लोकों को मोहित करनेवाली माया ही विराट् भगवान् का हास्य है और अनंत सृष्टि उनके नेत्रों का कटाक्ष है क्योंकि उनके नेत्र के कटाक्ष से अनंत ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं ॥३१॥ लज्जा ऊपर का ओष्ठ, लोभ नीचे का ओष्ठ, धर्म स्तन, और अधर्ममार्ग इन विराट् पुरुष की पीठ, दक्ष प्रजापति उनका मेढ़ (मूत्रेन्द्रिय), सूर्य और वरुण वृषण (अंडकोश), सब समुद्र कोख और सकल पर्वत उनकी अस्थियों के समूह हैं ॥३२॥ हे राजेन्द्र ! सकल नदियें इन विश्वरूप परमात्मा की नाड़ियें, वृक्ष रोम, वायु तिन अनंतवीर्य का प्राण, आयु रूप काल गमन और सत्वादि गुणों से उत्पन्न होनेवाले कार्य तिन परमेश्वर की क्रीड़ा हैं ॥३३॥ हे कुरुवंश में श्रेष्ठ राजन् ! मेघों को इन ईश्वर के केश और संध्याकाल को तिन विभु का वस्त्र कहते हैं, अव्यक्त को हृदय और नाना प्रकार के विकारों के भंडार चंद्रमा को तिनका मन कहते हैं ॥३४॥ महत्तत्व को तिन परमात्मा का चित्त और रुद्रभगवान् को अंतःकरण कहते हैं। घोड़ा, खच्चर, ऊंट हाथी आदि उनके नखरूप तथा मृग आदि अन्य सकल पशु उनकी कमर में कल्पित हैं ॥३५॥ नाना प्रकार के पक्षी उनको विचित्र शिल्प चातुरी है, मन उनकी बुद्धि और मनुष्य उनका निवास स्थान है, गंधर्व-विद्याधर-चारण-अप्सरा ये सब उनका स्वर हैं तथा दैत्यों के समूह में श्रेष्ठ प्रह्लादजी उनकी स्मृति हैं ॥३६॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, और वैश्य उन महात्मा की ऊरु (जंघा) हैं, शूद्र उनके चरण रूप हैं, परमपूजनीय वसु रुद्र आदि अनेकों नामधारी देवताओं से यज्ञ और चरु पुरोडास आदि द्रव्यों से होनेवाला यज्ञ का विस्तार उन विराट् भगवान् का आवश्यक कर्म है ॥३७॥ यह इतनी जो भगवान् के शरीर की रचना मैंने तुमसे कही, इस महान् विराट् स्वरूप में अपनी बुद्धि की सहायता से मन की धारणा करी जाती है, क्योंकि इस स्वरूप के बिना जगत् में कोई भी वस्तु नहीं रह सकती ॥३८॥

अब यह स्पष्ट हो गया कि पुराणों ने जो ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है वह योगियों के मन के अवरोध के लिये किया है। यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है कि प्रथम मन स्थूल में ही स्थिर होता है। स्थूल में स्थिर होते होते जब वह चंचलता छोड़ देता है तब सूक्ष्म

में स्थिर होने लगता है। योगियों के लिये यह आवश्यकीय है कि पहिले वे अपने मन को भगवान् के स्थूलरूप विराट अथवा ब्रह्माण्ड जिसको कहते हैं उसमें स्थिर करें। जब यहां पर मन चंचलता छोड़ जावेगा तब सूक्ष्म भगवान् में स्थिर होने के योग्य बनेगा। यह बात समझ कर पुराणों ने ब्रह्म के स्थूल रूप ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है। इस सिद्धान्त को केवल पुराण ही नहीं मानते किन्तु योगदर्शन के भाष्यकार श्रीवेदव्यासजी "भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् विभू० पाद" इस सूत्र के भाष्य में पुराणोक्त लोकोंका इस कारण वर्णन करते हैं कि योगी उनमें अपने मन को स्थिर करे। इस बात को केवल भाष्यकार ही नहीं मानता किन्तु योगदर्शन के आचार्य महर्षि पतंजलि योगदर्शन में लिखते हैं कि "परमाणुपरममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः १। ४०" आरंभ में योगी का मन परमाणु से लेकर परममहत् ब्रह्माण्ड तक में स्थिर होता है और भी जितने योग के ग्रंथ हैं सभी मन का वशीकरण ईश्वर के स्थूलरूप ब्राण्ह्मड में मानते हैं। इसी कारण पुराणों ने ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है।

* मर्त्य पृथिवी *

(३) कोई कोई सज्जन यह कहते हैं कि जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसका तो पता ही नहीं लगा कि कितनी है।

उत्तर—ऋषियों ने पुराणोक्त भूगोल से अपनी पृथ्वी का ज्ञान किया और उसको अन्य ग्रंथों में लिखा। आर्ष ग्रंथों में लिखी हुई पृथ्वी का वर्णन करते हुए भास्कराचार्य लिखते हैं कि—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः
तद्व्यासः कुभुजांगसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिका।
पृष्ठक्षेत्रफलं तथा युगगुणं त्रिंशच्छराष्टाद्रयो
भूमेः कन्दुकजालवत्कुपरिधिव्यासाहतेः प्रस्फुटम्॥

सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय।

४९६७ योजनात्मक पृथ्वी की परिधिका मान है और पृथ्वी का व्यास १५८१$\frac{२}{२४}$ योजन है। पृथ्वी का पृष्ठक्षेत्रफल ७८५२०३४ योजन है। इस पृष्ठक्षेत्र का स्वरूप जैसे कि कन्दुक जाल के आकार होता है वैसे ही पृथ्वी के ऊपर पृष्ठक्षेत्रफल का होता है।

आर्षग्रंथों में यह मान हमारी इसी पृथ्वी का है जिसके ऊपर हम रहते हैं। इस

मान के ऊपर कोई भी हुज्जतबाज चीं चपट नहीं कर सकता। चाहते हैं कि हम बलात्कार अंग्रेजों के पक्ष को स्वीकार करके इसका भी खण्डन करदें किन्तु अभी तक किसी की लेखनी में यह शक्ति नहीं आई कि जिससे पृथ्वी के इस मान को असत्य कहने का साहस करे।

❋ शेषनाग ❋

(४) किसी किसी सज्जन का यह भी कथन है कि इतनी बड़ी पृथ्वी को शेषनाग ने अपने फन पर कैसे धारण किया और फिर वह शेषनाग किसने धारण कर रक्खा है ?

उत्तर—यह प्रश्न उन्हीं सज्जनों का है कि जिन्होंने कभी स्वप्न में भी पुराण नहीं देखे। हमारे रहने की पृथ्वी ही शेषनाग के फन पर नहीं है किन्तु ब्रह्माण्डरूप पृथ्वी को शेष सर्षप के तुल्य धारण किये है। शेषनाग क्या चीज है इसको बतलाता हुआ पुराण लिखता है कि—

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः॥ २५॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ३

जिस समय द्विपरार्धपर्यन्त यह लोक नष्ट हो जाता है और पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाश ये पंच महाभूत आदिभूत अहंकार में जाकर मिल जाते हैं तथा काल के वेग से अव्यक्त संसार का कारण व्यक्त रूपरहित ईश्वर में मिल जाता है उस समय शेष संज्ञावाले केवल आप ईश्वर ही शेष रहते हैं।

पुराण के इस प्रमाण से उत्तम रीति से समझ गये होंगे कि ईश्वर को ही शेष कहते हैं, ईश्वर से अन्य कोई शेष नहीं है।

पाठक इसको इस प्रकार समझने का कष्ट उठावें। समझिये। जब सृष्टि नहीं होती जिस समय केवल ईश्वर ही शेष रहता है उस समय कोई भी रंग नहीं होता अंधकारमय होता है। इसी को वेद लिखता है कि "तम आसीत्तमसा गूढमग्रे" अर्थात् उस समय तम रहता है और तम से ढका हुआ रहता है तथा उसी समय ईश्वर शेष रहता है इस

कारण ईश्वर का रूप काला बनाया गया। यद्यपि सृष्टिरचना के पश्चात् ईश्वर के भांति भांति के अनेक रंगों वाले रूप होते हैं किन्तु शेषावस्था में केवल श्यामरूप होने से शेष को काले रूप में वर्णन किया। इसी शेष में से शक्तिसहित साकार ईश्वर का प्रादुर्भाव होगा और निराकार उसके ऊपर नीचे रहेगा यह घटना केवल नाग में हो सकती है अतएव प्रलय में अवशिष्ट शेष का श्यामरूप और सर्पाकृति बनाई गई है। वास्तव में निराकार ईश्वर ही पृथ्वी को धारण किये है। इतने बडे ब्रह्माण्ड को फन पर कैसे लिये है यह वेद में साफ सिद्ध है कि ईश्वर के एकही अंश में सृष्टि है। अब सिद्ध हो गया कि पृथ्वी को धारण करनेवाले शेष नामवाले ईश्वर हैं और उनको धारण करनेवाला न कोई कभी हुआ है और न होगा। निराकार ईश्वर ही आकर्षणरूप से पृथ्वी को धारण किये है। इस आकर्षणरूप को ही ग्रंथों ने पृथ्वी की आकर्षणशक्ति कही है। अब चाहे आकर्षण शक्ति पृथ्वी को धारण किये है यह कहो और चाहे शेष नामक ईश्वर पृथ्वी को धारण किये है यह कहो, बात एक ही है।

चन्द्रार्क ग्रास

(५) स्मृतिकारों ने और पुराणों ने लिखा है कि राहु सूर्य और चन्द्र को आच्छादन करता है किन्तु ज्योतिष के सिद्धान्त और करणग्रंथ चन्द्रमा को आच्छादित करनेवाली भूभा मानते हैं तथा सूर्य को आच्छादन करनेवाला चन्द्रबिंब मानते हैं और ग्रहण साधन में भूभा तथा चन्द्रबिंब का ही गणित करते हैं। पाश्चात्य देशों के यंत्रों ने भी यही सिद्ध किया है फिर राहु चन्द्र सूर्य को ग्रसता है पुराणों के इस गपोड़े को हम कैसे सत्य मानें ?

उत्तर—जब तक मनुष्य अज्ञ रहता है तब तक ज्ञानजनित समस्त सिद्धान्त उसकी समझ में नहीं आते अतएव वह उनको गपोड़े कहता रहता है किन्तु जैसे जैसे मनुष्य ज्ञान की उपलब्धि करता है वैसे ही वैसे प्रत्येक सिद्धान्त उसको समझ में आता जाता है। यहां तक समझ लेता है कि फिर वह गपोड़े कहनेवालों को ये मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं, अभी समझने के योग्य नहीं हुये ऐसा कहने लगता है। जिन विद्वानों ने चन्द्रबिंबग्रास, भूभाग्रास और राहुग्रास इनमें परिश्रम किया है वे भूभा और चंद्रबिंबग्रास को सत्य कहते हैं तथा इसी प्रकार राहुग्रास को भी सर्वथा सत्य मान कर मनुष्यों को दोनों बातों के समझाने का उद्योग प्राचीन काल से करते चले आते हैं। हम इस विषय में अपनी तरफ से कुछ न लिख कर दैवज्ञ केशव के निर्माण किये हुये विवाह बृन्दाबन नामक ज्योतिष ग्रंथ में जो लिखा है वह पाठकों के आगे रक्खे देते हैं, पाठक देखने का कष्ट उठावें—

सोऽधकारचरतां वहन्मही-
च्छायया विशति सोममंडलम् ।
दीपितापरदलेन्दुमंडल-
च्छायया सह च सूर्यमंडलम् ॥ ३ ॥

विवाह बृन्दाबन राहुसत्ताध्याय ७ ।

वह राहु अंधकारचारी के भाव को धारण करता हुआ पृथ्वी की छाया के साथ सोममंडल नाम चन्द्रमंडल को प्रविष्ट होता है। भाव यह है कि पृथ्वी की छाया अंधकाररूपिणी है और पृथ्वी की छाया के साथ विचरनेवाला राहु भी अंधकारचारी होता है। वह राहु पृथ्वीछाया की सहायता से चंद्रमंडल को ढक लेता है। दीपितनाम प्रकाशमान है अपरदल (ऊर्ध्वभाग) जिसका ऐसे चंद्रमंडल की छाया के साथ राहु अंधकारचरता को धारण करता हुआ अर्थात् अंधकाररूप होकर सूर्यमंडल को ढक लेता है। भाव यह है कि अमावस्या के दिन ऊपर भाग में प्रकाश करनेवाले चन्द्रमा का नीचे का भाग अंधकाररूप होता है। उसी अंधकाररूप चन्द्रमा के नीचे के भाग की छाया के सहित अंधकाररूप राहु भी सूर्यमंडल को ढक लेता है। इस कथन से जो कि गोलगणित में राहु को ढकनेवाला नहीं मानते किन्तु पृथ्वीछाया को ढकनेवाला मानते हैं और स्मृति आदिक राहु को ढकनेवाली मानती हैं इन दोनों का विरोध दूर हो गया।

वृत्तयोः पतनमेव पात इ-
त्याहुरत्र किल राहुरीक्षते ।
आपतंतममृतद्युतिं सुधा-
स्नानदानहवनांशलालसः ॥४॥

विवाह बृ० अ० ७ ।

यदि कहो कि शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त के संगम से संपात किस प्रकार राहु का है इस शंका को दूर करते हुये कहते हैं कि शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त इन दोनों के पतन को पात गोलविद् कहते हैं। वृत्तों को संपात करे उसका ही नाम पात है। उस पातस्थान में स्थित हुआ राहु आपतंत नाम आते भये अमृतद्युति जो चन्द्रमा है तिसे ग्रहण करने की इच्छावाला हुआ देखता रहता है। तिसके आगमन विषे कहते हैं कि सुधा नाम अमृत और स्नान, दान, हवन, मंत्र इत्यादिक तिस चंद्रमा के अंशों का विभाग है। तिनके चाहने में राहु हमेशा तत्पर रहता है। भाव यह है कि संपात के विषे स्थित हुआ राहु चंद्रमा ग्रहण के निमित्त जो स्नान, दान, मंत्रादिक होते हैं सो मेरे वास्ते

होयं यह वर ब्रह्मा से पहिले मांगा था सो ब्रह्मा ने कह दिया था कि तथास्तु। यह ब्रह्मपुराण में प्रसिद्ध है। सो राहु अमृतद्युति चंद्रमा के ग्रहण की इच्छा करता रहता है। निश्चय कर चन्द्रमा को अमृत की इच्छावाला राहु ग्रहण करता है। यह तो सिद्ध है फिर रवि को क्यों ग्रहण करता है तहां कहते हैं। चन्द्रच्छाया के आश्रय हुआ राहु सूर्य को ग्रहण कर लेता है इस बात का निर्णय पहिले कर चुके हैं। भाव यह है कि इस प्रकार आगमन के संपात से राहु सिद्ध हो गया ॥४॥

सैंहिकेयगृहतामुपेयुषो-
दूरगो वियति वृत्तपातयोः।
ग्रासमेति न रविर्न चन्द्रमा
गृह्यते स खलु पार्श्वगस्तयोः ॥५॥

विवाह वृ० अ० ७।

ऐसा कहते हो तो राहु प्रतिपर्व के विषे ग्रहण क्यों नहीं करता है इस शंका को निवारण करते हुये कहते हैं कि सैंहिकेय जो राहु है सो ग्रहता को प्राप्त होने की इच्छा-वाला हुआ। वृत्तपातयोः नाम शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त में संपात हुआ दूर आकाशमार्ग में सूर्य को नहीं ग्रहण करता है इस प्रकार चन्द्रमा को ग्रहण करता है। जब शरवृत्त और क्रान्ति में स्थित राहु समीपवर्ती रवि को निश्चय ग्रहण कर लेता है। यद्वा एक रूप राहु का कह दिया अब दो रूप यानी शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त दो निश्चय संपात स्थान हैं। एक तो चन्द्रपात दूसरा तिससे सप्तम जानना तिन दोनों में एक राहु दूसरा केतु जानना। वे दोनों दूरस्थित रवि चन्द्रमा को नहीं ग्रहण करते हैं क्योंकि शर-बाहुल्यात् अर्थात् शर नाम राहु और चन्द्रमा इन दोनों के बीच में अंतर नहीं होता है तो ग्रहण होता है और अंतर होय तो नहीं। भाव यह है कि जब चन्द्रमा और राहु के अंश बराबर होवें तो ग्रहण निश्चय होता है और अधिक न्यून होवे तो नहीं ऐसा ग्रहगणित से सिद्ध है ॥५॥

राहु के ग्रास को दैवज्ञ केशव ने स्पष्ट कर दिया है अब इसमें विशेष लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मणि भूगोलपादः पंचदशः।

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, शिकारपुरस्थ प्यारीसंगत के संस्थापक
वैश्य-कुल-कमल-दिवाकर, भठीजावंशावतंस, बंबई पेठी के अध्यक्ष

स्वर्गीय श्री १०५ भाई बाधूराम टवरमलजी रईस

शिकारपुर (सिन्ध)



पुराणवर्म के लिये सहायता २००)

क्या कोई मनुष्य पुराणों का खंडन कर सकता है। पुराणों की प्राचीनता दिखलाते हुये व्याकरण के महाभाष्य में महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि—

सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशत मध्वर्युशाखः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाऽथर्वणोवेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोग विषय इति।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

* श्रीगणेशाय नमः *

* आयुपादः *

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां
पतञ्जलिं प्राञ्जलिशनतोऽस्मि ॥

(१) कई एक सज्जनों का यह प्रश्न है कि पुराणों में मनुष्यों की आयु बहुत अधिक लिखी है उतनी आयु वर्तमान समय में किसी भी मनुष्य की. हो नहीं सकती अतएव मिथ्या आयु लिखनेवाले पुराण किसी प्रकार भी मान्य नहीं हो सकते ।

उत्तर इसका यह है कि सृष्टि के आरंभ में जो ऋषि और देवता उत्पन्न हुये मृत्यु का पचड़ा उनके पीछे नहीं लगा । सभी ऋषि और सभी देवता मृत्यु से सर्वथा मुक्त हो गये । सृष्टि के आरंभ के पश्चात् जो ऋषि उत्पन्न हुये उनमें से भी कोई कोई ऋषि मृत्यु के पंजे से बच गये । इसका प्रमाण वेद है, देखिये—

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः
श्यावाश्वः सौभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रि-
रवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥ १५ ॥
विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ
भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः
सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

अथर्व० १८ । ३ । ३ । मं० १५—१६

कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ़, अगस्त्य, श्यावाश्व, सौभरि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप, वामदेव ये सब पितर हमारी रक्षा करें ॥१५॥ हे विश्वामित्र, हे जमदग्ने, हे वसिष्ठ, हे भरद्वाज, हे गोतम, हे वामदेव, आप हमारे पितर हैं, हमको आनंदित करें, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥१६॥

इनमें से कुछ ऋषि सृष्टि के आरंभकाल के हैं और कुछ पश्चात् के हैं। वेद ने मनुष्यों को आज्ञा दी है कि इनसे अपनी रक्षा करने के लिये प्रार्थना करें। सिद्ध हो गया कि ये जीवितऋषि हैं और इनसे रक्षा प्रार्थनीय है।

सृष्टि के आरभकाल के कुछ पश्चात् ब्राह्मणों का मृत्यु होने लगा। मनु ने विचारा कि यह क्या हुआ, ब्राह्मण क्यों मरने लगे। विवेचन करने से मनु इस फल पर पहुंचे कि–

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राज्जिघांसति ॥ मनु० अ० ५ श्लो० ४

वेदों का न पढ़ना, आचार को छोड़ देना, शरीर में सुस्ती रखना, दूषित अन्न खाना, इसी से ब्राह्मण मरते हैं। वेदाभ्यास में ब्रह्मचर्य्यव्रत का पूर्ण पालन करना पड़ता है ऐसा करने से फिर मनुष्य मरता नहीं। "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत अथर्व० का० ११ अ० ३ सू० ५ मं० १८" ब्रह्मचर्य तप के प्रभाव से देवताओं ने मृत्यु का क्षय कर दिया। मर्त्यलोक में भी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से भीष्म इच्छामृत्यु हुये। जिस प्रकार आयुवृद्धि में ब्रह्मचर्य सहायक होता है इसी प्रकार आचार, आलस्यत्याग और पवित्रान्न भोजन आयुवृद्धि में सहायक होते हैं।

जो लोग इन चार वस्तुओं का पूर्ण सेवन करते हैं उनको आयु अधिक और जो सेवन नहीं करते उनकी आयु न्यून होती है।

सृष्टि के आरंभ में मनुष्यों की आयु अधिक होना और फिर जैसे जैसे सृष्टि प्राचीन होती जावे वैसे वैसे देहधारियों की आयु न्यून होते जाना यह प्राकृतिक है। जैसे जिस जमीन में कभी खेती नहीं हुई उसको जोत कर यदि कोई खेती करेगा तो आरंभकाल में खेती बड़े जोर शोर से होती रहेगी और फिर जब उस खेत में खेती होते बहुत काल बीत जावेगा तो उसकी पैदावार पेड़ और अन्न की लंबाई मोटाई कम होती जायगी क्योंकि प्रथम उस खेत के मृण्मय परमाणु बलवान थे और अब निर्बल हो गये हैं। इसी प्रकार सृष्टि के आरंभकाल में पांचतत्वों के परमाणु बलवान् रहते हैं अतएव शरीरधारियों के शरीर लंबे चौड़े अधिक मजबूत और बहुत बड़ी उम्र वाले होते हैं फिर जैसे जैसे सृष्टि पुरानी होती जाती है काल के वेग से, मनुष्यों की श्वासवायु फैलने से, संसार में अन्य दूषित सड़े हुए पदार्थों के संसर्ग से, मनुष्यकृत अनेक हानिकारक यंत्रों से उत्पन्न हुये धूम्र से, पंचतत्वों के न्यूनाधिक होने से तथा परमाणुओं के प्राचीन पड़ने से इस संसार के तत्व दिनोंदिन निर्बल होते जाते हैं। जैसे जैसे ये निर्बल होते हैं वैसे ही वैसे मनुष्यों के शरीर छोटे, बलहीन, हीनआयुवाले होते जा रहे हैं।

कई एक सज्जनों का यह सिद्धान्त है कि सांसारिक परमाणु जैसे सृष्टि के आरंभ में थे वैसे ही अंत तक रहेंगे अतएव सृष्टि के आरंभ से और सृष्टि के अंत तक शरीरधारियों की व्यवस्था समान रहती है।

उत्तर—यद्यपि साधारण मनुष्य इस बात को मान सकता है कि सृष्टि के आरंभ से अंत तक परमाणुओं की शक्ति एक होती है किन्तु सूक्ष्म विचार रखनेवाला विज्ञानवेत्ता मनष्य इस बात को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि वह जानता है कि सृष्टि के आरंभ काल में परमाणुओं में शक्ति की अधिकता और फिर दिनोंदिन शक्ति का ह्रास होते होते अंत में परमाणु सर्वथा निर्बल हो जाते हैं। इसको इस प्रकार समझिये कि सृष्टि के आरंभ में परमाणुओं में वह प्रबल बल रहता है कि जिससे प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणुओं से ठस कर घनीभूत बन कर संसार की रचना कर देते हैं और अंतकाल में परमाणु इतने कमजोर होते है कि अब वे घनीभूत रहते हुये भी अपनी दशा को स्थायी नहीं रख सकते। शक्तिहीन परमाणु बिखर जाते हैं जिससे संसार बिगड़ जाता है इसी बिगड़ने का नाम प्रलय है। फिर इतने बिगड़ जाते हैं कि अपने स्वरूप को खोकर कारण में मिल जाते हैं। कोई भी विचारशील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि परमाणु प्रयलकाल में इतने ही बलवान् रहते हैं जितने बलवान् वे सृष्टि के आरंभ में थे। यदि तुल्य बल मानेंगे तो फिर प्रलय न हो सकेगी। प्रलय होती देख यह मानना ही पड़ेगा कि इस समय परमाणुओं की शक्ति क्षय हो गई और यह भी मानना ही पड़ेगा कि परमाणुशक्ति एकदम नाश नहीं हुई किन्तु धीरे धीरे घटी है। अब सिद्ध हो गया कि आरंभकाल में परमाणु पूर्ण बलवान् रहते हैं और फिर कुछ दिन के बाद इनका बल घटने लगता है अंत में सर्वथा बलहीन होकर अपने स्वरूप को खो बैठते हैं। अब मानना पड़ेगा कि परमाणुओं की शक्ति के अनुसार ही देहधारियों के आयु और शरीर होंगे। इसी विज्ञान को लेकर पुराण सत्ययुग में मनुष्यादिकों की आयु बहुत बड़ी लिखते हैं और कलियुग में न्यून लिखते हैं।

कई एक सज्जनों का यह भी प्रश्न है कि जब जमीन की शक्ति घटती है तब काश्तकार लोग उसमें खाद देकर फिर जमीन की शक्ति को बढ़ा लेते हैं। इस प्रकार क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे संसाररूपी क्षेत्र की शक्ति बढ़ जावे?

उत्तर—इस विषय में शास्त्रों का विचार यह है कि यहां खाद के देने से खेत की शक्ति तो नहीं बढ़ती किन्तु पौधों को शक्ति बढ़ जाती है अर्थात् समस्त संसार के परमाणु तो खाद से शक्तिशाली नहीं बन सकते किन्तु पौधे के परमाणु शक्तिशाली बनकर पौधे को मजबूत कर देते हैं। अभिप्राय इसका यह है कि खाद देने से देहधारियों

के शरीर लम्बे, चौड़े, मजबूत और अधिक आयु वाले हो जाते हैं। इस कार्यसिद्धि में सहायक खाद ब्रह्मचर्यव्रत पूर्वक वेदाभ्यास और आचार, फुर्ती (आलस्य त्याग) तथा पवित्र अन्न का खाना। जिस समय ये शरीरों को प्राप्त होते हैं शरोरों को आयु बहुत बढ़ जाती है। जैसे जैसे ये कम मिलते हैं वैसे ही वैसे आयु कमती होती जाती है और जब इनका अभाव हो जाता है तब आयु बहुत न्यून परमाणुओं की शक्ति के अनुसार रह जाती है। सत्ययुग में इन चारों पदार्थों का पूर्ण सेवन होता है, त्रेता में लापरवाही होकर कुछ सेवन घट जाता, द्वापर में आधे के तुल्य होता है, कलियुग में आयुदायक इन चारों पदार्थों को पोपों के गपोड़े बतला कर मनुष्य स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। जैसा जैसा इन खाद्य पदार्थों का अनुष्ठान होता है पुराण वैसी ही आयु बतलाते हैं। सतयुग में वहुत अधिक, त्रेता में उससे कम, द्वापर में और न्यून, कलियुग में हीन आयु। इस तात्विक अनुसंधान को लेकर ही पुराणों ने मनुष्यों की आयु लिखी हैं। ये असत्य नहीं हैं किन्तु प्रत्यक्षवाद से दूषित हुआ मनुष्यों का मन इसके विचार पर नहीं पहुंच सकता।

* योगियों की आयु *

साधारण मनुष्यों की आयु का विचार ऊपर हो चुका अब योगियों की आयु का निर्णय देखिये। योगदर्शन कहता है कि—

उदानजयाज्जलपंककण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च।

योग द० विभूति पा० सू० ३८

उदानवायु विशेष के जीतने से जल, कीचड़ और झाड़ कांटे आदि में फँसना तथा उत्क्रान्ति स्वेच्छानुसार शरीर त्याग होता है।

योगदर्शन के इस सूत्र से यह उत्तम रीति से सिद्ध हो जाता है कि योगी इच्छामृत्यु होते हैं। जब तक उनकी इच्छा हुई तब तक उन्होंने शरीर रक्खा और जब उनकी इच्छा शरीरत्याग की हुई तब शरीर छोड़ दिया। योगी मृत्यु के वश में नहीं आसकता मृत्यु ही योगी के वश में रहता है। इस सूत्र की पुष्टि में वेद कहता है कि—

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥ १२ ॥

श्वेताश्वेतरोपनिषत् अ० २

(पृथ्व्याप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते) अपने शरीरस्थ पृथिवी, अप, तेज, वायु और आकाशरूप पंचतत्त्वों के निकृष्ट मलिनांश का नाश होकर शुद्धांश की प्रबलता वा उन्नति होने से इस प्रकार (पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते) दिव्य गंधादि विषयों में प्रकृष्ट साक्षात् वृत्ति होने पर अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म व्यवहित और अति दूर के पदार्थादि विषयों का साक्षात् बोध होने की शक्ति प्रकट होने पर (तस्य योगाग्निमयं प्राप्तस्य न रोगो न जरा न मृत्युः) पंचतत्व की शुद्धि द्वारा योगाग्निरूप शरीर को प्राप्त हुये उस योगी पुरुष को न रोग न निर्बलता और न मृत्यु सताता है।

भावार्थ यह है कि प्रत्येक का सार ही दृढ़ व चिरस्थायी होता है इसी से औषधि बनस्पतियों के सार निकाले जाते हैं। सार सर्वत्र ही शुद्धांश कहाता व चिरस्थायी होता है। वैसे ही तपोबल व योगाभ्यासादि के द्वारा शरीर के मल नष्ट होकर सारभूत अंश रह जाते हैं सारभूत अविनाशी हीरा आदि के तुल्य होकर योगी के शरीर को रोग जरा और मृत्यु आदि बाधा नहीं पहुंचा पाते।

कई एक सज्जनों का कथन है कि "तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्०। यजु० ३६। २४" के मंत्र में मनुष्यों के लिये सौ वर्ष का ही जीना लिखा है फिर हम यह कैसे मान लें कि मनुष्यों की बड़ी बड़ी आयु होती थी।

इसका उत्तर यह है कि जो ऐसा कहते हैं उनको उपरोक्त वेदमंत्र का अर्थ ही नहीं आता 'पश्येम शरदः शतम्' और शृणुयाम शरदः शतम्' इत्यादिक अन्वय करने के पश्चात् फिर इस मंत्र में पड़ा है 'शरदः शताद्भूयः शरदः शतम्' यानी सौ वर्ष के बाद फिर हम सौ वर्ष जीवें, सौ वर्ष के बाद फिर हम सौ वर्ष सुनें, सौ वर्ष के बाद फिर हम सौ वर्ष बोलें। इसके पश्चात् फिर 'शताद्भूयः शतम्' अर्थात् वेदमंत्र में पहिले यह प्रार्थना की है कि हम सौ वर्ष जियें, सौ वर्ष देखें, सौ वर्ष सुनें उस सौ वर्ष के बाद फिर हम सौ वर्ष जियें, सौ वर्ष देखें, सौ वर्ष सुनें उसके पश्चात् फिर देखें-सुनें-जीवें, इस प्रकार से प्रार्थना है। केवल सौ वर्ष का जीना-सुनना-बोलना जो इस मंत्र में मानते हैं या तो वे मंत्र के अर्थ को नहीं जानते और या जान बूझ कर वेदमंत्र को प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर रख रहे हैं। दोनों अवस्थाओं में किसी भी अवस्था को लेकर केवल सौ वर्ष की अवधि करना यह नितान्त वेदविरुद्ध है। वेद का अभिप्राय यह है कि जब

तक तुम जियो तब तक बोलो सुनो और सौ सौ वर्ष को आगे रख कर उसमें प्रार्थना की गई है।

सिद्ध हो गया कि योगशक्ति से अधिक आयु होना तो एक तुच्छ बात है। योग-शक्ति तो मनुष्य को अमर बना देती है। प्राचीन काल में जितने भी ऋषि, मुनि और राजा बड़ी बड़ी आयुवाले हुये हैं वे सब योगी थे और योग के प्रभाव से ही उन्होंने बहुत बड़ी बड़ी आयु पाई हैं इसमें हुज्जतबाजी को किंचित् भी अवकाश नहीं है।

कई एक मनुष्य यह कहने को तैयार हो जावेंगे कि हम इस बात को नहीं मानते किन्तु उनका यह कथन प्रमाद मात्र है। यदि कोई मनुष्य योगी बने और फिर अपने अनुभव से यह सिद्ध करे कि योग से आयु नहीं बढ़ती तो उसकी बात मान्य हो सकती है किन्तु जो बिना पढ़े लिखे ही अमान्य बतलाते हैं उनका अमान्य बतलाना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकता। आज भी योगियों में आश्चर्यजनक सिद्धियां पाई जाती हैं फिर हम कैसे मान लें कि योगविद्या ही असत्य है।

इतिश्रीकालूरामरचित पुराणवर्मण्यायुपाद: षोडस:।

इति सृष्ट्यध्याय:

पूर्वार्द्ध समाप्तम्।

